CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

2249

२

कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि

लेखक एवं सम्पादक
डॉ॰ कस्तूरचन्द कासलीवाल

प्रकाशक
श्री महावीर ग्रंथ अकादमी
जयपुर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी का यह दूसरा पुष्प है । इसमें संवत् १५६१ से १६०० तक होने वाले पांच प्रतिनिधि कवियों— बूचराज, छीहल, चतुरुमल, गारवदास एवं ठक्कुरसी का जीवन परिचय, कृतियों का मूल्यांकन एवं उनकी सभी ४४ कृतियों के मूल पाठ दिये गये हैं । मूल कृतियों के अवलोकन से ज्ञात होगा कि ये हिन्दी की कितनी महत्त्वपूर्ण कृतियां हैं । इनमें १५ से अधिक कृतियां ऐसी हैं जिनका नाम भी प्रथम बार सुनने को मिलेगा । इस प्रकार अकादमी अनुपलब्ध, लुप्त एवं दुर्लभ ग्रन्थों की खोज करके उनके प्रकाशन के उद्देश्य में आगे बढ़ रही है ।

बूचराज, छीहल एवं ठक्कुरसी ये तीनों ही राजस्थानी कवि थे तथा गारवदास उत्तर-प्रदेश एवं चतुरुमल मध्यप्रदेश को सुशोभित करते थे । एक ओर इन कवियों की रचनायें भक्ति एवं अध्यात्म रस से ओत-प्रोत हैं तो दूसरी ओर वे तत्कालीन समाज एवं संस्कृति का प्रवक्ता बनने का दावा कर सकती हैं । ऐसी कृतियों के प्रकाशन से हिन्दी साहित्य गौरवान्वित होगा तथा अतीत में जैन कवियों द्वारा की गयी हिन्दी सेवा को भी जानने का सुअवसर प्राप्त होगा ।

प्राप्ति-संख्या..................
(शोध) संस्थान
णसी-५
उ० समकालीन कवि
न्द कासलीवाल
लेनेवालेका | लौटानेकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हि०
१२२३
ए

श्री गणेश वर्णी दि. जैन संस्थान
नरिया, वाराणसी

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
२२४९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीय पुष्प

कविवर बूचराज

एवं

उनके समकालीन कवि

[संवत् १५६१ से १६०० तक होने वाले पाँच प्रतिनिधि कवि बूचराज, छीहल, चतुरुमल, गारवदास एवं ठक्कुरसी का जीवन परिचय, मूल्यांकन तथा उनकी ४४ कृतियों का मूल पाठ]

हि. १२२३

लेखक एवं सम्पादक
डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
२२४७
नरिया (का. हि. वि.) वाराणसी-५

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्पादक मण्डल :

डा० ज्योतिप्रसाद जैन, लखनऊ
डा० दरबारीलाल कोठिया, वाराणसी
पं० मिलापचन्द शास्त्री, जयपुर
डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल, जयपुर
प्रधान सम्पादक

निदेशक मण्डल :

संरक्षक : साहु अशोककुमार जैन, देहली
अध्यक्ष : श्री कन्हैयालाल जैन, मद्रास
उपाध्यक्ष : श्री गुलाबचन्द गंगवाल, रेनवाल (जयपुर)
श्री अजितप्रसाद जैन ठेकेदार, देहली
श्री कमलचन्द कासलीवाल, जयपुर
श्री कन्हैयालाल सेठी, जयपुर
श्री पदमचन्द तोतूका, जयपुर
श्री फूलचन्द विनायक्या, डीमापुर
श्री त्रिलोकचन्द कोठारी, कोटा
निदेशक : डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल, जयपुर

प्रकाशक : श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी
गोदीकों का रास्ता,
किशनपोल बाजार, जयपुर-३०२००३

श्रुत पंचमी
सन् १९७९

मूल्य : ३० रुपये

मुद्रक : मनोज प्रिन्टर्स
जयपुर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कविवर ब्रह्म बूचराज

कविवर ठक्कुरसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी जयपुर, एक परिचय

जैन कवियों द्वारा हिन्दी भाषा में निबद्ध कृतियों के प्रकाशन एवं उनके मूल्यांकन की आज अतीव आवश्यकता है। देश के विश्वविद्यालयों एवं शोध संस्थानों में जैन हिन्दी साहित्य को लेकर जो शोध कार्य हो रहा है तथा शोधार्थियों में उस पर शोध कार्य की ओर जो रुचि जाग्रत हुई है वह यद्यपि उत्साहवर्धक है लेकिन अभी तक हिन्दी साहित्य के इतिहास में जैन कवियों को नाम मात्र का भी स्थान प्राप्त नहीं हो सका है और हमारे अधिकांश कवि अज्ञात एवं अपरिचित ही बने हुए हैं। अभी तक जैन कवियों की कृतियां ग्रन्थागारों में बन्द हैं तथा राजस्थान के शास्त्र भण्डारों को छोड़कर अन्य प्रदेशों के भण्डारों के तो सूची पत्र भी प्रकाशित नहीं हुए हैं। देश की किसी भी प्रकाशन संस्था का इस ओर ध्यान नहीं गया और न कभी ऐसी किसी योजना को मूर्त्त रूप दिये जाने का संकल्प ही व्यक्त किया गया। क्योंकि अधिकांश विद्वानों एवं साहित्यकारों को हिन्दी जैन साहित्य की विशालता की ही जानकारी प्राप्त नहीं है।

स्थापना—इसलिए सन् १९७६ वर्ष के अन्तिम महिनों में जयपुर के विद्वान् मित्रों के सहयोग से 'श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी' संस्था की स्थापना की गयी जिसका प्रमुख उद्देश्य पञ्चवर्षीय योजना बनाकर समस्त हिन्दी जैन साहित्य को २० भागों में प्रकाशित करने का निश्चय किया गया। इन भागों में ६० से अधिक प्रमुख जैन कवियों का विस्तृत जीवन परिचय, उनकी कृतियों का मूल्यांकन एवं प्रकाशन का निर्णय लिया गया। हिन्दी जैन साहित्य प्रकाशन योजना के अन्तर्गत निम्न प्रकार २० भाग प्रकाशित किये जावेंगे—

प्रकाशन योजना :

१. महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति (प्रकाशित)
२. कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि (प्रकाशित)
३. महाकवि ब्रह्म जिनदास एवं भ० प्रतापकीर्ति (प्रकाशनाधीन)
४. कविवर वीरचन्द एवं महिचन्द
५. विद्याभूषण, ज्ञानसागर एवं जिनदास पाण्डे
६. ब्रह्म यशोधर एवं भट्टारक ज्ञानभूषण
७. भट्टारक रत्नकीर्त्ति, कुमुदचन्द एवं समयसुन्दर
८. कविवर रूपचन्द, जगजीवन एवं ब्रह्म कपूरचन्द

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९. महाकवि भूधरदास एवं बुलाकीदास
१०. जोधराज गोदीका एवं हेमराज
११. महाकवि द्यानतराय एवं आनन्दघन
१२. पं० भगवतीदास एवं भाउ कवि
१३. कविवर खुशालचन्द काला एवं अजयराज पाटनी
१४. कविवर किशनसिंह, नथमल बिलाला एवं पाण्डे लालचन्द
१५. कविवर बुधजन एवं उनके समकालीन कवि
१६. कविवर नेमिचन्द्र एवं हर्षकीर्त्ति
१७. भैय्या भगवतीदास एवं उनके समकालीन कवि
१८. कविवर दौलतराम एवं छत्तदास
१९. मनराम, मन्ना साह एवं लोहट कवि
२०. २० वीं शताब्दी के जैन कवि

उक्त २० भागों को प्रकाशित करने के लिए निम्न प्रकार एक पञ्चवर्षीय योजना बनाई गयी है—

वर्ष	पुस्तक संख्या
१९७८	३
१९७९	४
१९८०	४
१९८१	४
१९८२	५
	२०

उक्त योजना के अन्तर्गत अब तक पांच भाग प्रकाशित हो जाने चाहिए थे लेकिन प्रारम्भिक एक वर्ष योजना के क्रियान्वय के लिए आर्थिक साधन जुटाने में लग गया और सन् १९७८ में तीन पुस्तकों के स्थान पर केवल एक पुस्तक महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्त्ति" का प्रकाशन किया जा सका। प्रस्तुत पुस्तक "कविवर बूचराज एतं उनके समकालीन कवि" उसका दूसरा पुष्प है। इस वर्ष कम से कम दो भाग और प्रकाशित हो सकेंगे।

आर्थिक पक्ष—अकादमी का प्रत्येक भाग कम से क़म ३०० पृष्ठों का होगा। इस प्रकार अकादमी करीब ६ हजार पृष्ठों का साहित्य प्रथम पांच वर्षों में अपने सदस्यों को उपलब्ध करावेगी। पूरे २० भागों के प्रकाशन में करीब दो लाख रुपये व्यय होने का अनुमान है। योजना का प्रमुख आर्थिक पक्ष उसके सदस्यों द्वारा प्राप्त शुल्क होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सदस्यता—अकादमी के दो प्रकार के सदस्य होंगे जो संचालन समिति के सदस्य एवं विशिष्ट सदस्य कहलायेंगे। संचालन समिति के सदस्यों की संख्या १०१ होगी जिसमें संरक्षक, अध्यक्ष, कार्याध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं निदेशक के अतिरिक्त शेष सम्माननीय सदस्य होंगे। संचालन समिति का संरक्षक के लिए ५००१) रु०, अध्यक्ष एवं कार्यकारी अध्यक्ष के लिए २५०१) रु०, उपाध्यक्ष के लिए १५०१) रु० तथा निदेशक एवं सम्माननीय सदस्यों के लिए ५०१) रु० अकादमी को सहायतार्थ देना रखा गया है। विशिष्ट सदस्यों से २०१) रु० लिये जावेंगे। सभी सदस्यों को अकादमी द्वारा प्रकाशित होने वाले २० भाग भेंट स्वरूप दिये जावेंगे। अब तक अकादमी की संचालन समिति के पदाधिकारियों सहित ४५ सदस्यों तथा १२५ विशिष्ट सदस्यों की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। मुझे यह सूचित करते हुए प्रसन्नता है कि समाज में साहित्य प्रकाशन की इस योजना का अच्छा स्वागत हुआ है।

पदाधिकारी - अकादमी के प्रथम संरक्षक समाज के युवक नेता साहु अशोक कुमार जैन हैं जिनसे समाज भली भांति परिचित है। इसी तरह अकादमी के अध्यक्ष श्री सेठ कन्हैयालाल जी पहाडिया मद्रास वाले हैं जो अपनी सेवा के लिए उत्तर भारत से भी अधिक दक्षिण भारत में अधिक लोकप्रिय हैं। उपाध्यक्ष के रूप में हमें अभी तक सात महानुभावों की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। सभी समाज के जाने माने व्यक्ति हैं और अपनी उदार मनोवृत्ति तथा साहित्यिक प्रेम के लिए प्रसिद्ध हैं। उपाध्यक्षों के नाम हैं: सर्व श्री गुलाबचन्द जी गंगवाल, रेनवाल (जयपुर) श्री अजितप्रसाद जी जैन ठेकेदार (देहली), श्री कमलचन्द जी कासलीवाल जयपुर, श्री कन्हैयालाल जी सेठी जयपुर, श्री पदमचन्द जी तोतूका जयपुर, श्री फूलचन्द जी विनायक्या डीमापुर, एवं श्री त्रिलोकचन्द जी कोठारी कोटा। इन सभी महानुभावों के हम आभारी हैं।

सहयोग—अकादमी के सदस्य बनाने के कार्य में सभी महानुभावों का सहयोग मिलता रहता है। इनमें सर्व श्री सुरेश जैन डिप्टी कलेक्टर इन्दौर, श्री मूलचन्द जी पाटनी बम्बई, डा० भागचन्द जैन दमोह, पं० मिलापचन्द जी शास्त्री जयपुर, श्रीमती कोकिला सेठी जयपुर, श्री गुलाबचन्द जी गंगवाल रेनवाल, प्रो० नरेन्द्र प्रकाश जैन फिरोजाबाद, वैद्य प्रभुदयाल कासलीवाल एवं पं० अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ आदि के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि जैसे-जैसे इसके भाग छपते जावेंगे इसकी सदस्य संख्या में वृद्धि होती रहेगी। इस वर्ष के अन्त तक इसके कम से कम ३०० सदस्य बन जायें ऐसा सभी से सहयोग अपेक्षित है। सबके सहयोग के आधार पर ही अकादमी अपनी प्रथम पञ्चवर्षीय योजना में सफल हो सकेगी ऐसा हमारा विश्वास है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथम प्रकाशन पर अभिमत—साहित्य प्रकाशन के इस यज्ञ में कितने ही विद्वानों ने सम्पादक के रूप में और कितने ही विद्वानों ने लेखक के रूप में अपना सहयोग देना स्वीकार किया है। अब तक ३० से भी अधिक विद्वानों की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। अकादमी के प्रथम भाग पर राष्ट्रीय एवं सामाजिक सभी पत्रों में जो समालोचना प्रकाशित हुई है उससे हमें प्रोत्साहन मिला है। यही नहीं साहित्य प्रकाशन की इस योजना को आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज, एलाचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज एवं आचार्य कल्प श्री श्रुतसागर जी महाराज जैसे तपस्वियों का आशीर्वाद मिला है तथा भट्टारक जी महाराज श्री चारुकीर्त्ति जी मूडविद्री, एवं श्रवणवेलगोला, भट्टारक जी महाराज कोल्हापुर, डा० सत्येन्द्र जी जयपुर, पंडित प्रवर कैलाशचन्द जी शास्त्री, डा० दरबारीलाल जी कोठिया, डा० महेन्द्रसागर प्रचडिया, पं० मिलापचन्द जी शास्त्री एवं डा० हुकमचन्द जी भारिल्ल जैसे विद्वानों ने इसके प्रकाशन की प्रशंसा की है।

भावी प्रकाशन—सन् १९७९ में ही प्रकाशित होने वाला तीसरा पुष्प "महाकवि ब्रह्म जिनदास एवं प्रतापकीर्त्ति" की पाण्डुलिपि तैयार है और उसे शीघ्र ही प्रेस में दे दिया जावेगा। इसके लेखक डा० प्रेमचन्द रावकां हैं। इसी तरह चतुर्थ पुष्प "महाकवि वीरचन्द एवं महिचन्द" वर्ष के अन्त तक प्रकाशित हो जाने की पूरी आशा है।

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी को पंजीकृत कराने की कार्यवाही चल रही है। जो इस वर्ष के अन्त तक पूर्ण हो जाने की आशा है।

अन्त में समाज के सभी साहित्य प्रेमियों से सादर अनुरोध है कि वे श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी के अधिक से अधिक सदस्य बन कर जैन साहित्य के प्रचार प्रसार में अपना योगदान देने का कष्ट करें। हमें यह प्रयास करना चाहिए कि ये पुस्तकें देश के प्रत्येक विश्वविद्यालय में पहुँचें जिससे वहां और भी विद्यार्थी जैन साहित्य पर शोध कार्य कर सकें। यही नहीं हिन्दी जैन कवियों को हिन्दी साहित्य के इतिहास में उचित स्थान भी प्राप्त हो सके।

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल
निदेशक एवं प्रधान सम्पादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अध्यक्ष की कलम से

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी का द्वितीय पुष्प "कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि" को पाठकों के हाथ में देते हुए अतीव प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। इसके पूर्व गत वर्ष इसका प्रथम पुष्प "महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्त्ति" प्रकाशित किया जा चुका है। मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता होती है कि अकादमी के इस प्रथम प्रकाशन का सभी क्षेत्रों में जोरदार स्वागत हुआ है और सभी ने अकादमी की प्रकाशन योजना को अपना आशीर्वाद प्रदान किया है।

इस दूसरे पुष्प में संवत् १५६१ से १६०० तक होने वाले ५ प्रमुख जैन कवियों का प्रथम बार मूल्यांकन एवं उनकी कृतियों का प्रकाशन किया गया है। इस प्रकार श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी समूचे हिन्दी जैन साहित्य को २० भागों में प्रकाशित करने के जिस उद्देश्य को लेकर स्थापित की गयी थी उसमें वह निरन्तर आगे बढ़ रही है। प्रथम पुष्प के समान इस पुष्प के भी लेखक एवं सम्पादक डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल हैं जो अकादमी के निदेशक भी हैं। डा० साहब ने बड़े परिश्रम पूर्वक राजस्थान के विभिन्न ग्रन्थ भण्डारों में संग्रहीत कृतियों की खोज एवं अध्ययन करके उन्हें प्रथम बार प्रकाशित किया है। ४० वर्षों की अवधि में होने वाले ५ प्रमुख कवियों—ब्रह्म बूचराज, कविवर छीहल, चतुरुमल, गारवदास एवं ठक्कुरसी जैसे जैन कवियों का विस्तृत परिचय, मूल्यांकन एवं उनकी कृतियों का प्रकाशन आज अकादमी के लिए एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। ये ऐसे कवि हैं जिनके बारे में हमें बहुत कम जानकारी थी तथा चतुरुमल एवं गारवदास तो एकदम अज्ञात से थे। प्रस्तुत भाग में डा० कासलीवाल ने पांच कवियों का तो विस्तृत परिचय दिया ही है साथ में १३ अन्य हिन्दी जैन कवियों का भी संक्षिप्त परिचय उपस्थित करके अज्ञात कवियों को प्रकाश में लाने का प्रशंसनीय कार्य किया है। वैसे तो श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना ही डा० कासलीवाल की सूझबूझ एवं सतत् साहित्य साधना का प्रतिफल है। डा० साहब ने अब तो अपना समस्त जीवन साहित्य सेवा में ही समर्पित कर रखा है यह हमारे लिए कम गौरव की बात नहीं है।

मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता है कि श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी को समाज द्वारा धीरे-धीरे सहयोग मिल रहा है लेकिन अभी हमें जितने सहयोग की अपेक्षा थी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसे हम अभी तक प्राप्त नहीं कर सके हैं। अब तक संचालन समिति की सदस्यता के लिए ४५ महानुभावों की एवं विशिष्ट सदस्यता के लिए १२५ महानुभावों की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। हम चाहते हैं कि सन् १९७९ में इसके कम से कम १०० सदस्य और बन जावें तो हमें आगे के ग्रन्थों का प्रकाशन में सुविधा मिलेगी। अकादमी श्री साहु अशोककुमार जी जैन को संरक्षक के रूप में पाकर तथा श्री गुलाबचन्द गंगवाल रेनवाल, श्री अजितप्रसाद जैन ठेकेदार देहली, श्री सेठ कमलचन्द जी कासलीवाल जयपुर, श्री कन्हैयालाल जी सेठी जयपुर, श्रीमान् सेठ पदमचन्द जी तोतूका जौंहरी जयपुर, सेठ फूलचन्द जी साहब विनायक्या डीमापुर एवं त्रिलोकचन्द जी साहब कोठ्यारी कोटा, का उपाध्यक्ष के रूप में सहयोग पाकर अकादमी गौरव का अनुभव करती है। इसलिए मेरा समाज के सभी साहित्य प्रेमियों से प्रार्थना है कि वे इस संस्था के संचालन समिति के सदस्य अथवा अधिक से अधिक संख्या में विशिष्ट सदस्यता स्वीकार कर साहित्य प्रकाशन की इस अकादमी की असाधारण योजना के क्रियान्विति में सहयोग देकर अपूर्व पुण्य का लाभ प्राप्त करें।

इसी वर्ष हम कम से कम तृतीय एवं चतुर्थ पुष्प और प्रकाशित कर सकेंगे। तीसरा पुष्प "महाकवि ब्रह्म जिनदास एवं भट्टारक प्रतापकीर्त्ति" की पाण्डुलिपि तैयार है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि उसे हम अक्टूबर ७९ तक अवश्य प्रकाशित कर सकेंगे।

प्रस्तुत पुष्प के सम्पादक मण्डल के अन्य तीन सम्पादकों— डा० ज्योतिप्रसाद जैन लखनऊ, डा० दरबारीलाल जी कोठिया न्यायाचार्य, वाराणसी, पं० मिलापचन्द जी शास्त्री जयपुर का भी मै आभारी हूँ जिन्होंने डा० कासलीवाल जी को पुस्तक के सम्पादन में सहयोग दिया है। आशा है भविष्य में भी उनका अकादमी को इसी प्रकार का सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

मद्रास — कन्हैयालाल जैन पहाडिया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय-सूची

क्र०सं०	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी का परिचय	iii–vi
२,	अध्यक्ष की कलम से	vii–viii
३.	लेखक की ओर से	ix–xii
४.	सम्पादकीय	xiii–xv
५.	संवत् १५६० से १६०० तक का इतिहास	९–१०
६.	कविवर बूचराज जीवन परिचय एवं कृतियों का मूल्यांकन	१०–४४
७.	मूलपाठ	
	(१) मयणजुज्झ	४५–६९
	(२) संतोषजयतिलकु	७०–८६
	(३) नेमीस्वर का बारहमासा	८७–८९
	(४) चेतन पुद्गल धमाल	९०–१०१
	(५) नेमिनाथ बसंतु	१०२–१०३
	(६) टंडाणा गीत	१०४–१०५
	(७) भुवनकीर्ति गीत	१०६–१०७
	(८) पार्श्वनाथ गीत	१०८
	९ से १९ तक विभिन्न रागों में ११ गीत	१०९–१२०
८.	छीहल कवि। जीवन परिचय एवं कृतियों का मूल्यांकन	१२१–१३४
९.	मूल पाठ :	
	(२०) पञ्च सहेली गीत	१३५–१४०
	(२१) बावनी	१४१–१५२
	(२२) पंथी गीत	१५३–१५४
	(२३) वेलि गीत	१५५
	(२४) वैराग्य गीत	१५६
	(२५) गीत	१५७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०. चतुरुमल कवि :
जीवन परिचय एवं कृतियों का मूल्यांकन १५८–१६५

११. मूल पाठ :
(२६) नेमीश्वर को उरगानो १६६–१७५
(२७–२९) गीत १७५–१७६
(३०) क्रोध गीत १७७

१२. कवि गारवदास :
जीवन परिचय एवं कृतियों का मूल्यांकन १७८–१९४

१३. मूल पाठ :
(३१) यशोधर चौपई १९५–२३६

१४. कविवर ठक्कुरसी :
जीवन परिचय एवं कृतियों का मूल्यांकन २३७ २६२

१५. मूल पाठ :
(३२) सीमंधर स्तवन २६३
(३३) नेमीराजमति वेलि २६४–२६७
(३४) पञ्चेन्द्रिय वेलि २६८–२७१
(३५) चिन्तामणि जयमाल २७२
(३६) कृपण छन्द २७३–२८०
(३७) शील गीत २८१
(३८) पार्श्वनाथ स्तवन २८२–२८४
(३९) सप्त व्यसन षट्पद २८५–२८७
(४०) व्यसन प्रबन्ध २८८
(४१) पार्श्वनाथ जयमाला २८९
(४२) ऋषभदेव स्तवन २९०
(४३) कवित्त २९१
(४४) पार्श्वनाथ सकुन सत्तावीसी २९२–२९५

१६. प्रथम भाग पर मंगल आशीर्वाद २९६
१७. अनुक्रमणिका २९७–३००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्पादकीय

भाषा निबद्ध पूजा-पाठों, स्तवन-विनती-पद-भजनों, छहढाला, समाधिमरण, जोगीरासा प्रभृति पाठों, पुराणों की तथा कई एक सैद्धान्तिक एवं चारणानुयोगिक ग्रन्थों की भाषा वचानिकाओं के नित्यपाठ, स्वाध्याय अथवा शास्त्र प्रवचनों में बहुत उपयोग के कारण वर्तमान शताब्दी ई० के प्राथमिक दशकों में, कम से कम उत्तर भारत के जैनी जन मध्योत्तर कालीन अनेक हिन्दी जैन कवियों एवं साहित्यकारों के नाम और कृतियों से परिचित रहते आये थे। किन्तु उस समय हिन्दी जैन साहित्य के इतिहास की कोई रूपरेखा नहीं थी। कतिपय नाम आदि के अतिरिक्त पुरातन कवियों एवं लेखकों के विषय में विशेष कुछ ज्ञात नहीं था। उनका पूर्वापर भी ज्ञात नहीं था। लोकप्रियता के बल पर ही उनकी रचनाओं का प्रचलन था। मुद्रणकला के प्रयोग ने भी वैसी रचनाओं के व्यापक प्रचार-प्रसार में योग दिया। किन्तु उक्त रचनाओं का साहित्यिक मूल्यांकन नहीं हो पाया था। जैनेतर हिन्दी जगत् तो हिन्दी जैन साहित्य से प्रायः अपरिचित ही था, अतः समग्र हिन्दी साहित्य में उसका क्या कुछ स्थान है, यह प्रश्न ही नहीं उठा था। केवल 'मिश्रबन्धु विनोद' में कुछएक जैन कवियों का नामोल्लेख मात्र हुआ था।

जबलपुर में हुए सप्तम हिन्दी साहित्य सम्मेलन में स्व० पं० नाथूराम जी प्रेमी ने अपने निबन्ध पाठ द्वारा हिन्दी जगत का ध्यान हिन्दी जैन साहित्य की ओर सर्वप्रथम आकर्षित किया। सन् १९१७ में वह निबन्ध "हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास" नाम से पुस्तकाकार भी प्रकाशित हो गया। शनैः शनैः हिन्दी साहित्य के इतिहासों एवं आलोचनात्मक ग्रन्थों में जैन साहित्य की ओर भी क्वचित संकेत किये जाने लगे। शास्त्र भण्डारों की खोज चालू हुई। हस्तलिखित प्रतियों के मुद्रण-प्रकाशन का क्रम भी चलता रहा। सन् १९४७ में स्व० बा० कामता प्रसाद जैन का 'हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' और सन् १९५६ में पं० नेमिचन्द्र शास्त्री का 'हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन' (२ भाग) प्रकाशित हुए। विभिन्न शास्त्र भण्डारों की छानबीन और ग्रन्थ सूचियाँ प्रकाशित होने लगीं। अनेकान्त, जैन सिद्धान्त भास्कर आदि पत्रिकाओं में हिन्दी के पुरातन जैन लेखकों और उनकी कृतियों पर लेख प्रकाशित होने लगे। परिणाम स्वरूप हिन्दी जैन साहित्य ने अपना स्वरूप और इतिहास प्राप्त कर लिया और अनेक विश्वविद्यालयों ने पी० एच० डी० आदि के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिए की जाने वाली शोध-खोज के लिए इस क्षेत्र की क्षमताओं एवं सम्भावनाओं को स्वीकार करना प्रारम्भ कर दिया। गत दो दशकों में लगभग आधी दर्जन स्वीकृत शोध प्रबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं, तथा वर्तमान में पचीसों शोध छात्र छात्राएँ हिन्दी जैन साहित्य के विविध अंगों या पक्षों पर शोध कार्य में रत हैं।

इस सब के बावजूद इस क्षेत्र में कई खटकने वाली कमियां अभी भी हैं, यथा—(१) हिन्दी के जैन साहित्यकारों की सूची अभी पूर्ण नहीं है—शोध खोज के फलस्वरूप उसमें कई नवीन नाम जोड़े जाने की सम्भावना है। (२) ज्ञात साहित्यकारों की भी सभी रचनाएँ ज्ञात नहीं हैं—उनमें वृद्धि होते रहने की सम्भावना है। (३) ज्ञात रचनाओं में से भी सब उपलब्ध नहीं हैं, और उपलब्ध रचनाओं में से अनेक अभी भी अप्रकाशित हैं। (४) जो कृतियां प्रकाशित भी हैं उनमें से बहुभाग के सुसम्पादित स्तरीय संस्करण नहीं हैं। (५) सभी साहित्यकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रमाणिक, विशद आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक प्रकाश डाला जाना अपेक्षित है। (६) रचनाओं का भी विस्तृत साहित्यिक एवं समीक्षात्मक अध्ययन अपेक्षित है, और (७) महत्वपूर्ण जैन साहित्यकारों तथा उनकी प्रमुख कृतियों का उनके समसामयिक जैनेतर हिन्दी साहित्यकारों तथा उनकी कृतियों के साथ तुलनात्मक अध्ययन करके उनका उचित मूल्यांकन करने और समग्र हिन्दी साहित्य के इतिहास में उनका समुचित स्थान निर्धारित करने की आवश्यकता है।

प्रसन्नता का विषय है कि जयपुर के साहित्य प्रेमियों ने श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना की है, जिसके प्राण सुप्रसिद्ध अनुसंधित्सु बन्धुवर डा० कस्तूरचंद जी कासलीवाल हैं। उन्हीं के उत्साहपूर्ण अध्यवसाय और श्लाघनीय सद्प्रयास से श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी उपरोक्त अभावों की बहुत कुछ पूर्ति में संलग्न हो गई प्रतीत होती है। उसका प्रथम पुष्प 'महाकवि ब्रह्म रायमल्ल और भट्टारक त्रिभुवन कीर्त्ति" था, जिसमें उक्त दोनों साहित्यकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रभूत प्रकाश डालते हुए उनकी रचनाओं को भी सुसम्पादित रूप में प्रकाशित कर दिया है। प्रस्तुत द्वितीय पुष्प में १६ वीं शती ई० के पूर्वार्ध के पांच प्रतिनिधि कवियों—ब्रह्म बूचराज, छीहल, चतुरुमल, गारवदास और ठक्कुरसी के व्यक्तित्व एवं कृतीत्व पर यथासम्भव विस्तृत प्रकाश डालते हुए और सम्यक् मूल्यांकन करते हुए उनकी सभी उपलब्ध ४४ रचनाएँ भी प्रकाशित कर दी हैं। डा० कासलीवाल जी की इस अभूतपूर्व सेवा के लिए साहित्य जगत् चिरऋणी रहेगा। संवत् १५६१ से १६०० तक की अर्द्ध शती एक सन्धिकाल था। राजस्थान को छोड़कर प्राय: सम्पूर्ण उत्तर भारत में मुस्लिम शासन था। उक्त अवधि में राजधानी दिल्ली से सिकन्दर और इब्राहीम लोदी, बाबर और हुमायुँ, मुगल तथा शेरशाह एवं सलीमशाह सूर ने क्रमशः शासन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया। अपभ्रंश में साहित्य सृजन का युग समाप्त हो रहा था, और पिछले लगभग दोसौ वर्षों से जो हिन्दी शनैः-शनैः उसका स्थान लेती आ रही थी, उसने अपने स्वरूप का स्थैर्य बहुत कुछ प्राप्त कर लिया था। मुगल सम्राट अकबर का शासन अभी प्रारम्भ नहीं हुआ था—उसके शासनकाल में ही हिन्दी जैन साहित्य का स्वर्णयुग प्रारम्भ हुआ जो अगले लगभग तीन सौ वर्ष तक चलता रहा।

अस्तु इस ग्रन्थ में चर्चित अपने युग के उक्त प्रतिनिधि कवियों का, न केवल हिन्दी जैन साहित्य के वरन् समग्र हिन्दी साहित्य के इतिहास में अपना एक महत्व है, जिसे समझने में अकादमी का यह प्रकाशन सहायक होगा। खोज निरन्तर चलती रहती है, और भावी लेखक अपने पूर्ववर्ती लेखकों की उपलब्धियों के सहारे ही आगे बढ़ते हैं। आशा है कि श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की यह पुष्प शृंखला चालू रहेगी और हिन्दी जैन साहित्य के अध्ययन एवं समुचित मूल्यांकन की प्रगति में अतीव सहायक होगी। योजना की सफलता के लिए हार्दिक शुभकामना है।

ज्योतिप्रसाद जैन
दरबारीलाल कोठिया
मिलापचन्द शास्त्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेखक की ओर से

हिन्दी साहित्य कितना विशाल एवं विविध परक है इसका अनुमान लगाना ही कठिन है। इस हिन्दी साहित्य को अंकुरित, पल्लवित एवं विकसित करने में जैन कवियों ने जो योगदान दिया है उसके शतांश का भी प्रकाशन एवं मूल्यांकन नहीं हो सका है। काव्य के विविध क्षेत्रों में उन्होंने जो अपनी लेखनी चलायी वह अद्‌भुत है। जैसे-जैसे ये अज्ञात कवि हमारे सामने आते जाते हैं हम उनके महत्व से परिचित होते जाते हैं तथा दांतों तले अंगुली दबाने लगते हैं।

प्रस्तुत पुष्प मेंसंवत् १५६१ से १६०० तक होने वाले ४० वर्षों के पांच प्रमुख कवियों का परिचय प्रस्तुत किया गया है। ये कवि हैं—ब्रह्म बूचराज, छीहल, चतुरुमल, गारवदास एवं ठक्कुरसी। वैसे इन वर्षों में और भी कवि हुए जिनकी संख्या १३ है। जिनका संक्षिप्त परिचय प्रारम्भ में दिया गया है। लेकिन इन पांच कवियों को हम इन ४० वर्षों का प्रतिनिधि कवि कह सकते हैं। इन कवियों में से गारवदास को छोड़कर किसी ने भी यद्यपि प्रबन्ध काव्य नहीं लिखे किन्तु उस समय की मांग के अनुसार छोटे-छोटे काव्यों की रचना कर जन साधारण को हिन्दी की ओर आकर्षित किया। अभी तक इन कवियों के सामान्य परिचय के अतिरिक्त न उनका विस्तृत मूल्यांकन ही हो सका तथा न उनकी मूल रचनाओं को पढ़ने का पाठकों को अवसर प्राप्त हो सका। इसलिए इन कवियों द्वारा रचित सभी रचनाएँ जिनकी संख्या ४४ है प्रथम बार पाठकों के सम्मुख आ रही है। इनके अतिरिक्त इनमें से कम से कम १५ रचनाएँ तो ऐसी हैं जिनका नामोल्लेख भी प्रथम बार ही प्राप्त होगा।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में संवत् १५६१ से १६०० तक के काल को भक्ति काल माना है किन्तु जैन कवि किसी काल अथवा सीमा विशेष में नहीं बंधे। उन्होंने जन सामान्य को अच्छा से अच्छा साहित्य देने का प्रयास किया। ब्रह्म बूचराज रूपक काव्यों के निर्माता थे। उनका 'मयणजुज्झ' एवं 'संतोषजयतिलकु' दोनों ही सुन्दर एवं महत्वपूर्ण रूपक काव्य हैं। जिनका पाठक प्रस्तुत पुस्तक में रसास्वादन कर सकेंगे। इसी तरह बूचराज की "चेतन पुद्गल धमाल" उत्तर-प्रत्युत्तर के रूप में लिखी हुई बहूत ही उत्तम रचना है। चेतन एव पुद्गल के मध्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो रोचक वाद-विवाद होता है और दोनों एक-दूसरे को दोषी ठहराने का प्रयास करते हैं। कवि ने एक से एक सुन्दर युक्ति द्वारा चेतन एवं पुद्गल के पक्ष को प्रस्तुत किया है वह उसकी अगाध विद्वत्ता का परिचायक है साथ ही कवि के आध्यात्मिक होने का संकेत है। सारे जैन साहित्य में इस प्रकार की यह प्रथम रचना है। इन तीन कृतियों के अतिरिक्त 'नेमीश्वर का बारहमासा' लिख कर कवि ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि जैन कवि जब वियोग शृंगार काव्य लिखने बैठते हैं तो उसमें भी वे पीछे नहीं रहते। इसी तरह 'नेमिनाथ वसन्तु', 'टंडाणा गीत' एवं अन्य गीत हैं। अब तक कवि की ११ कृतियों का मैंने 'राजस्थान के जैन सन्त' में उल्लेख किया था किन्तु बड़ी प्रसन्नता है कि कवि की आठ और कृतियों को खोज निकाला गया है और सभी के पाठ इसमें दिये गये हैं।

इस पुष्प के द्वितीय कवि हैं छीहल, जिनके सम्बन्ध में रामचन्द्र शुक्ल से लेकर सभी आधुनिक विद्वनों ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में चर्चा की है। छीहल कवि एक ओर "पंच सहेली गीत" जैसी लौकिक रचना करते हैं तो दूसरी ओर 'बावनी' जैसी विविध विषय परक रचना लिखने में सिद्धहस्त हैं। छीहल की 'पंच सहेली गीत' रचना बहुत ही मार्मिक रचना है। प्रस्तुत पुष्प में हम छीहल की सभी छह रचनाओं को प्रकाशित कर सके हैं।

चतुरुमल तीसरे कवि हैं। कवि के अभी तक चार गीत एवं एक "नेमीश्वर को उरगानो" कृति मिल सकी है। ये ग्वालियर के निवासी थे। संवत् १५७१ में निबद्ध 'नेमीश्वर का उरगानो' कवि की सुन्दर कृति है। अब तक चतुरु की केवल एकमात्र रचना का ही उल्लेख हुआ था लेकिन अब उसके चार गीत और प्राप्त हो गये हैं जो हमारे इस पुष्प की शोभा बढ़ा रहे हैं।

गारवदास हमारे चतुर्थ कवि हैं जिनकी एकमात्र रचना "यशोधर चौपई" अभी तक प्राप्त हो सकी है। लेकिन यह एक रचना ही उनकी अमर यशोगाथा के लिए पर्याप्त है। महाकवि तुलसी के रामचरित मानस के पूरे १०० वर्ष पूर्व चौपई छन्द में निबद्ध यशोधर चौपई हिन्दी की बेजोड़ रचना है। अभी तक गारवदास हिन्दी जगत् के लिये ही नहीं, जैन जगत् के लिए भी अज्ञात से ही थे। चौपई में ५४० पद्य हैं जिनमें कुछ संस्कृत एवं प्राकृत गाथाएँ भी हैं।

ठक्कुरसी इस पुष्प के पांचवें एवं अन्तिम कवि हैं। ठक्कुरसी ढूंढाहड प्रदेश के प्रमुख नगर चम्पावती के निवासी थे। इनके पिता घेल्ह भी कवि थे। इसलिए ठक्कुरसी को काव्य रचना की रुचि जन्म से ही मिली थी। ठक्कुरसी की अभी तक १५ रचनाएँ प्राप्त हुई हैं जिनमें "मेघमाला कहा" अपभ्रंश की कृति है बाकी सब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजस्थानी भाषा की कृतियां हैं। कवि की ७ रचनाओं के नाम तो प्रथम बार सुनने को मिलेंगे। कवि की पञ्चेन्द्रिय वेलि, नेमिराजमति वेलि एवं कृपण छन्द, पार्श्वनाथ सकुन सत्तावीसी, सप्त व्यसन वेलि बहुत ही लोकप्रिय रचनाएँ हैं।

उक्त पांच प्रतिनिधि कवियों के अतिरिक्त संवत् १५६१ से १६०० तक होने वाले कविवर विमलमूर्त्ति, मेलिग, पं० धर्मदास, भ० शुभचन्द्र, ब्रह्म यशोधर, ईश्वर सूरि, बालचन्द, राजहंस उपाध्याय, धर्मसमुद्र, सहजसुन्दर, पार्श्वचन्द्र सूरि, भक्तिलाभ एवं विनय समुद्र का भी संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इस प्रकार ४० वर्षों में देश में करीब १८ जैन कवि हुए जिन्होंने जैन साहित्य की महत्वपूर्ण सेवा की।

इस प्रकार प्रस्तुत पुष्प में पांच कवियों का जीवन परिचय, उनकी कृतियों का मूल्यांकन एवं उनकी कृतियों के पूरे पाठ दिये गये हैं जिनकी संख्या ४४ है। ये सभी रचनाएँ भाषा एवं शैली की दृष्टि से अपने समय की प्रमुख रचनाएँ हैं जिनमें सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक सभी पक्षों के दर्शन होते हैं। सामाजिक कृतियों में 'पञ्च सहेली गीत', 'मयणजुज्झ', 'सन्तोष जयतिलकु', 'सप्त व्यसन वेलि' के नाम उल्लेखनीय हैं जिनमें तत्कालीन समाज की दशा का सजीव वर्णन किया गया है। 'कृपण छन्द' सुन्दर सामाजिक रचना है जिसमें एक कृपण व्यक्ति का अच्छा चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त उस समय की प्रचलित सामाजिक रीति रिवाज, जैसे सामूहिक ज्यौनार, यात्रा संघ निकालना आदि का वर्णन उपलब्ध होता है। राजनैतिक दृष्टि से 'पारसनाथ सकुन सत्तावीसी' का नाम लिया जा सकता है जिसमें मुस्लिम आक्रमण के समय होने वाली भगदड़, अशान्ति का वर्णन है। साथ ही ऐसे समय में भी जिनेन्द्र भक्ति से ही अशान्ति निवारण की कल्पना ही नहीं अपितु उसी का सहारा लिया जाता था इसका भी उल्लेख मिलता है।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन में श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी का विशेषत: उसके संरक्षक, अध्यक्ष, उपाध्यक्षों तथा सभी माननीय सदस्यों का मैं पूर्ण आभारी हूँ जिनके सहयोग के कारण ही हम प्रकाशन योजना में आगे बढ़ सके हैं। हिन्दी जैन कवियों के मूल्यांकन एवं उनकी मूल रचनाओं के प्रकाशन का यह प्रथम योजनाबद्ध प्रयास है। आशा है समाज के सभी महानुभावों की शुभकामनाओं एवं आशीर्वाद से इसमें हम सफल होंगे।

मैं सम्पादक मण्डल के सभी तीनों विद्वान सम्पादकों—आदरणीय डा० ज्योतिप्रसाद जी जैन लखनऊ, डा० दरबारीलाल जी सा० कोठिया वाराणसी एवं पं० मिलापचन्द जी सा० शास्त्री जयपुर का, उनके पूर्ण सहयोग के लिए आभारी हूँ। डा० कोठिया सा० तो अकादमी की सचालन समिति के भी माननीय सदस्य हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीनों ही सम्पादकों का अकादमी की योजना को आशीर्वाद प्राप्त है तथा समय-समय पर उनसे सम्पादन के अतिरिक्त सदस्यता अभियान में सहयोग मिलता रहा है ।

सम्पादन के लिए पाण्डुलिपियां उपलब्ध कराने में श्रीमान् केशरीलाल जी गंगवाल बूंदी का मैं पूर्ण आभारी हूँ । जिन्होंने नागदी मन्दिर बूंदी का गुटका उपलब्ध कराकर ब्रह्म बूचराज की अधिकांश रचनाओं के सम्पादन से पूर्ण सहयोग दिया । इसी तरह श्री लूणकरण जी पाण्ड्या के मन्दिर के शास्त्र भण्डार के व्यवस्थापक श्री मिलापचन्द जी बागायत वाले, शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर तेरहपन्थी के व्यवस्थापक श्री प्रेमचन्द जी सोगानी, शास्त्र भण्डार मन्दिर गोधान के व्यवस्थापक श्री राजमल जी संघी तथा शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर पाटोदियान के व्यवस्थापक श्री भंवरलाल जी बज तथा शास्त्र भण्डार पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर के व्यवस्थापक श्री अनूपचन्द जी दीवान का मैं पूर्ण आभारी हूँ जिन्होंने पाण्डुलिपियां उपलब्ध करवाकर उसके सम्पादन एवं प्रकाशन में योग दिया है । अजमेर के भट्टारकीय मन्दिर के श्री माणकचन्द जी सोगानी एडवोकेट का भी मैं पूर्ण रूप से आभारी हूँ जिन्होंने अजमेर के भट्टारकीय भण्डार से ग्रन्थ उपलब्ध कराये ।

मैं श्रीमती कोकिला सेठी एम० ए० रिसर्च स्कालर का, जिन्होंने प्रस्तुत पुस्तक की 'शब्दानुक्रमणिका तैयार की, आभारी हूँ । अन्त में मनोज प्रिंटर्स के व्यवस्थापक श्री रमेशचन्द जी जैन का आभारी हूँ जिन्होंने पुस्तक की अत्यन्त सुन्दर ढंग से छपाई की है ।

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१

कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि

इतिहास

हिन्दी साहित्य के इतिहास में संवत् १५६० से संवत् १६०० तक के काल को किसी विशिष्ट नाम से सम्बोधित नहीं करके उसे भक्ति काल में ही समाहित किया गया है। इस भक्तिकाल में निर्गुण भक्ति एवं सगुण भक्ति इन दोनों की ही प्रधानता रही और दोनों ही धाराओं के कवि होते रहे। इस समय देश में एक ओर अष्ट छाप के कवियों की सगुण भक्ति धारा की गंगा बह रही थी तो दूसरी ओर महाकवि कबीर की निर्गुण भक्ति का प्रभाव भी जन सामान्य पर छाया हुआ था। संवत् १५६० से १६०० तक के ४० वर्ष के काल में १५ से भी अधिक वैष्णव कवि हुए जिन्होंने अष्ट छाप की कविता के ढंग पर कृष्ण भक्ति से ओतप्रोत कृतियों को निबद्ध किया। भक्ति धारा को प्रवाहित करने वाले ऐसे कवियों में नरवाहन (सं० १५६५), हितकृष्ण गोस्वामी (सं० १५६७), गोपीनाथ (सं० १५६८), विठ्ठलदास (सं १५६८), अजबेग भट्ट (सं० १५६६), महाराजा केशव (सं० १५६६), मलिक मुहम्मद जायसी (सं० १५९३), मंझन (सं० १५९७), लालदास (सं० १५८५–८८), स्वामी निपट निरंजन (सं० १५९५), गोस्वामी विठ्ठलनाथ (स० १५९५), कृपाराम (सं० १५९८) के नाम उल्लेखनीय हैं।[1]

लेकिन इन ४० वर्षों में जैन हिन्दी कवियों की संख्या जैनेतर कवियों से भी अधिक रही। मिश्र बन्धु विनोद ने ऐसे कवियों में ईश्वरसूरि, छीहल, गारवदास जैन, ठक्कुरसी एवं बालचन्द ये पांच नाम गिनाये हैं।

"हिन्दी रासो काव्य परम्परा" में जिन जैन कवियों की रासा कृतियों का उल्लेख किया गया है उनमें उदयभानु, विमल मूर्त्ति, मेलिग, मुनि चन्द्रलाभ, सिवसुख सहजसुन्दर एवं पार्श्वचन्द्र सूरि के नाम उल्लेखनीय हैं। लेकिन उक्त जैन कवियों के अतिरिक्त भ० ज्ञानभूषण, ब्रह्म बूचराज, ब्रह्म यशोधर, भ० शुभचन्द्र, चतुरुमल,

---

१. विस्तृत परिचय के लिए देखिये मिश्रबन्धु विनोद पृष्ठ १३० से १५०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्मदास, पूनो जैसे और भी प्रसिद्ध जैन कवि हुए, जिन्होंने हिन्दी भाषा में कितनी ही रचनाएँ निबद्ध की और उसके प्रचार प्रसार में अपना पूर्ण योग दिया। जैन कवि किसी काल विशेष की धारा में नहीं बहे। वे जनरुचि के अनुसार हिन्दी में काव्य रचना करते रहे। प्रारम्भ में उन्होंने रास काव्य लिखे। रास काव्य लिखने की यह परम्परा अविच्छिन्न रूप से १७ वीं शताब्दी तक चलती रही। १६ वीं शताब्दी के प्रथम चरण के पूर्वार्द्ध तक महाकवि ब्रह्म जिनदास अकेले ने पचास से भी अधिक रासकाव्यों की रचना करके एक नया कीर्त्तिमान स्थापित किया। जैन कवि रास काव्यों के अतिरिक्त फागु, वेलि एवं चरित काव्य भी लिखते रहे। संवत् १३५४ में लिखित जिणदत्त चरित तथा सवत् १४११ में निबद्ध प्रद्युम्न चरित जैसे काव्य इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है।

संवत् १५६० से १६०० तक का ४० वर्षों का काल लघु काव्यों की रचनाओं का काल रहा। इन वर्षों में होने वाले बूचराज, छीहल, ठक्कुरसी, चतुरु एवं गारवदास सभी ने छोटे-छोटे काव्य लिखकर जन सामान्य में हिन्दी भाषा के प्रति रुचि जाग्रत की। इन वर्षों के जैन कवि दोनों ही वर्ग के रहे। यदि भट्टारक ज्ञानभूषण शुभचन्द्र, बूचराजः यशोधर एवं सहजसुन्दर सन्त थे तो छीहल, ठक्कुरसी, चतुरु जैसे कवि श्रावक थे। सभी कवि एक ही धारा में बहे। उन्होंने या तो उपदेशात्मक काव्य लिखे, नेमिराजुल से सम्बन्धित विरहात्मक बारहमासा लिखे या फिर रूपक काव्य एवं संवादात्मक काव्य लिखे। उन्होंने मानव की बुराइयों की ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया। बावनियों के माध्यम से विविध विषयों की उनमें चर्चा की। यद्यपि इन ४० वर्षों में सगुण भक्ति धारा का अधिक जोर था और उत्तर भारत में उसने घर-घर में अपने पांव जमा लिए थे। लेकिन अभी जैन कवि उससे अछूते ही थे। उन्होंने पद लिखना तो प्रारम्भ कर दिया था, लेकिन तीर्थंकर भक्ति में वे इतने अधिक प्रवेश नहीं कर पाये थे। इसलिए इन वर्षों में भक्ति साहित्य अधिक नहीं लिखा जा सका।

फिर भी चालीस वर्षों में बूचराज, ठक्कुरसी, छीहल जैसे श्रेष्ठ कवि हुए। जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से हिन्दी साहित्य में अपना स्थान बनाये रखा तथा आगे आने वाले कवियों के लिए मार्ग दर्शन का कार्य किया। प्रस्तुत भाग में ब्रह्म बूचराज, छीहल, ठक्कुरसी, चतुरु एवं गारवदास का जीवन परिचय, मूल्यांकन एवं उनके काव्य पाठ दिये जा रहे हैं। इसलिए उक्त कवियों के अतिरिक्त अवशिष्ट जैन कवियों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१. विमल मूर्त्ति

विमल मूर्त्ति कृत पुण्यसार रास संवत् १५७१ की रचना है ।[1] इसे कवि ने धूंधक नगर में समाप्त किया था । विमलमूर्त्ति आगमगच्छ के हेमरत्न सूरि के शिष्य थे ।[2] रास का आदि अन्त भाग निम्न प्रकार है—

आदि—

केवल ज्ञान अलंकारी सेवइ अमर नरेस
सयल जनु हितकारी जिणवाणी पमणेस
हेमसूरि गुरु बुझिविउ कुमारपाल भूपाल
जेह समु जगि को नहीं जीव दया प्रतिपाल

अन्त—

तसु सानिध्यइ ए अवकास
सांभलता हुइ पुण्य प्रकास ॥८३॥

२. मेलिग

मेलिग कवि १६ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण के कवि थे । वे तपागच्छ के मुनि सुन्दरसूरि के शिष्य थे । उन्ही की आज्ञा से उन्होंने प्रस्तुत रास की रचना की थी ।[3] संवत् १५७१ में इन्होंने 'सुदर्शन रास' की रचना अपने गुरु की आज्ञा से समाप्त की थी । सुदर्शन रास की एक प्रति पाटण के जैन भण्डार में तथा एक राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान में सुरक्षित है ।[3]

---

१. संवत् पनर एकोतरइ पोस बदि इग्यारसि अंतरइ ।
धूंधकइ पुरि पास समध्य, सोमवार रचिउं अवध्य ॥८०॥
हिन्दी रासो काव्य परम्परा, पृष्ठ सं० १६१ ।

२. आगम गछ प्रकास दिणंद
श्री हेमरत्न गुरु सूरि गुणचन्द ॥८१॥
हिन्दी रासो काव्य परम्परा पृष्ठ सं० १६१

३. संवत पनर एकोतरइ एम्हा, जेठह चउथि विशुद्ध-सुणि ।
पुष्प नक्षत्र गुरु वारिसें ए. म्हा चरित्र ए पुहवि प्रसिद्ध सुणि ॥२२२॥

३. आदि भाग—पहिलउं प्रणमिसु अनुक्रमिइए जिणवर चुबीस ।
पछइ शासीन देवताए तहि नामुं सीस ।

क्रमशः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. पं० धर्मदास

पं० धर्मदास उन कवियों में से हैं जिनके साहित्य और जीवन से हिन्दी जगत अपरिचित सा है। हिन्दी जैन साहित्य के इतिहास में भी इनका केवल नामोल्लेख ही हुआ है। धर्मदास का जन्म कब और कहां हुआ था इसका उल्लेख न तो स्वयं कवि ने ही अपनी रचना में किया है और न अन्यत्र ही मिलता है। लेकिन संवत् १५७८ वैशाख सुदि ३ बुधवार के दिन इन्होंने 'धर्मोपदेशश्रावकाचार' को समाप्त किया था।[1] इस आधार पर इनके जन्म काल का अनुमान किया जा सकता है। कवि की अभी तक एक ही रचना मिल सकी है। अतः यह सम्भव है कि उन्होंने यही एक रचना लिखी हो।

धर्मदास ने सम्पन्न घराने में जन्म लिया था। इनके वंशज दानी परोपकारी तथा दयावान थे। ये 'साहु' कहलाते थे। साहु शब्द प्राचीन काल में प्रतिष्ठित और धनाढ्य पुरुषों के लिए प्रयोग हुआ हैं तथा जो साहूकारी का कार्य करते थे वे भी साहू कहलाते थे। कवि के पिता का नाम रामदास और माता का नाम शिवी था। इनके पितामह का नाम 'पदम' था। ये विद्वान् तथा चतुर पुरुष समझे जाते थे। सज्जनता इममें कूट-कूट कर भरी हुई थी। स्वयं विधाता ने ही मानों इनको परोपकारी बनाया था। देश-देश के बहुत से मित्र इनसे सभी प्रकारके कार्यों के लिए सलाह लिया करते थे। ये कवियों और विद्वानों को खूब सम्मान देते थे। कवि की वंशावली इस प्रकार है[2]—

समरीअ सामिणि सारदा सामिणि संभारु।
आगइ पालउ प्रतिपय कवितएं कारु॥

अन्त भाग—शील प्रबन्ध जे सांभलिए ए म्हाः ते नर नारि धनधत्व सु।
सुदर्शन रिषि कवलीए म्हा: चउविह संघ सूप्रसन्न ॥२५॥

१. पन्द्रहसै अट्ठहत्तरि वरिसु संवच्छरु कुसलह कन सरसु।
निर्मल वैशाखी अखतीज बुधवार गुनियहु जानोज ॥

२. जिन पय भत्तउ होरिल साहू. सो जु दान पूज कौ पवाहू।
तासु तू मनु सत्य जस गेहू, धर्मशील वंत जानेहू।
तासु पुत्र जेठौ करमसी, जिनमति सुमति जासु मन वसी।
दया आदि दे धर्म हि लीन. परम विवेकी पाप विहीन।

क्रमशः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होरिल साहू
↓
करमसी
↓
पदम
↓
रामदास
↓
धर्मदास

धर्मदास को जैन धर्म पर दृढ़ श्रद्धान था। वह शुद्ध श्रावक था तथा श्रावक धर्म को जीवन में उतार लिया था। यद्यपि कवि गृहस्थ था। व्यापार करके आजीविकोपार्जन करता था फिर भी उसका अधिक समय शास्त्रों के पठन-पाठन में व्यतीत होता था।

जैनधर्म सेवै नित्त, अरु दह लक्षण भाव पवित्त।
नित निर्ग्रन्थ गुरनि मांनउ, जिन आगम कहू पठतु सुंनहू।

धर्मोपदेशश्रावकाचार में दैनिक जीवन में जन साधारण के मन में उतारने योग्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह परिमाण के अतिरिक्त आठ मद, दस धर्म, बारह भावना और सप्त व्यसन पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

कवि ने रचना में अपना कोई पांडित्य का प्रदर्शन नहीं करके साधारण भाषा में विषय का वर्णन किया है। शब्दों को तोड़ मरोड़ कर प्रयोग करने की आदत कवि में नहीं पायी जाती और न आलंकारिक भाषा मे पाठकों के चित्त को उलझन में डालने की चेष्टा की गयी है।

पदम नाम ताकै भौ पूत, कवियनु वेदकु कला संजूत।
अवर वहुत गुन गहिर समान, महा सुमति अति चतुर सुजानु।
अरु सो सज्जनता गुण लीन, पर उपगारी विधना कीन।
बहू मिन्त्री तस मनवि कोइ, सलह ही देस देस को लोइ।
राम सिवी तसू तनिय कलत्त, परम सील वे पस्य पवित्र।
तासु उदर सुत उपनौ वेबि, जिनु तिजि अवरन धार्वाहि ते वि।
जै कौ धर्म विनुह सिरमनी, जिहि पर राम अवांगनी।
दयालीन जिनवर पय धुनी, पर पायो धनु धूलि सम गिनै।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसारी जीव का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है जो युवावस्था में विलासिता में फंसा रहता है, इन्द्रियों ने जिस पर विजय प्राप्त करली है जिसका जीवन इन्द्रियों की लालसा तथा वासना को पूर्ण करने में ही व्यतीत होता है। ऐसा मनुष्य संसारी कहलाने योग्य है उस मनुष्य को लौकिक जीवन के सुधारने में कभी सफलता नहीं मिलती ।

राग लीन जौवन महि रहे इन्द्री जिते परीसा सहै ।
ता कहू सिद्धि कदाचित होइ संसारी तिन जानहु सोइ ।।

पण्डित अथवा विवेकी मनुष्य वही है जो पुत्र, मित्र, स्त्री, धन आदि पर अनुचित मोह नहीं करता है तथा उनके उपयोग के अनुसार ही उन पर मोह करता है—

पुत्र, मित्र नारी धन धानु, बंधु सरीर जु कुल असमान ।
अवरु प्रीय वस्तु अनुसरै ता पर राग न पण्डित करै ।

वेश्यागमन मनुष्य के लिए अति भयंकर है । वह उसे कर्त्तव्य मार्ग से विमुख कर देता है । इस जीवन को तो दुखमय बना ही देता है किन्तु पारलौकिक जीवन को भी दुख में डाल देता है। सच्चरित्र पुरुष वेश्या के पास जाते हुए डरते हैं । क्योंकि व्यसनों में फंसाना ही उसका काम होता है—

वेश्या संग धर्म को हरै, वेश्या संग नर्क को करै ।
जाते होइ सुगति को भंगु, नहि ते तज नौ वेश्या संगु ।।

मनुष्य जीवन बार-बार नहीं मिलता । जो इस जीवन का सदुपयोग नहीं करता उसको अन्त में पश्चाताप के सिवा कुछ नहीं मिलता । जैसे समुद्र में फेंके गये माणक को फिर से प्राप्त करना मुश्किल है उसी प्रकार मनुष्य जीवन दुर्लभ है । लेकिन प्राप्त हुए मानव जीवन को व्यर्थ खोना सबसे बड़ी मूर्खता है । वह मनुष्य उस मूर्ख के समान है जो हाथ में आये हुए माणक को कौए को उड़ाने में फेंक देता है—

समुद माइ माणिक गिरि जाइ, बूडत उछरत हाथ चडाइ ।
पुनु सो काग उडावन काज, राख्यौ रतन मूढ वे काज ।
तेम जीव भव सागर माहि, पायो मानुस जन्म अनाहि ।

श्रेष्ठ मनुष्यों की संगति ही जीवन को उन्नत करती है । कुसंगति से मनुष्य व्यसनी बन जाता है । कुसंगति से गुणी-निर्गुणी, साधु असाधु तथा धर्मात्मा पापी बन जाता है । यह उस दावानल के समान है जो हरे-भरे वन को जला कर राख कर देती है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्वरी मांसाहारी जीव अवगनु, जिन्हि चोरी की भीव।
पर तिय लीन करहि मद पान, तिन सौं सत्रुन दूजो आन।
करै कुमित्र संगु जो कोइ, गुनवन्तो जो निर्गुण होइ।
सूखै दाद संग ज्यो ह्र्यौ दावानल महि पुनु सौ पर्यो।

इस प्रकार कवि समाज के शिक्षक के रूप में हमारे समक्ष आता है। उसने यह दर्शाया है कि गृहस्थी रहकर भी मानव अपने जीवन को उन्नत बना सकता है। उसे साधु सन्यासी बनने की आवश्यकता नहीं है।

कवि की रचना में ब्रजभाषा तथा अवधी भाषा के शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है। इससे तत्कालीन हिन्दी साहित्य पर उक्त दोनों भाषाओं का प्रभाव झलकता है। अलंकारिक भाषा न होते हुए भी उदाहरणों के प्रयोग से रचना सुन्दर बन गयी है।

४. भट्टारक शुभचन्द्र

शुभचन्द्र भट्टारक विजयकीर्ति के शिष्य थे। वे अपने समय के प्रसिद्ध भट्टारक, साहित्य प्रेमी, धर्म प्रचारक एवं शास्त्रों के प्रबल विद्वान थे। इनका जन्म संवत् १५३०–४० के मध्य हुआ था। जब वे बालक थे तभी इनका भट्टारकों से सम्पर्क हो गया। पहले इन्होंने संस्कृत एवं प्राकृत के ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया। तत्पश्चात् व्याकरण एवं छन्द शास्त्र में निपुणता प्राप्त की।

संवत् १५७३ में ये भट्टारक के सम्माननीय पद पर आसीन हो गये। इनकी कीर्ति धीरे-धीरे देश में फैल गयी। ये राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब एवं उत्तर प्रदेश सभी प्रदेशों में लोकप्रिय बन गये। ये वक्तृत्व कला में पटु तथा आकर्षक व्यक्तित्व वाले सन्त थे। इन्होंने जो साहित्य-सेवा की थी वह अभूतपूर्व एवं अद्वितीय है। भट्टारक के उत्तरदायित्व एवं सम्माननीय पद पर होते हुए भी इनका विशाल साहित्य सर्जन अनुकरणीय है।

शुभचन्द्र ४० वर्षों तक भट्टारक पद पर रहे। चालीस वर्षों में इन्होने संस्कृत की ४० रचनाएं एवं हिन्दी की ७ रचनाओं का सर्जन किया। हिन्दी रचनाओं में "तत्वसार दूहा", "दान छन्द", "गुरु छन्द", "महावीर छन्द", नेमिनाथ छन्द, विजयकीर्ति छन्द एवं अष्टाह्निका गीत के नाम उल्लेखनीय हैं। तत्वसार दूहा के अतिरिक्त सभी लघु कृतियां हैं। तत्वसार दूहा सैद्धान्तिक रचना है, जो जैन सिद्धान्त पर आधारित है। इसमें ९१ दूहे हैं। इसे श्रावक दुलहा के अनुरोध से लिखा था। महावीर छन्द में २७ पद्य हैं, इसी तरह विजयकीर्ति छन्द में २९ पद्य हैं। गुरु छन्द

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में ११ तथा नेमिनाथ छन्द में २५ पद्य हैं।[1]

५. ब्रह्म यशोधर

ब्रह्म यशोधर का जन्म कब और कहाँ हुआ इस विषय में कोई निश्चित जानकारी उपलब्ध नहीं होती। लेकिन एक तो ये भट्टारक सोमकीर्ति (संवत् १५२६ से १५४०) के शिष्य थे तथा दूसरी इनकी रचनाओं में संवत् १५८१ एवं १५८५ ये दो रचना-काल दिये हुए हैं इसलिए इनका समय भी संवत् १५४० से १६०० तक के मध्य तक निश्चित किया जा सकता है। इनकी रचनाओं वाला एक गुटका नैणवां (राजस्थान) के शास्त्र भण्डार में उपलब्ध हुआ है। उसमें इनकी बहुत सी रचनाए दी हुई हैं तथा वह इनके स्वयं के हाथ का लिखा हुआ है।

अब तक कवि के नेमिनाथ गीत (तीन) मल्लिनाथ गीत, बलिभद्र चौपई के अतिरिक्त अन्य कितने ही गीत उपलब्ध हुए हैं, जो विभिन्न शास्त्र भण्डारों में संग्रहीत हैं। बलिभद्र चौपई इनकी सबसे बड़ी कृति है जो १८९ पद्यों में समाप्त होती है। कवि ने इसे संवत् १५८५ में स्कन्ध नगर के अजितनाथ के मन्दिर में पूर्ण की थी। कवि की सभी रचनाएं भाव भाषा एवं शैली की दृष्टि से उच्चस्तरीय रचनाएं हैं।[2]

६. ईश्वर सूरि

ये शान्ति सूरि के शिष्य थे। इनकी एकमात्र कृति 'ललिताङ्ग चरित्र' का उल्लेख मिश्रबन्धु ने किया है।[3] ललिताङ्ग चरित्र का रचना काल संवत् १५६१ है।

सालंकार समत्थं सच्छन्दं सरस सुगुण सजुत्तं।
ललियंग क्रम चरियं ललणा ललियव निसुणेह।
महि महति मालव देस धण कणय लांच्छि निवेस।
तिह नयर मांडव दुग्ग अहि नवउ जाणकि सग्ग।
नव रस विलास उल्लोल नवगाह गेह कलोल।
निज बुद्धि बहुअ बिनाणि, गुरु धम्म कफ बहु जाणि।

---

१. कवि का विस्तृत परिचय के लिए देखिये लेखक की कृति "वीर शासन के प्रभावक आचार्य"—पृष्ठ संख्या १७८ से १८८ तक।

२. विशेष परिचय के लिए लेखक की कृति—'राजस्थान के जैन सन्त—व्यक्तित्व एवं कृतित्व' पृष्ठ संख्या ८३ से ९२।

३. मिश्रबन्धु विनोद, पृष्ठ संख्या १३४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इय पुण्य चरिय संवन्घ ललिअंग नृप संबंध ।
पहु पास चरियह चित्त उद्धरिय एह चरित्त ॥

७. बालचन्द

इन्होंने संवत् १५८० में राम-सीता चरित्र की रचना की थी ।[1]

८. राजशील उपाध्याय

खतरगच्छ के साधु हर्ष के शिष्य थे। इन्होंने संवत् १५६३ में चित्तौड़ नगर में 'विक्रम चरित्र चौपई' की रचना की थी। रचना काल एवं रचना स्थान का वर्णन निम्न प्रकार दिया हुआ है ।[2]

पनरसइ त्रिसठी सुविचारी जेठ मासि उज्जान पाखि सारी ।
चित्रकूट गढ तास मझाई भणता भवियण जय जयकारी ।

९. वाचक धर्मसमुद्र

धर्मसमुद्र वाचक विवेकसिंह के शिष्य थे। अब तक इनकी निम्न रचनाएं प्राप्त हो चुकी हैं[3]—

सुमित्रकुमार रास — संवत् १५६७
गुणाकर चौपई — संवत् १५७३
कुलध्वज कुमार — संवत् १५८४
सुदर्शन रास —
सज्झाय —

१०. सहजसुन्दर

ये उपाध्याय रत्नसमुद्र के शिष्य थे। संवत् १५७० से १५९६ तक लिखी हुई इनकी २० रचनायें प्राप्त होती हैं। इनमें इलातीपुत्र सज्झाय, गुणरत्नाकर छन्द (सं० १५७२), ऋषिदत्ता रास, आत्मराग रास के नाम उल्लेखनीय है।

११. पार्श्वचन्द्र सूरि

पार्श्वचन्द्र सूरि का राजस्थानी जैन कवियों में उल्लेखनीय स्थान है। इन्हीं के नाम से पार्श्वचन्द्र गच्छ प्रसिद्ध हुआ था। ९ वर्ष की आयु में ये मुनि बन गए।

---

१. मिश्रबन्धु विनोद, पृष्ठ संख्या १४४।
२. राजस्थान का जैन साहित्य, पृष्ठ संख्या १३२।
३. राजस्थान का जैन साहित्य, पृष्ठ संख्या १७३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गहन अध्ययन के पश्चात् १७ वर्ष की आयु में ये उपाध्याय बन गये। जब २८ वर्ष के थे तो ये आचार्य पद से सम्मानित किये गये। साहित्य निर्माण में इन्होंने गहन रुचि ली और पर्याप्त संख्या में ग्रन्थ निर्माण करके एक कीर्तिमान स्थापित किया। इनकी भाषा टीकायें प्रसिद्ध हैं जिनमें राजस्थानी गद्य के दर्शन होते हैं।[1] संवत् १५९७ में इन्होंने वस्तुपाल तेजपाल रास की रचना समाप्त की थी।[2]

१२. भक्तिलाभ एवं चारुचन्द्र

भक्तिलाभ एवं चारुचन्द्र दोनों गुरु शिष्य थे। राजस्थानी भाषा में इन्होंने कितने ही स्तवन लिखे थे। ये संस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे। चारुचन्द्र ने संवत् १५७२ में बीकानेर में उत्तमकुमार चरित्र की रचना की थी।[3]

१३. वाचक विनयसमुद्र

ये उपवेशीय गच्छ वाचक हर्षसमुद्र के शिष्य थे। अब तक इनकी ३० रचनाएं उपलब्ध हो चुकी है जिनका रचना काल संवत् १५८३ से १६१४ तक का है। इनकी विक्रम पंचदंड चौपई (सं० १५८३) आराम शोभा चौपई (स० १५८३) अम्बड चौपई (सं० १५९९) मृगावती चौपई (सं० १६०२) पद्मावती रास (सं० १६०४) पद्म चरित्र (सं० १६०४) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।[4]

उक्त कवियों के अतिरिक्त इन ४० वर्षों में और भी जैन कवि हुये हैं जिन्होंने हिन्दी में विपुल साहित्य का निर्माण किया था। देश के विभिन्न शास्त्र भण्डारों में ऐसे कवियों की खोज जारी हैं।

ब्रह्म बूचराज

कविवर ब्रह्म बूचराज विक्रम की १६ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण के कवि थे। वे भट्टारकीय परम्परा के साधु थे तथा ब्रह्मचारी पद को सुशोभित करते थे। कवि ने अपना सबसे अधिक जीवन राजस्थान में ही व्यतीत किया था और एक स्थान से दूसरे स्थान पर बराबर विहार करके यहाँ की साहित्यिक जाग्रति में अपना योग दिया था। रूपक काव्यों के निर्माण में उन्होंने सबसे अधिक रुचि ली साथ ही जन सामान्य में अपने काव्यों के माध्यम से आध्यात्मिकता का प्रचार प्रसार किया।

---

१. राजस्थान का जैन साहित्य पृष्ठ १७३।
२. हिन्दी रासो काव्य परम्परा-पृष्ठ १९६-९७।
३. राजस्थान का जैन साहित्य पृष्ठ १७३।
४. विस्तृत परिचय के लिए—राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल—पृष्ठ ६६-७६.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्म बूचराज भट्टारक भुवनकीर्ति के शिष्य थे।[1] जो अपने समय के सम्माननीय भट्टारक थे। वे सकलकीर्ति जैसे भट्टारक के पश्चात् भट्टारक पद पर विराजमान हुए थे। बूचराज ने भुवनकीर्ति गीत में भट्टारक रत्नकीर्ति का भी उल्लेख किया है जिससे जान पड़ता है कि कवि को अपने अन्तिम समय में कभी-कभी भट्टारक रत्नकीर्ति के पास रहने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ था। इसीलिए उन्होंने भुवनकीर्ति गीत में 'बूचराज भणि श्री रत्नकीर्ति पाटिउ संगु कलिया सुरतरो" रत्नकीर्ति के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित की है।

कवि राजस्थानी विद्वान थे। लेकिन इनका पर्याप्त समय पंजाब के नगरों में व्यतीत हुआ था। इन्होंने स्वयं अपने जन्म-स्थान, माता-पिता, शिक्षा-दीक्षा, आयु आदि के बारे में कुछ भी परिचय नहीं दिया। इनकी अधिकांश रचनाएँ राजस्थान के शास्त्र भण्डारों में ही उपलब्ध हुई है। इसलिए इन्हें राजस्थानी विद्वान् कहा जा सकता है। इन्होंने अपनी दो रचनाओं में रचना संवत् का उल्लेख किया है। जो संवत् १५८९ एवं संवत् १५९१ है। संवत् १५८९ में रचित मयणजुज्झ में इन्होंने न किसी स्थान विशेष का उल्लेख किया है और न किसी व्यक्ति विशेष का परिचय दिया। इसी तरह संवत् १५९१ में रचित 'संतोष जय तिलकु' में केवल हिसार नगर में काव्य रचना समाप्त करने का उल्लेख किया है। अतः वंश एवं माता-पिता का परिचय प्रस्तुत करना कठिन है।

बूचराज का प्रथम नामोल्लेख संवत् १५८२ की एक प्रशस्ति में मिलता है। यह प्रशस्ति 'सम्यकत्व कौमुदी' के लिपि कर्त्ता द्वारा लिखी हुई है। उसमें भट्टारक प्रभाचन्द्र देव के आम्नाय का, चम्पावती (चाकसू, जयपुर) नगर का, वहाँ के शासक महाराजा रामचन्द्र का उल्लेख किया गया है। चम्पावती के श्रावक खण्डेलवाल वशीय साह गोत्र वाले साह काधिल एवं उनके परिवार के सदस्यों ने सम्यक्त्व कौमुदी की प्रति लिखवाकर ब्रह्म बूचराज को प्रदान की थी। इससे ज्ञात होता है कि संवत् १५८२ में कवि चम्पावती में थे। वहां मूल संघ के भट्टारकों का जोर था और ये भी उन्हीं के संघ में रहते थे।[2] चम्पावती उस समय भट्टारक प्रभाचन्द्र

---

१. श्री भुवनकीर्ति चरण प्रणमोहू सखी आज बधावहो। भुवनकीर्ति गीत

२. संवत् १५८२ वर्षे फाल्गुन सुदी १४ शुभदिने श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे नंद्याम्नाये श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री पद्मनन्दि-देवा स्तत्पट्टे भट्टारक श्री शुभचन्द्र देवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री जिनचन्द्रदेवास्तत्पट्टे

क्रमशः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं ब्रह्मचारी शिष्यों का केन्द्र थी। इसी संवत् में राजवार्तिक जैसे ग्रन्थ की प्रति करवाकर ब्रह्म लाल को दी गयी थी।[1] संवत् १५७५ से १५८५ तक जितनी प्रशस्तियाँ हमारे संग्रह में उपलब्ध होती है उन सभी के ग्रन्थ किसी न किसी भट्टारक अथवा उनके शिष्य, ब्रह्मचारी या साधु को भेंट किये गये थे। उस समय बूचराज की भट्टारक प्रभाचन्द्र के प्रिय शिष्यों में गिनती थी। इनकी सम्भवतः वह साधु बनने की प्रारम्भिक अवस्था थी। भट्टारक संघ में संस्कृत एवं प्राकृत के ग्रन्थों का अध्ययन चलता था। इसीलिए भट्टारक प्रभाचन्द्र अपने शिष्यों के पठनार्थ ग्रन्थों की प्रतियाँ भेंट स्वरूप प्राप्त करते रहते थे।

चाटसू (चम्पावती) से इनका विहार किधर हुआ इसका स्पष्ट निर्देश तो नहीं किया जा सकता लेकिन संवत् १५८९ में ये राजस्थान के किसी नगर में थे। वहीं रहते हुए इन्होंने अपनी प्रथम कृति 'मयणजुज्झ' को समाप्त की थी। यह अपभ्रंश प्रभावित कृति है।

संवत् १५९१ में वे हिसार पहुँच गये और वहाँ हिन्दी में इन्होंने 'संतोषजय-तिलकु' की रचना समाप्त की। उस दिन भादवा सुदी पंचमी थी। पर्यूषण पर्व का प्रथम दिन था। बूचराज ने अपनी कृति दशलक्षण पर्व में स्वाध्याय के लिए समाज को समर्पित की। संवतोल्लेख वाली कवि की यह दूसरी व अन्तिम कृति है। इस कृति के पश्चात् कवि की जितनी भी शेष कृतियाँ प्राप्त हुई है उनमें किसी में संवत् दिया हुआ नहीं है।

हस्तिनापुर गमन

कवि ने अपने एक गीत में हस्तिनापुर के मन्दिर एवं शान्तिनाथ स्वामी के मन्दिर का वर्णन किया है तथा वहाँ पर होने वाले कथा पाठ का उल्लेख किया है। इससे मालूम पड़ता है कि कवि हस्तिनापुर दर्शनार्थ गये थे।

भट्टारक श्री प्रभाचन्द्रदेवास्तदाम्नाये चंपावती नामनगरे महाराव श्री रामचन्द्रराज्ये खंडेलवालान्वये साह गोत्रे संघभार धुरंधर सा० काधिल भार्या कावलदे तस्य पुत्र जिनपूजापुरन्दर सा० गूजर भार्या प्रथम लाछी दुतीया सरो..........एतान् इदं शास्त्रं कौमुदी लिखाप्य कर्मक्षय निमित्तं ब्रह्म बूचाय दत्तं।

(प्रशस्ति संग्रह—सम्पादक डा० कासलीवाल पृष्ठ, ६३)

१. देखिये प्रशस्ति संग्रह—सम्पादक डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल, पृ० ५४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृतियाँ

उक्त दोनों कृतियों सहित बूचराज की अब तक निम्न रचनाएँ प्राप्त हो चुकी हैं—

१. मयणजुज्झ
२. सन्तोष जयतिलकु
३. बारहमासा नेमीस्वर का
४ चेतनपुद्गल धमाल
५. नेमिनाथ वसंतु
६ टंडाणा गीत
७. भुवनकीर्ति गीत
८. नेमि गीत
९. विभिन्न रागों में निबद्ध ११ गीत एवं पद

इस प्रकार कवि की अब तक १९ कृतियाँ प्राप्त हो चुकी हैं जो भाषा, शैली एवं भावों की दृष्टि से हिन्दी की अच्छी रचनाएं हैं। कवि के पदों पर पंजाबी भाषा का स्पष्ट प्रभाव है जिससे मालूम पड़ता है कि कवि पंजाबी भाषा भाषी भी थे।

विभिन्न नाम

कविवर बूचराज के और भी नाम मिलते हैं। बूचराज के अतिरिक्त ये नाम हैं बूचा, वल्ह, वील्ह, बल्हव। कहीं-कहीं एक ही कृति में दोनों प्रकार के नामों का प्रयोग हुआ है। इससे लगता है कि बूचराज अपने समय के लोकप्रिय कवि थे और विभिन्न नामों से जन सामान्य को अपनी कविताओं का रसास्वादन कराया करते थे। वैसे उनका बूचा अथवा बूचराज सबसे अधिक लोकप्रिय नाम रहा था।

समय

कवि के समय के बारे में निश्चित तो कुछ भी नहीं कहा जा सकता। लेकिन यदि उनकी आयु ७० वर्ष की भी मान ली जावे तो हम उनका समय संवत् १५३०–१६०० तक का निश्चित कर सकते हैं। आखिर संवत् १५९१ के बाद उन्होंने जितनी कृतियों को छन्दोबद्ध किया था उसमें कुछ वर्ष तो लगे ही होंगे। इसके अतिरिक्त ऐसा लगता है उन्होंने साहित्य लेखन का कार्य जीवन के अन्तिम १५–२० वर्षों में ब्रह्मचारी की दीक्षा लेने और संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश का गहरा अध्ययन करने के पश्चात् ही किया था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कवि ने अपनी किसी भी कृति में तत्कालीन शासक का उल्लेख नहीं किया और न उनके अच्छे बुरे शासन के बारे में लिखा। जान पड़ता है कि उस समय देश में कोई भी शासक कवि को प्रभावित नहीं कर सका था इसलिए कवि ने उनका नामोल्लेख करने की आवश्यकता ही नहीं समझी।

मयणजुज्झ (मदन युद्ध)

मयणजुज्झ कवि की संवतोल्लेख वाली प्रथम रचना है। यह अपभ्रंश भाषा प्रभावित हिन्दी कृति है। हिन्दी अपभ्रंश का किस प्रकार स्थान ले रही थी यह कृति इसका स्पष्ट उदाहरण है। मदनयुद्ध एक रूपक काव्य है जिसमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव एवं कामदेव के मध्य युद्ध होने पर भगवान ऋषभदेव की उस पर विजय बतलाई गयी है।

मदनयुद्ध कवि की प्रथम रचना है यह तो स्पष्ट नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनकी अधिकांश रचनाओं में रचना काल दिया हुआ नहीं हैं। फिर भी ऐसा लगता है कि यह उनकी प्रारम्भिक रचना है जिसमें उन्होंने अपभ्रंश भाषा का प्रयोग किया है और इसके पश्चात् जब केवल हिन्दी की ही रचनाओं की मांग हुई तो कवि ने अन्य रचनाओं में केवल हिन्दी का ही प्रयोग किया। इस काव्य का रचना काल संवत् १५८९ आश्विन शुक्ला प्रतिपदा शनिवार है।[1] कृति में रचना स्थान का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

इस रूपक काव्य में १५९ पद्य हैं। जो विभिन्न छन्दों में निबद्ध है। इन छन्दों में गाथा, रड. मडिल्ल, दोहा, रंगिका, षट्पद कवित्तु आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। भाषा की दृष्टि से हम इसे डिंगल की रचना कह सकते हैं। शब्दों पर जोर देने की दृष्टि से उन्हें युगलात्मक बनाया गया है। जैसे निर्वाण के लिए णिव्वाणि, पैदा होने के लिए उपज्जइ, एक के लिए इक्कु (१७) अधर्म के लिए अधम्म आदि इसके उदाहरण हैं। काव्य की कथा बड़ी रोचक एवं शिक्षाप्रद है। कथा भाग का सारांश निम्न प्रकार है।

कथा

प्रारम्भिक मंगलाचरण के पश्चात् कवि ने कहा हैं कि काया रूपी दुर्ग में चेतन राजा निवास करते हैं। मन उनका मंत्री है। प्रवृत्ति और निवृत्ति ये दो उसकी स्त्रियाँ हैं। दोनों के ही एक-एक पुत्र उत्पन्न होता है जिनके नाम मोह एवं

---

१. राइ विक्कम तणउ संवतु नवासिय पनरहसै सरद रुति आसवज वखाणिउ।
तिथि पडवा सुकलु पखु, सनि सुबारू करू नखित्तु जाणिउ ॥
मयण जुज्झ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विवेक हैं। चेतन राजा से दोनों को ही बराबर स्नेह मिलता है। मोह के घर में माया रानी होती है जो जगत को सहज ही में फुसला लेती है। निवृत्ति विवेक को साथ लेकर नगर छोड़ देती है। वे दोनों आगे चलकर पुण्य नगर पहुँचते हैं जहाँ चेतन राजा राज्य करते थे। वहाँ उन दोनों को बहुत आदर दिया गया। सुमति का विवाह विवेक के साथ हो जाता है। विवेक का वहाँ राज्य हो जाता है।

इससे मोह को बहुत निराशा होती है। उसने पुण्य नगर में अपने चार दूत भेजे। उनमें से तीन तो वापिस चले आये केवल वहाँ कपट बचा जो सरोवर पर पानी भरने वाली महिलाओं के पास जाकर बैठ गया। नगर में ज्ञान जल सरोवर भरा हुआ था। वहाँ जो वृक्ष थे वे मानों व्रत रूप ही थे। उस पर जो पक्षी बैठते थे वे मानों रिद्धि रूप में ही थे। कपट ने साधु का वेष धारण करके नगर में प्रवेश किया। वहाँ उसने न्याय नीति का मार्ग देखा तथा इन्द्र लोक के समान सुख देखे। वहाँ से वह अधर्मपुरी पहुँचा तथा मोह से सब वृतान्त कह सुनाया।

अपने दूत द्वारा सब वृतान्त सुनकर उसे बड़ा विषाद हुआ और उसने शीघ्र ही रोष, झूठ, शोक संताप, संकल्प विकल्प, चिंता, दुराव, क्लेश आदि सभी को अपने दरबार में बुलाया और निम्न वाक्य कहे—

करिवि सभा तब मोह मदु, इव चिंतइ मन मांहि।
जब लग जीवइ विवेक इहु, तब लगु सुख हम नाहि ।।३३।।

मोह की बात सुनकर उसका पुत्र कामदेव उठा और उसने निवृत्ति के पुत्र विवेक को बांध कर लाने का वचन दिया। इससे सभी ओर प्रसन्नता छा गयी। साथ में उसने कुमति, कुसीख एवं कुबुद्धि को साथ लिया।

कामदेव को अपनी विजय पर पूर्ण भरोसा था। सर्वप्रथम उसने बसन्त को भेजा। बसन्त के आगमन से चारों ओर वृक्ष एवं लताएं नवपल्लव एवं पुष्पों से लद गयी। कोयल कुहु कुहु की मधुर तान छेड़ने लगी तथा भ्रमर गुंजार करने लगे। सुरभित मलयानिल, सुन्दर मधुर गीत एवं वीणा आदि वाद्यों के मधुर गीत सुनायी देने लगे। चारों ओर अजीब मादकता दिखाई देने लगी। मदनराज आ गये हैं यह चर्चा होने लगी। कामदेव ने बहुत से ऋषि मुनियों को तप से गिरा दिया। बड़े-बड़े योद्धा जिन्हें अब तक मदोन्मत्त हाथी एवं सिंह भी डरा नहीं सके थे वे सब कामदेव के वशीभूत होकर चारों खाने चित्त पड़ गये। इस प्रकार कामदेव सब पर विजय प्राप्त करता हुआ उस वन में पहुँचा जहाँ भगवान ऋषभदेव ध्यानस्थ थे।

वह धर्मपुरी थी। विवेक ने संयमश्री का विवाह आदिनाथ से कर दिया था। लेकिन जब उसने कामदेव का आगमन सुना तो शत्रु को पीठ दिखा कर भागने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की अपेक्षा लड़ना उचित समझा। मदन सब देशों पर विजय प्राप्त करके स्वच्छन्द विचरने लगा। नट व भाट उसकी जय जयकार कर रहे थे। पिशाच एवं गंधर्व गीत गा रहे थे। कामदेव जब विजय प्राप्त करके लौटा तो उसका अच्छा स्वागत हुआ। रति ने भी कामदेव का खूब स्वागत किया और उसको विजय पर बधाई दी। लेकिन साथ में यह भी प्रश्न किया कि उसने कौन-कौन से देश पर विजय प्राप्त की है। इस पर कामदेव ने निम्न प्रकार उत्तर दिया—

जिणि संकरु इंदु हरि बंभु, वासिग्ग पयालि जिसु।
इंदु चंदु गहगण तारायण विद्याधर यक्ष सु गंधव्व सहि देव गण इण।
जोगी जंगम कापडी सन्यासी रस छंदि
ले ले तपु वण महि दुडिय ते मइं घाले बंदि ॥६२॥

रति ने अपने पति कामदेव की प्रशंसा करते हुए कहा कि धर्मपुरी को अभी और जीतना है जहाँ भगवान का ऋषभदेव का साम्राज्य है। रति की बात सुनकर कामदेव को बहुत क्रोध आया और वह तत्काल धर्मपुरी को विजय करने के लिए चल पड़ा। उसने आदीश्वर को शीघ्र ही वश में करने की घोषणा की। कामदेव ने अपने साथी क्रोध, मोह, मान एवं माया सभी को साथ लिया और धर्मपुरी पर आक्रमण कर दिया। अपने विपुल हावभाव एव विलास रूपी शस्त्रों से उन्हें जीतने का उपक्रम किया।

दोनों ओर युद्ध के लिए खूब तैयारी की गयी तथा एक ओर सभी विकारों ने ऋषभदेव के गुणों पर आक्रमण कर दिया। अज्ञान ने ज्ञान को पछाड़ने का उपक्रम किया। मिथ्यात्व जैसे सुभट ने पूरे वेग से आक्रमण किया। लेकिन सम्यक्त्व रूपी योद्धा ने अपनी पूरी ताकत से मिथ्यात्व का सामना किया। जैसे सूर्य को देखकर अन्धकार छिप जाता है उसी प्रकार मिथ्यात्व भी सम्यकत्व के सामने नहीं टिक सका। राग ने गरज कर अपना अस्त्र चलाया लेकिन वैराग्य ने इसके वार को वेकार कर दिया। मद ने अपने आठ साथियों के साथ ऋषभदेव पर एकसाथ आक्रमण किया लेकिन ऋषभदेव ने उन्हें मार्दव धर्म से सहज ही में जीत लिया। इसके पश्चात् माया ने अपना जाल फेंका और बाईस परिषहों ने एक साथ आक्रमण किया। लेकिन ऋषभदेव ने माया को आर्जव से तथा बाईस परिषहों को अपने 'धीरज' सुभट से सहज ही में जीत लिया। इसके पश्चात् 'कलह' ने पूरे वेग से अपना अधिकार जमाना चाहा लेकिन क्षमा के सामने वह भी भाग गया। जब मोह का कोई वश नहीं चला और वह मुख फेर कर चल दिया तो लोभ ने अपनी पूरी सामर्थ्य से विजय प्राप्त करना चाहा। उसका प्रभाव सारे विश्व में व्याप्त है, कभी वह आगे बढ़ता और कभी पीछे हट जाता। लेकिन जब सन्तोष ने पूरे वेग से प्रत्याक्रमण किया तो वह ठहर नहीं सका। कुशील पर ब्रह्मचर्य ने विजय प्राप्त की।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऋषभदेव ने कुमति को तो पहिले ही छोड़ दिया था इसलिए सुमति ही विवेक के साथ हो गयी। लेकिन मोह ने अपने सभी साथियों की हार सुनी तो उसकी आँखें लाल हो गयी तथा वह दांत पीसने लगा तथा अपने रौद्र रूप से उसने आक्रमण कर दिया। ऋषभदेव ने विवेक रूपी सुभट को बुलाया और स्वयं अपूर्व-करण गुणस्थान में विचरने लगे। मोह की एक भी चाल नहीं चली और अन्त में वह भी मुख मोड़ कर चल दिया।

जब कामदेव ने मोह को भी भागते देखा तो वह अपनी पूरी सेना के साथ मैदान में उतर गया। लेकिन ऋषभदेव संयम रूपी रूप में सवार हो गये थे। तीन गुप्तियाँ उनके रथ के घोड़े थे। पंच महाव्रत एवं क्षमा उनके योद्धा थे। ज्ञान रूपी तलवार को हाथ में लेकर सम्यक्त्व का छत्र तान कर वे मैदान में उतरे। रणभूमि से कामदेव के सहायक एक-एक करके भागना चाहा। लेकिन ऋषभदेव ने युद्ध भूमि का घेरा इतना तीव्र किया कि कोई भी वहाँ से भाग नहीं सका और सबको एक-एक करके जीत लिया गया। चारों कषायों को जीत लिया, मिथ्यात्व का पता भी नहीं चला। ऋषभदेव को कैवल्य होते ही देवो ने दुदुंभि बजानी प्रारम्भ कर दी तथा चारों दिशाओं में ऋषभदेव के गुणगान होने लगे।

इस प्रकार कवि ने प्रस्तुत काव्य में काम विकार एवं उसके साथियों पर जिस प्रकार गुणों की विजय बतलायी है वह अपने आप में अपूर्व है। इस प्रकार के रूपक काव्यों का निर्माण करके जैन कवि अपने पाठकों को तत्कालीन युद्ध के वातावरण से परिचित भी रखते थे तथा उन्हें आध्यात्मिकता से दूर भी नहीं होने देते थे।

भाषा एवं शैली

मयणजुज्झ यद्यपि अपभ्रंश प्रभावित कृति है लेकिन इसमें हिन्दी के शब्दों का एवं उसके दोहा एवं रड, षट्पद, वस्तुबंध एवं कवित्त जैसे छन्दों का प्रयोग इस बात का द्योतक है कि देशवासियों का मानस हिन्दी की ओर हो रहा था तथा वे हिन्दी की कृतियों के पढ़ने के लिए लालायित थे। हिन्दी का प्रारम्भिक विकास जानने के लिए मयण जुज्झ अच्छी कृति है।

कवि ने कुछ तत्कालीन प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया है। उसने सेना के स्थान पर फौज शब्द का[1] तथा तुरही के स्थान पर नफीरी का प्रयोग किया है।

---

१ ले फौज सबलु संकहि करि, इव विवेक भडु आइयउ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इससे पता चलता है कि कवि प्रचलित शब्दों के प्रयोग का मोह नहीं त्याग सका और उसने अपने काव्य को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रचलित शब्दों का प्रयोग करके उनको भी अपनाने का प्रयास किया।

मयणजुज्झ की राजस्थान के शास्त्र भण्डारों में कितनी ही प्रतियाँ संग्रहीत है। इनमें निम्न उल्लेखनीय हैं।

१. भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर	गुटका सं० २३२	पद्य सं० १५८		लिपि संवत् १६१९
२. दि० जैन मन्दिर दीवानजी कामां[1]	,, ९	—		—
३. दि० जैन मन्दिर लश्कर, जयपुर	,, १६	—		—
४. दि० जैन मन्दिर बड़ा तेरहपंथी जयपुर[2]	,, २४२	—		लिपि सं० १७०५
५. दि० जैन मन्दिर वड़ा तेरहपंथी, जयपुर	,, २७६	—		,, १७०७
६. महावीर भवन, जयपुर[3]	,, ४९	,, १५९		—
७. दि० जैन मन्दिर नागदी, बूंदी	१०४	१४२		—

२. संतोष जयतिलकु

बूचराज की यह दूसरी रचना है जिसमें उसने रचना समाप्ति का उल्लेख किया है। संतोष जयतिलकु का रचना काल संवत् १५९१ भाद्रपद शुक्ला ५ है अर्थात् मयण जुज्झ के ठीक २ वर्ष पश्चात् कवि ने प्रस्तुत कृति को समाप्त किया था।[4] दो वर्ष के मध्य में कवि केवल एकमात्र रचना लिख सके अथवा अन्य लघु रचनाओं को भी स्थान दिया इसके सम्बन्ध में निश्चित जानकारी नहीं मिलती है। लेकिन कवि राजस्थान से पजाब चले गये थे यह अवश्य सत्य है। प्रस्तुत कृति को उन्होंने हिसार में छन्दोबद्ध की थी। जैसा कि स्वयं कवि ने उल्लेख किया है

संतोषह जय तिलउ जंपिउ हिसार नयर मंझ में।
जे सुणहि भविय इक्क मनि ते पावहि वंछिय सुक्ख ।।

संतोष जय तिलकु भी एक रूपक काव्य है जिसमें लोभ पर संतोष की विजय बतलायी

---

१. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार की ग्रन्थ सूची पंचम भाग पृष्ठ ९८४, १०८८, ११०९।
२. वही, द्वितीय भाग।
३. वही, प्रथम भाग।
४. संवति पनरइ इक्याणइ भद्दवि सिय पक्खि पंचमी दिवसे।
सुक्कवारि स्वाति वृषे जेउ तह जाणि वंभणामेण ।।१२२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गयी है। मयण जुज्झ में जिस प्रकार ऋषभदेव नायक एवं कामदेव प्रतिनायक है उसी प्रकार प्रस्तुत काव्य में संतोष नायक एवं लोभ प्रतिनायक है। ऐसा लगता है कि कवि आत्मिक विकारों की वास्तविकता को पाठकों के सामने प्रस्तुत करके उन्हें आत्मिक गुणों की ओर लगाना चाहता था तथा आत्मिक गुणों की महत्ता को रूपक काव्यों के माध्यम से प्रकट करना उसको अधिक रुचिकर प्रतीत होता था।

प्रस्तुत रूपक काव्य में १२३ पद्य हैं जो साटिक, रड़, गाथा षट्पद, दोहा, पद्धडी छंद, मडिल्ल, चंदाइण छन्द, गीतिका छन्द, तोटक छन्द, रंगिका छन्द, जैसे छन्दों में विभक्त है। छोटे से काव्य में विभिन्न ११ छन्दों का प्रयोग कवि के छन्द ज्ञान की ओर तो प्रकाश डालता ही है साथ ही में तत्कालीन पाठकों की रुचि का भी हमें बोध कराता है कि पाठक ऐसे काव्यों का संगीत के माध्यम से सुनना अधिक पसन्द करते थे। इसके अतिरिक्त उस समय सगुण भक्ति के गुणानुवाद से भी पाठक गण ऊब चुके थे इसलिए भी वे अध्यात्म की ओर झुक रहे थे।

प्रस्तुत काव्य की संक्षिप्त कथा निम्न प्रकार है।

मंगलाचरण के पश्चात् कवि लिखता है कि भगवान महावीर का समवसरण पावापुरी में आता है। भगवान की जब दिव्य ध्वनि नहीं खिरती तब इन्द्र गौतम ऋषि के पास जाता है और कहता है कि महावीर ने तो मौन धारण कर रखा है इसलिए "त्रैकाल्यं द्रव्य षटकं नव पद सहितं' आदि पद्य का अर्थ कौन समझा सकता है? तब गौतम तत्काल इन्द्र के साथ जाने को तैयार हो जाते हैं। जब वे दोनों महावीर के समवसरण में स्थित मानस्तम्भ के पास पहुँचते हैं तो मानस्तम्भ को देखते ही गौतम का मान द्रवित हो जाता है।

देखंत मानथंभो गलियउ तिसु मानु मनह मज्झमे।
हूवउ सरल पणामो पुछ्छ गोइमु चित्ति संदेहो ।।१०।।

गौतम ने भगवान् महावीर से पूछा कि स्वामी, यह जीव संसार में लोभ के वशीभूत रहता है तो उसके बचने के क्या उपाय हैं? क्योंकि लोभ के कारण ही मानव प्राणिवध करता है, लोभ के कारण ही वह झूंठ बोलता है। लोभ से ही वह दूसरों के द्रव्य ग्रहण करता है। सब परिग्रहों के संग्रह में भी लोभ ही कारण है। जिस प्रकार तेल की बूंद पानी में फैल जाती है उसी प्रकार यह लोभ भी फैलता रहता है। एक इन्द्रिय के वश में आने से यह प्राणी इतने दुःख पाता है तो पांच इन्द्रियों के वशीभूत होने पर उसकी क्या दशा होगी, यह वह स्वयं जान सकता है। लोभी मनुष्य उस कीड़े के समान है जो मधु का संचय ही करता है उसका उपयोग नहीं करता है। क्रोध, मान, माया तथा लोभ इन चारो में लोभ ही प्रमुख है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके साथ ही तीन अन्य कषायों का प्रादुर्भाव होता है। जैसे सर्प के गले में गरल विष संयुक्त होता है उसी प्रकार राग एवं द्वेष दोनों ही लोभ के पुत्र हैं। जहाँ राग सरल स्वभावी एवं द्वेष वक्र स्वभावी होता है। लोभ के इन दोनों पुत्रों ने सभी प्राणियों को अपने वशीभूत कर रखा है फिर चाहे वह योगी हो अथवा यति एवं मुनि हो। भगवान महावीर गौतम ऋषि से कहते हैं कि प्राणी को चारों गति में डुलाने वाला यह लोभ ही है, इसलिए लोभ से बुरा कोई विकार नहीं है।

गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से फिर प्रश्न किया कि लोभ पर किस प्रकार विजय प्राप्त की जा सकती है तथा किस महापुरुष ने लोभ पर विजय पायी है। इस प्रकार भगवान महावीर ने निम्न प्रकार कहा—

सुणहु गोइम कहइ जिणणाहु,
यहु सासणु विम्मलइ, सुणतं धम्मु भव वंध तुट्टहि,
अति सूषिम भेद सुणिए, मनि सदेहं खिण माहि मिट्टहि।
काल अनंतिहि ज्ञान यहि कहियउ आदि अनादि।
लोंभु दुसहु इव जिजत्तियइ संतोषह परसादि।।४८।।

लेकिन गौतम ने भगवान से फिर निवेदन किया कि संतोष कैसे पैदा हो, उसके रहने का स्थान कौन सा है। किसके साथ होने से उसमें शक्ति आती है। उसकी कौन-कौन सी सेना दल है तथा संतोष सुभट कैसा है। जब तक ये सब मालूम नहीं होगा लोभ पर विजय प्राप्त करना सम्भव नहीं है।

महावीर स्वामी ने कहा कि आत्मा में संतोष स्वाभाविक रूप से पैदा होता है तथा वह आत्मपुरी में ही रहता है। धर्म की सेना ही उसका बल है। ज्ञान रूपी बुद्धि से उस पर विजय प्राप्त की जा सकती है। जिस प्राणि ने संतोष को अपने में उतार लिया बस समझलो कि उसने जगत को ही जीत लिया। जिसके जितना अधिक संतोष होगा उसको उतना ही सुख प्राप्त हो सकेगा। संतोषी प्राणी में राग द्वेष की प्रवृत्ति नहीं होती तथा वह शत्रु मित्र में समान भाव रखने वाला होता है। जिनके हृदय में संतोष है उनकी वृद्धि चन्द्रकला के समान होती है तथा उनका हृदय कमल खिल जाता है। संतोष एक चिंतामणि रत्न हैं जिससे चित्त प्रसन्न रहता हैं। वह कामधेनु के समान सबको वांछित फल देता रहता है। जहाँ संतोष है वहाँ सब सुख विद्यमान हैं। संतोष से उत्तम ध्यान होता है, परिणामों में सरलता आती है। वांछित सुखों की प्राप्ति होती है। संतोष से संवर तत्व की प्राप्ति होती है जिसके सहारे संसार को पार किया जा सकता है और अन्त में निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इधर जब लोभ को संतोष की बात मालूम हुई तो वह बहुत क्रोधित हुआ और उसने संतोष को सदा के लिए समाप्त करने की घोषणा कर दी। उसने उस समय झूंठ को अपना प्रधान बनाया। क्रोध एवं द्रोह, कलह एवं क्लेश, पाप एवं संताप सभी को उसने एकत्रित किया। मिथ्यात्व, कुव्यसन, कुशील, कुमति, राग एवं द्वेष सभी वहाँ आ गये और इन सब को अपने साथ देखकर लोभ प्रसन्न हो गया। उसने कपट रूपी नगाड़ों को बजाया तथा विषय रूपी घोड़ों पर बैठकर संतोष पर आक्रमण कर दिया।

संतोष ने जब लोभ रूपी शत्रु का आक्रमण सुना तो उसे प्रसन्नता हुई। उसका सेनापति आत्मा वहीं आ गया और उसने अपनी सेना को भी वहीं बुला लिया। वहाँ १८००० अंगरक्षकों के साथ शील सुभट आया। साथ में ही सम्यक् दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र, वैराग्य, तप, करुणा, पंच महाव्रत, क्षमा एवं संयम आदि सभी योद्धा वहाँ आ गये। वह अपने सैनिकों को लेकर लोभ से जा टकराया। जिन शासन की जय जयकार होने लगी तो मिथ्यात्व भागने लगा। जय जयकार की महाधुनि को सुनकर ही कितने ही शत्रु पक्ष के योद्धा लड़खड़ा गये। शील का चोला पहनकर रत्नत्रय के हाथी पर सवार होकर विवेक की तलवार लेकर सम्यकत्व रूपी छत्र पहनकर पद्म एवं शुक्ल लेश्या के जिस पर चंवर ढुल रहे थे, ऐसा संतोष राजा रण में लोभ से जा भिडा। उसने अपने दल के अन्दर अध्यात्म का संचार किया। जो शूरवीरों के हृदयों में जाकर बैठ गया। एक ओर लोभ छलकपट से अपनी शक्ति को तोलने लगा तथा दूसरी ओर संतोष ने अपने सुभटों में सरलता एवं निर्मलता के भाव भरे। इस पर दोनों ओर से चतुरंगिनी सेना एकत्रित हो गयी। भेरी बजने लगी। तब लोभ ने अपने सैनिकों को संतोष के सैनिकों पर आक्रमण करने के लिए ललकारा। संतोष ने लोभ से कहा कि ऐसा लगता है कि उसके सिर पर काल चढ़ गया है। उसके सब साथियों को मूढ़ता सता रही है। जहाँ लोभ है वहाँ रात दिन यह प्राणी दुःख सहता रहता है। लेकिन जहाँ संतोष है वहाँ उसकी इन्द्र एवं नरेन्द्र सेवा करते हैं। लोभ ने जगत में अभी तक सभी को सताया है तथा जगत में सभी को जीत रखा है, लेकिन आज संतोष का पौरुष भी देखे। यह सुनकर लोभ ने झूंठ को आगे भेजा। लेकिन संतोष ने सत्य को भेजा और उसने उसका सिर काट लिया। इसके पश्चात् मान को बीड़ा दिया गया और वह जब रणभूमि में उतरा तो मार्दव ने उसका सामना किया और उसको बलहीन कर दिया। लेकिन फिर भी वह हटा नहीं तो महाव्रतों ने एक साथ उस पर आक्रमण कर दिया और क्षण भर में ही उसे परास्त कर दिया। अब मोह अपने प्रचण्ड हाथी पर बैठ कर आगे बढ़ा। मोह को देखकर विवेक उठा और उसे रणभूमि में से भागने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर मजबूर कर दिया। माया ने विवध रूप धारण कर लिया और यह समझा कि उससे लड़ने की किसी में शक्ति नहीं है। लेकिन आर्जव ने उसे सहज में ही जीत लिया। क्रोध को क्षमा से तथा मिथ्यात्व को सम्यकत्व से जीत लिया गया। आठ कर्मों के प्रखर प्रहार को तप से जीतने में सफलता प्राप्त की। अन्य जितने भी छोटे-छोटे योद्धा थे उनकी एक भी नहीं चली और उन्हें युद्ध भूमि में ही सुला दिया। लोभ अपने सभी साथियों को युद्ध भूमि में खेत हुआ देखकर माथा धुनने लगा।

लोभ गरज कर अपने हाथी पर सवार हुआ। कपट का उसने छत्र लगाया तथा विषयों की तलवार को हाथ में ली। लेकिन सामने दसवें गुणस्थान में चढ़े हुए तपस्वी विराजमान थे। लोभ पूरे विकट स्वभाव में था। कभी वह बैठता, कभी वह उठता, कभी आकाश में और कभी पृथ्वी पर अपना जाल फैलाने लगता। वह अपने विभिन्न रूप धारण करता। लोभ का रूप ऐसी अग्नि की कणी के समान लगने लगा जो, क्षण भर में ही सारे जंगल को जला डालती है।

लोभ का सामना करने के लिए संतोष आगे बढ़ा। दसवें गुणस्थान से आगे बढ़कर शुक्ल ध्यान में विचरने लगा। अज्ञानान्धकार नष्ट हो गया और केवल ज्ञान प्रकट हुआ। जिन वचनों को चित्त में धारण कर संतोष ने लोभ पर विजय प्राप्त की। तेरह प्रकार के व्रतों को, बारह प्रकार के तप को अपने में समाहित कर लिया।

संतोष की विजय के उपरान्त देवगण दुदुंभि बजाने लगे। ग्यारह अंग और चौदह पूर्व का ज्ञान प्रकट हो जाने से मिथ्यात्वियों का गर्व गल गया और चारों ओर आत्मा की जय जयकार होने लगी।

भाषा

प्रस्तुत कृति की भाषा यद्यपि मयणजुज्झ से अधिक परिस्कृत है लेकिन फिर भी वह अपभ्रंश के प्रभाव से पूर्ण रूप से मुक्त नहीं हो सकीहै। बीच-बीच में गाथाओं का प्रयोग हुआ है। शब्दों को उकारान्त बनाकर प्रयोग करने में कवि को अधिक रुचि दिखलायी देती है।

कवि नाम

कवि ने प्रस्तुत कृति में अपना नाम 'वल्हि' लिखकर रचना समाप्त की है।[1]

---

१. यहु संतोषहु जय तिलउ जंपइ वल्हि सभाइ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. बारहमासा नेमीस्वरका

नेमि राजुल को लेकर प्रायः प्रत्येक जैन कवि किसी न किसी कृति की रचना करता रहा है। हमारे कवि बूचराज ने भी नेमीस्वर का बारहमासा लिखकर इस परम्परा को जीवित रखा। यह बारह मासा श्रावण मास से प्रारम्भ होकर ग्राषाढ़ मास तक चलता है। इसमें रागु बड़हंसु के १२ पद्य हैं जिनमें एक-एक महिने का वर्णन किया गया है। राजुल की विरह वेदना तथा नेमिनाथ के तपस्वी जीवन के प्रति जो उसकी अप्रसन्नता थी वह सब इन पद्यों में व्यक्त की गयी है।

इसमें न तो रचना काल दिया हुआ है और न रचना स्थान। इससे कृति का निश्चित समय नहीं दिया जा सकता है। फिर भी भाषा एवं शैली की दृष्टि से रचना संवत् १५९१ के पश्चात् किसी समय लिखी गयी थी। इसमें कवि ने अपना नाम 'बूचा' कह कर उल्लेख किया है।[1]

बारह मासा सावण माम से प्रारम्भ होता है। सावण में राजुल नेमिनाथ से अन्यत्र गमन न करने का आग्रह करती है तथा कहती है कि उनके अभाव में उसका शरीर क्षण क्षण छीज रहा है। जब आकाश में विजली चमकती है तो उसका विरह असह्य हो जाता है। जब मोर कुह कुह की आवाज करते हैं उस समय नेमि की याद आती है। इसलिए वह सावण मास में अन्यत्र गमन न करने की प्रार्थना करती है।[2]

कार्तिक का महिना जब आता है तो राजुल हाथों में दीपक लेकर अपने महल पर चढ़कर नेमिनाथ का मार्ग खोजती है। उसकी आँखें आसुओं से भर जाती हैं। वे दशों दिशाओं की ओर दौड़ती हैं। सरोवर पर सारस पक्षी के जोड़े को देखकर वह कहती है कि नवयौवना एवं तरुणी बाला ऐसे समय में अपने पति के विरह में कैसे जीवित रह सकती है। इसलिए वह नेमिनाथ से कार्तिक के महिने में वापिस आने की प्रार्थना करती है।

---

१. आषाढ़ चडिया भणइ बूचा नेमि अजउ न आईया।

२. ए रुति सावणे सावणि नेमि जिण गवणो न कीजै वे।
सुणि सारंगा भाष दुसह तनु खिणु खिणु छीजै वे।
छीजंति बाढ़ी विरह व्यापित घुरइ घण मइ मंतिया।
सालूर सरि रड रडहि निसि भरि रयणि बिजु खिवंतिया।
सुरगोपि यह सुह वसुह मांडंत मोर कुह कुहि वणि वणि।
विनवंति राजुल सुणहु नेमिजिन गवउ नां करु सावणे ।।१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी प्रकार जब वैशाख का महिना आता है तो नयनों को केवल नेमि की बाट जोहने का काम ही रहता है जब नेमि नहीं आते हैं तो वे वर्षा ऋतु के समान वे बरसने लगते हैं ।[1]

उनके वियोग में उसका वज्र का हृदय नहीं फटता है इसलिए ए सखि उनके बिना वैसाख महिना अत्यधिक दारुण दुख को देने वाला बन जाता है ।[2]

नेमि राजुल को लेकर कितने ही जैन कवियों ने बाराह मासा निबद्ध किये हैं । विरह का एवं षट् ऋतुओं का वर्णन करने के लिए नेमि राजुल का जीवन जैन साहित्य में सबसे अधिक आकर्षण की सामग्री है ।

कविवर बूचराज के प्रस्तुत बारहमासा का हिन्दी बारहमासा साहित्य में उल्लेखनीय स्थान है । कवि ने इसमें राजुल के मनोगत भावों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वे पाठको को प्रभावित किये बिना नहीं रहते । कवि के प्रत्येक शब्द में विरह व्यथा छिपी हुई है और वह परिणय की आशा लगाये विरही नव यौवना के विरह का सजीव चित्र उपस्थित करता है । राजुल को प्रत्येक महिने में विरह वेदना सताती है तथा उस वेदना को वह नेमि के बिना सहन करने में अपने आपको असमर्थ पाती है । कवि को राजुल की विरह वेदना को सशक्त शब्दों में प्रस्तुत करने में पूर्ण सफलता मिली है ।

४. चेतन पुद्‌गल धमाल

कविवर बूचराज की यह महत्त्वपूर्ण कृति है । पूरी कृति में १३६ पद्य हैं ।

---

१. इनु कातेगे कातिगि आगमु की ताडा पालैवा ।
चडि मंडपे मंडपि राजुल मग्गो नेहो लैवे ।
मग्गो निहालै देवि राजुल नयण दह दिसि धावए ।
सर रसहि सारस रयणिभिनी दुसहु विरहु जगवए ।
कि वरहउ तुव विणु पेम लुद्धिय तरुणि जोवणि बालाए ।
बाहुडहु नेमि जिण चडिउ कातिगु कियउ आगमु पालए ।।४।।

२. ए यहु आइयडा अब दुसहु सखी बइसाखो वे ।
जइवइसेवा इसि जाइ सनेहडा आखोवं ।
आखो सनेहा जाइ बाइस अन्नु नीरू न भावए ।
दुइ नयण पावस करहि निसि दिनु चितु भरि भरि आवए ।
फुट्टउ न जं वल्लम वियोनिहि हिया दुखि वज्जिहि घड्या ।
बइसाखु तुव विणु सुणहु सखिए दुसहु अति दारणु चड्या ।।१०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनमें १३१ पद्य राग दीपगु तथा शेष ५ अष्टपद छप्पय छन्द में निबद्ध है। कवि ने धमाल का रचना काल एवं रचना स्थान दोनों ही नहीं दिये हैं। लेकिन भाषा की दृष्टि से यह रचना उसकी अन्तिम रचनाओं में से दिखती है। कवि ने इस कृति में अपने आप का वल्हपति[1], वल्ह[2], बूचा[3] इन तीन नामों से उल्लेख किया है।

चेतन पुद्गल धमाल एक संवादात्मक कृति है। जिसमें संवाद के माध्यम से चेतन एवं पुद्गल दोनों अपना-अपना पक्ष रखते हैं, एक दूसरे पर दोषारोपण करते करते हैं। संसार में फिराने एवं निर्वाण मार्ग में रुकावट पैदा करने में कौन कितना सहायक है, इसका बहुत ही सुन्दर वर्णन हुआ है। इस प्रकार के वर्णन प्रथम बार देखने में आये हैं और वे वर्णन भी एकदम विस्तृत। चेतन पुद्गल के संवाद इतने रोचक एवं आकर्षक हैं कि कोई भी पाठक उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगा। पं० परमानन्दजी शास्त्री ने अपने एक लेख में इस कृति का नाम अध्यात्म धमाल भी दिया है।[4] लेकिन स्वयं कवि ने इसे संवादात्मक कृति के रूप में प्रस्तुत करने को कहा है।[5]

कवि ने प्रारम्भ में सम्यग्ज्ञान रूपी दीपक की प्रशंसा की है। जिसके द्वारा मिथ्यात्व का पलायन हो जाता है। इसके पश्चात् चौबीस तीर्थंकरों का २५ पद्यों में स्तवन किया गया है। फिर चेतन को इस प्रकार सम्बोधित करके रचना प्रारम्भ की गयी है।

> यह जड़ खिणिहिं विधंसिणी, ता सिउ संगु निवारू।
> चेतन सेती पिरती करु, जिउ पावहि भव पारो।
>
> चेतन गुण ॥३३॥

चेतन और जड़ के विवाद को प्रारम्भ करते हुए कहा गया है कि जिसने जड़ को अपना मान लिया तथा उससे प्रीति कर ली वह संसार सागर में निश्चय ही डूबता है। क्योंकि विषधर के मुख में दूध पड़ने पर उसका विष रूप ही परिणमन होता है। उससे अच्छे फल की आशा करना व्यर्थ है। लेकिन इस मनतव्य का जड़ ने

---

१. कवि वल्हपति सुस्वामि के णवउ चललं सिरु धारि ॥१॥
२. जिण सासण महि दीवडा वल्ह पया नवकारु ॥३॥
३, इव भणइ बूंचा सदा निम्मलु मुकति सरूपी जीया ॥१३६॥
४. अनेकान्त वर्ष १६-१७ पृष्ठ २२६।
५. पंच प्रमिष्टि बल्ह कवि ए पणमी धरिभाउ।
   चेतन पुद्गल दहूक सादु विवादु सुणावो ॥ चेयण सुणु ॥३२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहुत सुन्दर खण्डन किया हैं जो निम्न प्रकार है—

चेतनु चेति न चालई, कहउत मानै रोसु।
आये बोलत सो फिरै, जड़हि लगावहि दोसु ।। चेयन सुणु ।।३८।।

चेतन षट्रस एवं अन्य विविध पकवानों से शरीर को प्रतिदिन सींचता रहता है तो फिर इन्द्रियों के वशीभूत चेतन से धर्म पर चलने की आशा कैसे की जा सकती है। खेत में जब समय पर बीज ही नहीं डाला जावेगा तो उसके उगने की आशा भी कैसे की जा सकती है। वास्तव में देखा जावे तो यह चेतन जब २४ प्रकार के परिग्रह तज कर १५ प्रकार के योग धारण करता है लेकिन वह सब तो जड़ के सहारे से ही है। फिर उसकी निन्दा क्यों की जावे। पुद्गल का विश्वास कर जो प्राणी मन में निःशंक हो जाता है वह तो निश्चित ही कलंकित होने के समान है। यह मूर्ख मानव आपने आपको जाग्रत नहीं करता है और विषयों में लुभाए रखता है। वह तो अंधे पुरुष द्वारा बटने वाली उस जेवड़ी के समान है जिसको पीछे से बछड़े खाते रहते हैं।

मूरख मूलनु चेतई, लाहै रह्या लुभाइ ।
अंधा बाटै जेवड़ी, पाछइ वाछा खाइ ।।४५।।

जड़ फिर चेतन को कहता है कि जिसने पाँचों इन्द्रियों को वश में करके आत्मा के दर्शन किये हैं उसी ने निर्वाण पद प्राप्त किया है तथा उसका फिर चतुर्गति में जन्म नहीं होता,

पंचै इंदी दंडि करि, आपी आप्पणु जोइ।
जिउ पावहि निरवाण पदु, चौगइ जनमु न होइ
चेयन सुणु ।।४८।।

जैसे काष्ठ में अग्नि, तिलों में तेल रहता है उसी प्रकार अनादि काल से चेतन और पुद्गल की एकात्मकता रहती है। पुद्गल के उक्त कथन का चेतन निम्न प्रकार उत्तर देता है,

लेहि वैसंदरु कठु तजि लेहि तेलु खलि राडि।
चेतहि चेतनु मेलियै, पुद्गल परिहरि बालि ।।
चेतन गुण ।।५५।।

मन का हठ सभी कोई पूरा करते हैं लेकिन चित्त को कोई भी वश में नहीं करता है क्योंकि सिखर के चढ़ने के पश्चात् घबराहट होने पर उसको दूर कैसे की जा सकती है—

मन का हठु सवु कोइ करइ, चित्तु वसि करइ न कोइ।
चडि सिखरहु जब खडहडै, तवरु विगुचणि होइ ।। चेयन सुणु ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसका उत्तर चेतन ने निम्न प्रकार दिया,

सिखरहु भूलिन खडहडै जिए सासण आधारु।
सूलि ऊपरि सीझियां चोरि जप्या नवकारु ॥ चेयन गुए ॥५६॥

जड़ और पुद्गल ने बहुत सुन्दर एवं तर्कपूर्ण विवाद होता है लेकिन दोनों ही एक दूसरे के गुणों की महत्ता से अपरचित लगते हैं। इसलिए एक दूसरे के अवगुणों को बखारने में लगे रहते हैं।

पुद्गल कहता है—कि पहले अपने आपको देखकर संयम लेना चाहिए। जितना ओढ़णा हो उतना ही पांव पसारना चाहिए। इसका पुद्गल उत्तर देता हुआ कहता है कि भला-भला सभी कहते हैं लेकिन उसके मर्म को कोई नहीं जानता। शरीर खोने पर किससे भला हो सकता है—

भला करितहि मीत सुणि, जे हुइ वुरहा जाणि।
तौ भी भला न छोड़िये उत्तिम यहु परवाणु ॥ चेयन सुणु ॥७०॥
भला भला सहु को कहैं, मरमु न जाणै कोइ।
काया खोई मीत रे भला न किस ही होए ॥ चेयन गुण ॥७१॥

यह शरीर हाड मांस का पिंजरा है। जिस पर चमड़ी छायी हुई है। यह अन्दर नरकों से भरा हुआ है लेकिन यह मूर्ख मानव उस पर लुभाता रहता है। इसका पुद्गल बहुत सुन्दर उत्तर देता है कि जैसे वृक्ष स्वयं धूप सहन कर औरों को छाया देता है उसी तरह इस शरीर के संग से यह जीव मोक्ष प्राप्त करता हैं।

हाडह केरा पंजरी घरिया चम्मिहि छाइ।
वहु नरकिहि सो पूरिया, मुरिखु रहिउ लुभाए ॥ चेयन सुणु ॥७२॥
जिम तरु आपणु धूप सहि, अवरह छाह कराइ।
तिउ इसु काया संगते, जीयडा मोखिहि जाए ॥ चेयन गुण ॥

जिस तरह चन्द्रमा रात्रि का मण्डल और सूर्य दिन का उसी तरह इस चेतन का मण्डल शरीर है।

जिउ ससि मंडणु रयणिका, दिन का मंडणु भाणु।
तिम चेतन का मंडणा यहु पुद्गलु तूं जाणु ॥ चेयन सुणु ॥७८॥

काया की निन्दा करना तथा प्रत्येक क्षेत्र में उसे दोषी ठहराना पुद्गल को अच्छा नहीं लगा इसलिए वह कहता है कि चेतन शरीर की तो निन्दा करता है किन्तु अपनी ओर तनिक भी झांक कर नहीं देखता। किसी ने ठीक ही कहा है कि जैसे-जैसे कांवली भीगती हैं वैसे-वैसे ही वह भारी होती जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काया की निन्दा करहि, आपुन देखहि जोइ।
जिउं जिउं भीजइ कावली, तिउ तिउ भारी होइ।। चेयन सुणु ।।१०।।

चेतन कहता है कि उस जड़ को कौन पानी देगा जिसके न तो फूल है न फल और न पत्ते हैं। उस स्वर्ण का क्या करना है जिसके पहिनने से कान ही कट जावें।

सा जड मूढ न सीचियै, जिसु फलु फूलु न पातु।
सो सोना क्या फूकिये, जोरु कटावै कान ।। चेयन गुण ।।१०६।।

पुद्गल इसका बहुत सुन्दर उत्तर देता है कि यौवन, लक्ष्मी, शरीर सुख एवं कुलवंती स्त्री ये चारों पुण्य जिसे प्राप्त हैं वे तो देवताओं के इन्द्र ही हैं।

संवादात्मक रूप में कवि कहता है कि जिन्होंने उद्यम, साहस, धीरता, बल, बुद्धि और पराक्रम इन छः बातों की ओर मन को सुदृढ़ कर लिया उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया है।

उद्दिमु साहसु धीरु बलु, बुद्धि पराकमु जाणि।
ए छह जिनि मनि दिढु किया, ते पहुचा निरवाणि ।।
चेयन सुणु ।।१३०।।

प्रस्तुत कृति में १३२ से १३६ तक के ५ पद्य अष्ट पद्य छप्पय छन्द के हैं। इनमें दो पद्यों में जड का प्रस्ताव है तथा तीन में चेतन का उत्तर है। अन्तिम पद्य चेतन द्वारा कहलवाया गया है जिसमें जड़ से प्रतीति नहीं कहने का उपदेश दिया गया है—

जिय मुकति सरूपी तूं निकलमलु राया।
इसु जड़ कै संग ते भमिया करमि भमाया।
चडि कबल जिवा गुणि तजि कद्दम संसारो।
भजि जिण गुण हीयडै तेरा यहु विवहारो।
विवहारु यहु तुझु जाणि जीयडे करहु इंदिय संवरो।
निरजरहु बंधण करम्म केरे जानत निढुकाजरो।
जे वचन श्री जिण वीरि भासे ताह नित धारहु हीया।
इव भणइ बूचा सदा निम्मलु मुकति सरूपी जीया ।।१३६ ।।

इस प्रकार चेतन पुद्गल धमाल हिन्दी जगत का प्रथम संवादात्मक रोचक काव्य है जिसमें चेतन एवं जड़ में परस्पर गहरा किन्तु मैत्री पूर्ण वाद विवाद होता है। इसमें चेतन वादी है और पुद्गल प्रतिवादी है। 'चेयन सुणु' यह पुद्गल कहता है तथा 'चेयन गुण' यह चेतन द्वारा कहा जाता है। पूरा काव्य सुभाषितों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं सूक्तियों से भरा पड़ा है। कवि ने जिन सीधे सादे शब्दों में प्रस्तुत किया है वह उसके गहन तत्व ज्ञान एवं व्यावहारिक ज्ञान का परिचायक है। कवि ने लोक प्रचलित मुहावरों का भी प्रयोग करके संवाद को सजीव बनाने का प्रयास किया है।

भाषा, शैली एवं विषय वर्णन आदि सभी दृष्टियों से यह एक उत्तम काव्य है।

५. नेमिनाथ बसन्तु

यह एक लघु रचना है जिसमें बसन्त ऋतु के आगमन का आध्यात्मिक शैली में रोचक वर्णन किया गया है। एक ओर नेमिनाथ तपस्या में लीन है दूसरी ओर मादकता उत्पन्न करने वाली बसन्त ऋतु भी आ जाती है। राजुल ने पहिले ही संयम धारण कर लिया है इसलिये उसका मन रूपी मधुवन संयम रूपी पुष्प से भरा हुआ है। बसन्त ऋतु के कारण बोलसिरी महक रही है। समूचे सौराष्ट्र में कोयल कुहक रही है। भ्रमरों की गुंजार हो रही है। गिरनार पर्वत पर गन्धर्व जाति के देव गीत गा रहे हैं। काम विजय के नगारे क्या बज रहे हैं मानों नेमिनाथ के यश के ढोल बज रहे हैं। और उनकी कीर्ति स्वयं ही नाच रही हो। संयम श्री वहाँ निर्भय होकर घूमती है क्योंकि संयम शिरोमणि नेमिनाथ के शील की १८ हजार सहेलियाँ रक्षा में तत्पर है। उनके शरीर में ज्ञान रूपी पुष्प महक रहे हैं तथा वे चारित्र चन्दन से मंडित है। मोक्ष लक्ष्मी उनसे फाग खेलती है। नेमिनाथ तो नवरत्नों से युक्त लगते हैं लेकिन बसन्त स्वयं नवरसों से रहित मालूम पड़ता है। नेमि ने छलिया बनकर मानों तीनों लोकों को ही अपने अपने वश में कर लिया है।

संयम श्री राजुल ऐसी सुहावनी ऋतु में अपने नेमि को देखती है जो जब संसार जगता है तब वे सोते हैं और जब वे सोते हैं तो संसार जगता है। जिसने मोह के किवाड़ों को अपने अनिमिष नेत्रों से जला डाला है। स्वयं राजुल अपनी सखियों के साथ विभिन्न पुष्पों से नेमिनाथ की वन्दना के लिए सबको कहती रहती है।

रचना काल

कवि ने इस कृति में किसी भी रचना काल का उल्लेख नहीं किया है। किन्तु मूल संघ के मंडण भट्टारक पद्मनन्दि के प्रसाद से इस कृति का निर्माण हुआ, ऐसा कवि ने उल्लेख किया है।

मूलसंघ मुखमंडण पद्मनन्दि सुपसाइ ।
वील्ह बसंतु जि गावइ से सुखि रसीय कराइ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६. टंडाणा गीत

कविवर बूचराज ने एक ओर रूपक काव्य लिखे हैं, संवादात्मक काव्य लिखे हैं, तो दूसरी ओर छोटे-छोटे गीत भी निबद्ध किये हैं। उन्होंने सदैव जनरुचि का ध्यान रखा और अपने पाठकों को अधिक से अधिक आध्यात्मिक खुराक देने का प्रयास किया है। टंडाणा गीत उसी धारा का एक गीत है जिसमें कवि ने संसार के स्वरूप का चित्रण किया है। गीत का टंडाणा शब्द टांडे का वाचक है। बनजारे बैलों के समूह पर वस्तुओं को लाद कर ले जाते हैं उसे टांडा कहा जाता है। साथ ही में संसार के दुःखों से कैसे मुक्ति मिले यह भी बताने का प्रयास किया है।

कवि ने गीत प्रारम्भ करते हुए लिखा है कि यह संसार ही टंडाणा है जो दुःखों का भण्डार है लेकिन पता नहीं यह जीव उसके किस गुण पर लुब्ध हो रहा है। यह जगत् उसे अनादि काल से ठग रहा है। फिर भी वह उस पर विश्वास करता है। इसलिए वह कुमार्ग में पड़कर मिथ्यात्व का सेवन करता रहता है और जिनराज की आज्ञा के अनुसार नहीं चलता है। दूसरे जीवों को सता कर पाप कमाता है और उसका फल तो नरक गति का बन्ध ही तो है।

गीत में कवि ने इस मानव को यह भी चेतावनी दी है कि उसने न व्रतों का पालन किया है और न कोई संयम धारण किया है। यही नहीं वह न काम पर भी विजय प्राप्त करने में सफल हो सका है। मानव का कुटुम्ब तो उस वृक्ष के समान है जिस पर रात्रि को पक्षी आकर बैठ जाते हैं और प्रातःकाल होते ही उड़ कर चले जाते हैं। यह मानव नर के समान अपने कितने ही नाम रख लेता है।

कवि आगे कहता है कि यह मानव क्रोध, मान, माया और लोभ के वशीभूत होकर जगत में यों ही भ्रमण करता रहता है। जब वृद्धावस्था आती है तो सब साथी यहाँ तक कि जवानी भी साथ छोड़ कर चली जाती है। कवि ने अन्त में यही कामना की है कि तू जब अन्तरदृष्टि होकर आत्मध्यान करेगा तब सहज सुख की प्राप्ति होगी।

सुद्ध सरूप सहज लिंव नितिदिन झावहु अन्तर झाणावें।
जंपति बूचा जिम तुम पावहु वंछित सुख निरवाणावै।

इस गीत में कवि ने अपने नामोल्लेख के अतिरिक्त रचना काल एवं रचना स्थान नहीं दिया है।

७. भुवन कोर्ति गीत

बूचराज की भुवनकीर्ति गीत एक ऐतिहासिक कृति है। इसमें भट्टारक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भुवनकीर्ति की यशोगाथा गायी गयी है। भुवनकीर्ति सकलकीर्ति के शिष्य थे जिनका भट्टारक काल संवत् १४९९ से संवत् १५३० तक का माना जाता है। भुवनकीर्ति अपने समय के बड़े भारी यशस्वी भट्टारक थे। भ० सकल कीर्ति के पश्चात् इन्होंने देश में भट्टारक परम्परा की गहरी व मजबूत नींव जमा दी थी। बूचराज जैसे आध्यात्मिक कवि ने भुवनकीर्ति की जिन शब्दों में प्रशंसा की है उससे मालूम होता है कि उनकी कीर्ति चारों ओर फैल चुकी थी। कवि ने भुवनकीर्ति के दर्शन मात्र से ही सांसारिक दुःखों से मुक्ति एवं नव निधि को प्राप्त करने का निमित्त माना है। उनके चरणों में चन्दन व केशर लगाने के लिए कहा है। भुवनकीर्ति की विशेषताओं को लिखते हुए कवि ने उन्हें तेरह प्रकार के चारित्र से विभूषित सूर्य के समान तपस्वी तथा सर्वज्ञ भगवान द्वारा प्रतिपादित धर्म का बखान करने वालों में होना लिखा हैं। वे षट् द्रव्य पंचास्ति काय तत्वों पर प्रकाश डालते हैं तथा २२ परिषहों को सहन करते हैं। भ० भुवनकीर्ति २८ मूलगुणों का पालन करते हैं। उन्होंने जीवन में दश धर्मों को धारण कर रखा है। जिनके लिए शत्रु मित्र समान है। तथा मिथ्यात्व का खण्डन करते जैन धर्म का प्रतिपादन करते हैं। भुवनकीर्ति के नगर प्रवेश पर अनेक उत्सव आयोजित होते थे, कामनियाँ गीत गाती तथा मन्दिर में पूजा पाठ करती थी।

बूचराज ने भट्टारक के स्थान पर भुवन कीर्ति को आचार्य लिखा है इससे पता चलता है कि वे भट्टारक होते हुए भी नग्न रहते थे और आचार्यों के समान चारित्र पालन करते थे। लेकिन बूचराज की इनकी भेंट कब हुई हुई इसका उन्होंने कोई उल्लेख नहीं किया। इसके अतिरिक्त इसी गीत में उन्होंने भट्टारक रत्नकीर्ति के नाम का उल्लेख किया है और अपने आपको रत्नकीर्ति के पट्ट से सम्बन्धित माना है। रत्नकीर्ति भ० प्रभाचन्द्र के शिष्य थे जिनका भट्टारक काल संवत् १५७१ से १५८१ तक का रहा है।

८. नेमि गीत

बूचराज ने अपने लघु नाम वल्हण से एक नेमीश्वर गीत की रचना की थी। यह भी अपभ्रंश प्रभावित रचना है जिसमें १५ पद्य हैं। संवत् १६५० में लिपिबद्ध पाण्डुलिपि दि० जैन अ० क्षेत्र श्री महावीर जी के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत थी।

लघु गीतों का निर्माण

कविवर बूचराज ने एक ओर मयणजुज्झ एवं चेतन पुद्गल धमाल जैसी रचनाओं द्वारा अपने पाठकों को आध्यात्मिक सन्देश दिया तो वहाँ नेमीश्वर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बारहमासा, नेमिनाथ बसंत जैसी रचनाओं द्वारा विरह रस का वर्णन किया और अपने पाठकों को वैराग्य रस की ओर प्रेरित किया। किन्तु इसके अतिरिक्त छोटे-गीतों द्वारा मानव के हृदय में जिनेन्द्र भक्ति के भाव भरे, जगत की निसारता बतलायी और अपने कर्तव्यों की ओर संकेत किया। लेकिन ये अधिकांश गीत पंजाबी शैली से प्रभावित हैं। जिससे स्पष्ट है कि कवि ने ये सब गीत हिसार की ओर विहार करने के पश्चात् लिखे थे। ऐसा अनुमान किया जा सकता है। सभी गीत यद्यपि भिन्न-भिन्न रागों में लिखे हुए हैं लेकिन मूलतः सबका उपदेशात्मक विषय है। मानव को जगत की बुराइयों से दूर हटा कर सन्मार्ग की ओर ले जाना तथा संसार का स्वरूप उपस्थित करना ही इन गीतों का मुख्य उद्देश्य है। कभी-कभी स्वयं को भी अपने मन की चपलता के बारे में ज्ञान प्राप्त हो जाता है और इसके लिए वह चिन्ता करने लगता है। संयम रूपी रथ में नहीं चढ़ने की उसको सबसे अधिक निराशा होती है। लेकिन उसका क्या किया जावे। अब तो संयम पालन एवं सम्यकत्व साधना उसके लिए एकमात्र मार्ग बचता है और उसी पर जाने से वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

अब तक कवि के ११ गीत एवं पद मिल चुके हैं। इन गीतों के अतिरिक्त और भी गीत मिल सकते हैं इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। सभी गीत गुटकों में उपलब्ध हुए हैं। इसलिए गुटकों के पाठों की विशेष छानबीन की विशेष आवश्यककता है। यहाँ सभी गीतों का सारांश दिया जा रहा है।

९. गीत (ए सखी मेरा मनु चपलु दसै दिसे ध्यावै वेहा)

प्रस्तुत गीत में उस महिला की आत्म कथा है जिसे अपने चंचल मन से बड़ी भारी शिकायत है। वह चंचल मन लोभ रस में डूबा हुआ है और उसे शुभ ध्यान का तनिक भी ख्याल नहीं है। यह पांचों इन्द्रियों के संग फंसा रहता है। इस जीव ने नरकों के भारी दुःख सहे हैं। मिथ्यात्व के चक्कर में फंस कर उसने अपना सम्पूर्ण जन्म ही गंवा दिया है। उसका मन भवसागर रूपी भूल भुलैया में पड़कर सब कुछ भुला बैठा है, यही नहीं उसे दुःख होने लगता है कि वह अपनी आत्मा को छोड़कर दूसरी आत्मा के वश में हो गया। इसलिए अब उसने वीतराग प्रभु की शरण ली है जो जन्म मरण के चक्कर से मुक्त है तथा रत्नत्रय से युक्त है।

गीत में ४ पद हैं और प्रत्येक पद ६–६ पंक्तियों का है गीत की भाषा राजस्थानी है। जिस पर पंजाबी बोली का प्रभाव है। गीत राग वडहंस में निबद्ध है। इसकी प्रति दि० जैन मन्दिर नेमिनाथ (नागदी) बूंदी के शास्त्र भण्डार के एक गुटके में उपलब्ध है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१० गीत (सुणिय पधानु मेरे जीय वे की सुभ ध्यानि आवहि)

यह गीत राग धनाक्षरी में लिखा हुआ है। गीत में ४ पद हैं तथा प्रत्येक पद में ६ पंक्तियाँ हैं।

प्रस्तुत गीत में इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया गया है कि यह मनुष्य सच्चे धर्म का पालन नहीं करता है इसलिए उसे व्यर्थ में ही गतियों में फिरना पड़ता है। मोहिनी कर्म के उदय से वह सत्तर कोडाकोडी सागर तक भ्रमता रहता है फिर भी बन्धन से नहीं छूटता। संपत्ति, स्वजन, सुत एवं मनुष्य देह सब कर्म संयोग से मिल जाते हैं। मनुष्य जीवन रूपी रत्न मिलने पर भी वह उसे यों ही खो देता है तथा मधु बिन्दु प्राप्ति की आशा में ही पड़ा रहता है। निर्ग्रन्थ अर्हन्त देव ने जो कहा है वही सच है। उसी से जन्म मरण के बन्धन से छूट सकता है।

११. गीत (पट मेरी का चोलणा लालो, लौग मोती का हारु वे लालो)

राग धनाश्री में लिखा हुआ यह दूसरा गीत है जिसमें ४ पद हैं तथा पहिले वाले गीत के समान ही प्रत्येक पद में ६ पंक्तियाँ हैं।

प्रस्तुत गीत में हस्तिनापुर क्षेत्र के शान्तिनाथ स्वामी के पूजा के महात्म्य का वर्णन किया गया है। अभिषेक व पूजा की पूरी विधि दी हुई है। शान्तिनाथ की पूजा पीत वस्त्र पहनकर तथा अपने आप का शृंगार करके करना चाहिए। कवि ने उन सभी पुष्पों के नाम गिनाये हैं जिन्हें भगवान के चरणों में समर्पित करना चाहिए। ऐसे पुष्पों में रायचंपा, केवड़ा, मरुवा, जुही, कुंद, मचकुंद आदि के नाम गिनाये हैं। कवि ने लिखा है कि जब मालिन इन पुष्पों की माला गूंथ कर लाती है तो मन से बड़ी प्रसन्नता होती है। उस माला को भगवान के चरणों में समर्पित कर फिर पांच कलशों से भगवान शान्तिनाथ का अभिषेक किया जाना चाहिए। अन्त में कवि ने भगवान शान्तिनाथ की स्तुति भी की है—

मुकति दाता नयणि दीठा, रोगु सोगु निकंदणो।
अवतारु अचला देवि कुक्षिहि, राइ विससेण नंदणो।
जगदीस तू सुणु भणइ बूचा जनम दुखु दालिद हरो।
सिरि संति जिणवर देउ तूठा थानु गढ़ि हथिनापुरी।

१२, गीत—रंग हो रंग हो रंगु करि जिणवरु ध्याइयै।

प्रस्तुत गीत राग गौडी में निबद्ध है जिसके ४ अन्तरे हैं। कवि ने इस गीत में मानव से जिनदेव के रंग में रंगे जाने का उपदेश दिया है। क्योंकि उन्होंने आठ कर्मों पर तथा पंचेन्द्रियों के विषयों पर विजय प्राप्त कर ली है इसलिए झूंठ एवं लालच

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में नहीं फंसकर जिनेन्द्र देव का ध्यान करना चाहिए। इसमें कवि ने अपना नाम बूचराज के स्थान पर 'वल्ह' दिया है।

१३. गीत—(न जाणौ तिसु वेल कौ वे चेतनु रह्या लभाई वे लाल)

इस गीत की राग दीपु है। यह प्राणी किस कारण संसार में फंसा हुआ है। इसका स्वयं चेतन को भी आश्चर्य होता है। इस जीव को कितनी ही बार शिक्षा दी जाय पर यह कभी मानता ही नहीं। अब तक वह न जाने कितनी बार शिक्षाएँ ले चुका है लेकिन उन्हें वह तत्काल भूल जाता है। यौवनावस्था में स्त्री सुखों में फंस जाता है तथा साथ ही मरना साथ ही जीना इस चाह में फंसा रहता है। अन्त में कवि कहता है कि इस मानव को इस माया जाल के सागर में से कैसे निकाला जावे यह सोचना चाहिए।

१४. गीत—(वाले वलि वेहु मावे मनु माया धुलि रात्तावे।)
वाले वलि वेहु मावे रहइ आठ मादि मात्तावे॥

प्रस्तुत गीत सूहड राग में निबद्ध है। इसमें ४ अन्तरे हैं। यह भी उपदेशात्मक गीत है जिसमें संसार का स्वरूप बताया गया हैं। पांचों इन्द्रियों द्वारा ठगा जाने पर और चारों गतियों में फिरने पर भी यह मानव जरा भी नहीं सम्भलता और अन्त में यों ही चला जाता है।

१५. गीत—(ए मेरै अंगणे वाचं वावा सोचंवे को वल कलि थावा।)

जिनेन्द्र की अष्टविध पूजा से भव के दुःख दूर हो जाते हैं। इसी भक्ति भावना के साथ इस गीत की रचना की गयी है। यह राग विहागडा में निबद्ध है। जिसमें ४ अन्तरे हैं। प्रत्येक अन्तरा में ६ पंक्तियाँ हैं।

१६. गीत—(संजमि प्रोहणि ना चडे भए अनंत संसारि।)

यह गीत आसावरी राग में है। प्रथम दोहा है। इस गीत में लिखा है कि सयम रूपी रथ नहीं चढ़ने के कारण अनन्त संसार में घूमना पड़ रहा है। यह प्राणी इस संसार में घूमते-घूमते थक गया है। किन्तु न धर्म सेवन किया और न सम्यकत्व की आराधना की। नरकों की घोर यातना सही, वहां शीत एवं उष्ण की बाधा सही, कुगुरु एवं कुदेव की सेवा की लेकिन सम्यकत्व भाव पैदा नहीं हुआ। इसलिए कवि जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करता है कि उनके दर्शन से ही उसे सम्यक् मार्ग मिल जावे यही उसकी हार्दिक इच्छा है।

१७. गीत—(नित्त नित्त नवली देहड़ी नित नित श्रवइ कम्मु।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तुत गीत में भी ४ अन्तरे हैं। गीत में कवि ने कहा है कि जीव को न तो बार-बार मनुष्य जीवन मिलता है और न अपनी इच्छानुसार भोग मिलते हैं इसलिए जब तक यौवनावस्था है, वृद्धावस्था नहीं आती है, देह को रोग नहीं सताते हैं तब तक उसे सम्भल जाना चाहिए।

राजद्वार पर लगी हुई झालरी रात्रि दिन यही शब्द सुनाती रहती है कि शुभ एवं अशुभ जैसे भी दिन इस मानव के निकल जाते हैं वे फिर कभी नहीं आते। इसलिए अब किञ्चित भी विलम्ब नहीं करके जीवन को संयमित बना लेना चाहिए। जिस प्रकार सर्वज्ञ देव ने कहा है उसी प्रकार हमें जीवन में उत्तम धर्म का पालन करना चाहिए।

प्रस्तुत गीत शास्त्र भण्डार मन्दिर बधीचन्द जी, जयपुर के गुटका संख्या ९७१ में संग्रहीत है।

१८. पद—ए मनुषि लियडा कवल विगस्सेवा।
ए जिणु देखीयडा पाप पणास्सेवा॥

प्रस्तुत पद में भगवान महावीर के आगमन पर अपार हर्ष व्यक्त किया गया है। महावीर के पधारने से चारों ओर प्रसन्नता का वातावरण छा जाता है। उनके दर्शन मात्र से जीवन सफल हो जाता है तथा धर्म की ओर मन लगने लगता है। मालाकार भगवान के चरणों में विभिन्न पुष्पों से गुंथी हुई माला अर्पण करता है। उनके चरणों में ध्यान ही मानव को जन्म मरण के बन्धनों से छुड़ाने वाला है।

प्रस्तुत पद बूंदी के नागदी मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत गुटके के ५७–५८ पृष्ठ पर लिपिबद्ध है।

१९. धम्मो दुग्गय हरणो करणो सह धम्मु मंगल मूलं।
जो भास्यो जिण वीरो, सो धम्मो नरह पालेहु ॥१॥

भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित धर्म दुर्गति को हरण करने वाला तथा मंगलीक फल का देने वाला है इसलिए मानव को उसी धर्म का पालन करना चाहिए ये ही भाव उक्त कुछ छन्दों में निबद्ध है। सभी छन्द अशुद्ध लिखे हुए है तथा लिपिकार स्वयं अनपढ़ सा मालूम देता है। फिर ये सभी छन्द तथा १८ वां संख्या वाला पद अभी तक अज्ञात था इसलिए इसका पाठ भी यहां दिया जा रहा है।

प्रस्तुत पद बूंदी के नागदी मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत गुटके में लिपिबद्ध है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय प्रतिपादन

बूचराज जैन सन्त थे इसलिए उनके जीवन के दो ही उद्देश्य थे। प्रथम अपना आत्म विकास द्वितीय अपने भक्तों को सही मार्ग का निर्देशन। वे स्वयं जिन-धर्म के अनुयायी थे इसलिए उन्होंने पहिले अपने जीवन को सुधारा फिर जनता को काव्यों के माध्यम से तथा उपदेशों से बुराइयों से बचने का उपदेश दिया। उनके समय में देश की राजनीति अस्थिर थी। हिन्दुओं एवं जैनों पर भीषण अत्याचार होते थे। यहां के निवासियों को ठेस पहुँचाना मुस्लिम शासकों का प्रमुख काम था। तत्कालीन मुस्लिम शासक विषयान्ध थे। उन्हीं के समान यहां के राजपूत शासक भी हो गये थे। महाराजा पृथ्वीराज की वासना पूर्ति के लिए इस देश को गुलाम बनना पड़ा। मुहम्मद खिलजी ने अपनी वासना पूर्ति के लिए लाखों निरपराधियों का संहार किया।

कविवर बूचराज ने ब्रह्मचारी का पद ग्रहण करकें सबसे पहले काम वासना पर विजय प्राप्त की तथा साधु वेष धारण कर ब्रह्मचारी का जीवन बिताने लगे। काम से अपने आप का पिण्ड छुड़ाया। इसलिए सर्वप्रथम कवि ने 'मयणजुज्झ' नामक एक रूपक काव्य लिख कर तत्कालीन वासनामय वातावरण के विरुद्ध अपनी लेखनी उठायी। यद्यपि उनके काव्य में कहीं किसी शासक अथवा उनकी वासना विषयक कमजोरियों का नामोल्लेख नहीं है। लेकिन कृति तत्कालीन सामाजिक दुर्बलताओं के लिए एक खुली पुस्तक है। १६ वीं शताब्दी अथवा इसके पूर्व नारियों को लेकर जो युद्ध होते थे वे सब देश एवं समाज के लिए कलंक थे। इनसे नारी समाज का मनोबल तो गिर ही चुका था उनमें अशिक्षा एवं पर्दा प्रथा ने भी घर कर लिया था। काम वासना से अन्धा पुरुष समाज अपना विवेक खो बैठा था। और पशु के समान आचरण करने लगा था। कवि ने 'मदन युद्ध' रूपक काव्य में काम वासना पूर्ति के लिए जिन-जिन बुराइयों को अपनाना पड़ता है उनका बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है।

कवि ने अपनी दूसरी कृति सन्तोषजयतिलकु में 'लोभ' रूपी बुराई पर करारी चोट की है। इस पूरे रूपक काव्य में लोभ के साथ-साथ अन्य कौन-कौन सी बुराई घर कर जाती है उनका विस्तृत वर्णन किया है। लोभ पर विजय पाना सरल काम नहीं है। बड़े-बड़े राजा महाराजा साधु महात्मा भी लोभ के चंगुल में फंसे रहते हैं इसलिए कवि ने कहा है—

दुसउ लोभु काया गढ अंतरि, रयणि दिवस संतवइ निरंतरि।
करइ ढीठु अप्पणु वलु मंडइ, लज्या न्यातु सीलु कुल खंडइ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोभ पर विजय प्राप्त किये बिना चतुर्गति में लगातार भ्रमण करना पड़ता है। लोभ अकेला नहीं है उसका पूरा परिवार है। राग एवं द्वेष इसके दो पुत्र हैं। झूंठ उसका प्रधान अमात्य है क्रोध और लोभ उसके सेनापति हैं। माया, कुव्यसन एवं कुशील उसके अंग रक्षक हैं। कपट उसके ध्वज का निशान है तथा इन्द्रियों के विषय उसके घोड़े हैं। दूसरी ओर सन्तोष राजा के समाधि नारी है तथा संवर पुत्र है। अठारह हजार शील के भेद उसके सिपाही हैं। सुधर्म, सम्यकत्व, ज्ञान एवं चारित्र, वैराग्य, तप एवं करुणा, क्षमा, संयम, महाव्रत ये सभी सन्तोष के अंग रक्षक हैं। सन्तोष राजा है। वह रत्नमय हाथी पर सवार है। हाथ में विवेक की तलवार है तथा सम्यक्त्व का छत्र सिर पर रखा हुआ है। दोनों ओर पद्म एवं शुक्ल लेश्या ही मानों चंवर ढोल रही हैं।

कवि ने इस प्रकार दोनों ओर की सेना में घमासान युद्ध कराया है। एक ओर नीति है नैतिकता है तथा सम्यक् आचरण है दूसरी ओर लोभ है, झूठ है, माया एवं कपट सभी अनैतिक। सन्तोष और लोभ के मध्य कवि ने अच्छा युद्ध करा दिया है। रण भूमि में उतरते ही दोनों नायक प्रतिनायक में वाद-विवाद तथा एक दूसरे को चैलेंज देते है जिससे पता चलता है कि स्वयं कवि को युद्ध भूमि का अच्छा ज्ञान था चाहे स्वयं ने कभी युद्ध नहीं लड़ा हो। लेकिन जब वाद-विवाद में लोभ सन्तोष पर विजय प्राप्त नहीं पा सका तो उसने तत्काल ही अपने अमात्य एवं सेनापति को युद्ध प्रारम्भ करने के आदेश दिये। इसके बाद दोनों ओर से घमासान युद्ध होता है। जो अत्यधिक रोमांचक एवं वीर रसात्मक है। युद्ध भूमि में एक दूसरे पर घात प्रतिघात तथा जय पराजय का जो वर्णन किया गया है उसमें कवि की काव्य प्रतिभा का पता चलता है। लोभ ने जब झूंठ का शस्त्र फेंका तो सन्तोष ने उस पर सत्य के शस्त्र से वार किया। और उसे परास्त करने में सफलता प्राप्त की। लोभ ने तत्काल मान को रण में लड़ने के लिए भेज दिया। सन्तोष ने उसका जवाब मार्दव से दिया। साथ ही महाव्रतों को भी रणभूमि में भेज दिया। दोनों में भयानक युद्ध होता है।

इस प्रकार कवि सत्य-असत्य के मध्य, मान और मार्दव तथा सम्यक् आचरण और मिथ्या-आचरण के मध्य युद्ध करा कर जगत को यह दिखाने में सफल हो सका है कि चाहे प्रारम्भ में असत्य एवं मिथ्याचरण की कितनी ही विजय दिखलाई देती हो लेकिन अन्त में विजय होती है सन्तोष, सम्यक् आचरण एवं मार्दव की। और वही स्थायी विजय होती हैं।

कवि की इस कृति में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मनुष्यत्व प्राप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करने के लिए विवेक से काम लिया जाना चाहिए। एक ओर मोह है जिसने अपने माया जाल से सारे जगत को फंसा रखा है और जो कोई इससे टक्कर लेना चाहता है उसे किसी न किसी की सहायता से वह गिरा देता है। वह नहीं चाहता कि मानव गुणों से पूर्ण रहे। सम्यक्त्वी हो और व्रतों के धारक हो। विवेक का वह महान शत्रु है।

सत् असत् की यह लड़ाई यद्यपि आज की नहीं किन्तु युगों से चली आ रही है। कवि ने इस लोभ रूपी बुराई से बचने के लिए जो उपाय बतलाये हैं वे ठोस प्रमाण पर आधारित हैं।

कवि की 'चेतन पुद्गल धमाल' तीसरी बड़ी रचना है। चेतन (जीव) और पुद्गल (जड़) का सम्बन्ध अनादि काल से चला आ रहा हैं। जब तक यह चेतन बन्धन मुक्त नहीं हो जाता, अष्ट कर्मों से नहीं छूट जाता तथा मुक्ति पुरी का स्वामी नहीं बन जाता तब तक दोनों इसी प्रकार एक दूसरे से बंधे रहेंगे। कवि ने इसमें स्वतन्त्रता पूर्वक अपने विचारों को प्रस्तुत किया है। दोनों में (चेतन, पुद्गल) वाद-विवाद होता है एक दूसरे की ओर से वादी प्रतिवादी बन कर कमियों एवं दोषों को प्रस्तुत किया जाता है। सांसारिक बन्धन के लिए जब चेतन पुद्गल को उत्तरदायी ठहराता है। तो जड़ बन्धनों का उत्तरदायित्व चेतन पर डालकर दूर हो जाता हैं। पूरा वर्णन सजीव है। सूझबूझ से युक्त है तथा आध्यात्मिकता से ओतप्रोत है। कवि ने पूरे प्रसंग को सरल भाषा में प्रस्तुत किया है जिससे प्रत्येक पाठक उसके भावों को समझ सके। आत्मा को सचेत रहने तथा पुद्गल द्रव्यों के सेवन से दूर रहने पर कवि ने सुन्दर प्रकाश डाला है।

कबीर ने माया को जिस रूप में प्रस्तुत किया है बूचराज ने वैसा ही वर्णन पुद्गल का किया है। कबीर ने "माया, मोहनी जैसी मीठी खांड" कह कर माया की भर्त्सना की है। तो बूचराज ने पुद्गल पर विश्वास करने से जो कलंक लगता हैं उसकी पंक्तियाँ निम्न प्रकार है—

इस जड तणा विसासु करि, जो मन भया निसंकु।
काले पासि वइट्ठि यह, निश्चै चडइ कलंकु ।।४३।।

लेकिन जड़ तो शरीर भी है जिसमें यह चेतन निवास करता है। यदि शरीर नहीं हो तो चेतन कहाँ रहेगा। दोनों का आधार आधेय का सम्बन्ध हैं। उत्तर प्रत्युत्तर देने, एक दूसरे पर दोषारोपण करने तथा कहावतों के माध्यम से अपने मन्तव्य को प्रभावक रीति से प्रस्तुत करने में कवि ने बड़ी शालीनता से काव्य रचना की है। वाद-विवाद में कवि ने जड की भी रक्षा की है। चेतन पर दोषारोपण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करने में उसने जरा भी संकोच नहीं किया है।[1] कवि ने चार सुख गिनाये हैं और वे हैं यौवन, लक्ष्मी, स्वस्थ्य शरीर एवं शीलवती नारी। जहाँ ये चारों हैं वहीं स्वर्ग है। लेकिन सांसारिक सुख तो नश्वर है जो दिन दिन घटते रहते हैं अतः संयम ग्रहण ही मोक्ष का एक मात्र उपाय है।

बूचराज ने केवल आध्यात्मिक तथा उपदेशात्मक काव्य ही नहीं लिखे किन्तु 'बारहमासा' 'नेमिनाथ बसन्त' जैसी रचनाएँ लिखकर अपनी शृंगार प्रियता का भी परिचय दिया है। यद्यपि इन काव्यों के लिखने का उद्देश्य भी वैराग्यात्मक है किन्तु इनके माध्यम से षड् ऋतुओं की प्राकृतिक छटा का तथा राजुल की विरहात्मक दशा का वर्णन स्वतः ही हो गया है और इससे काव्यों के विषयों में कुछ परिवर्तन आ गया है। राजुल नेमिनाथ के आने की प्रतीक्षा करती है। सावन मास से लेकर आषाढ मास तक १२ महिने एक-एक करके निकल जाते हैं। राजुल का विरह बढ़ता रहता है तथा उसे किसी भी महिने में नेमिनाथ के अभाव में शान्ति नहीं मिलती है। वह अपनी विरह वेदना सहती-सहती थक जाती है। नेमिनाथ अपने वैराग्य में डूबे रहते हैं उन्हें राजुल की चिन्ता कहाँ। यदि चिन्ता होती तो तोरण द्वार से ही क्यों लौटते। घरबार छोड़कर दीक्षा नहीं लेते। लेकिन राजुल को ऐसी बात कैसे समझ में आती। उसने यौवन में प्रवेश लिया था विवाह के पूर्व कितने ही स्वर्णिम स्वप्न लिये थे। इसलिए उनको वह टूटता हुआ कैसे देख सकती थी। बारहमासा में इसी सब का तो वर्णन किया हुआ है। सावन में बिजली चमकती है, मोर मेघ से पानी बरसाने को रट लगाते हैं, भाद्रपद में चारों ओर जल भर जाता है और आने जाने का मार्ग भी नष्ट हो जाता है, इसी तरह आसोज में निर्मल जल में कमल खिल उठते हैं ऐसे समय में राजुल को अकेलापन खाने को दौड़ता है, उसकी आंखों से आसुओं की धारा रुकती नहीं। इसी प्रकार राजुल नेमि के विरह में बारह महिने के एक एक दिन गिनकर निकालती है उनकी प्रतीक्षा करती रहती है। लेकिन उसका रोना, प्रतीक्षा करना, आहें भरना, सभी व्यर्थ जाते हैं। क्योंकि नेमिनाथ फिर भी नहीं लौटते और न कुछ संदेशा ही भेजते हैं। कवि ने इस प्रकार इन रचनाओं में पात्रों के आत्म भावों को उडेल कर ही रख दिया है।

कवि ने उक्त रचनाओं के अतिरिक्त पदों के रूप में छोटे-छोटे गीत भी लिखे हैं जो विभिन्न रागों में निबद्ध हैं। सभी पदों में अर्हंत भगवान की भक्ति के लिए पाठकों को प्रेरणा दी गई है साथ ही में वस्तु तत्व का भी वर्णन किया गया है।

---

१. काया की निंदा करई आपु न देखई जोइ।
जिउं जिउं भीजइ कांवली तिउ तिउ भारी होई ॥४१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस जीव को फिर चतुर्गति में भ्रमण नहीं करना पड़े इसलिए अरिहन्त भगवान की भक्ति में मन लगाना चाहिए। ऐसे उपदेशात्मक पदों में मनुष्य का अथवा इस जीव का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। कवि को बड़ी चिन्ता है कि यह जीवात्मा पता नहीं किस वेला से जगत पर लुभा रहा है। जिसको भी आत्मा में लगन लग जाती है तो उसे कष्टो का भान नहीं होता।

संयम जीवन के लिए आवश्यक है। जो व्यक्ति संयम रूपी नाव पर नहीं चढ़ता है वह अनन्त संसार में डुलता रहता है। इसलिए एक पद में "संजमि प्रोहणि ना चढै भए अनन्त संसारि" के रूप में प्रस्तुत किया है। सभी गीतों में इस जीव को विषय रूपी कलापों से सावधान किया है तथा उसे मोक्ष मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी है। क्योंकि स्वयं कवि भी उसी मार्ग का पथिक बन गये थे तथा रात्रि दिन आत्म साधना में ही लगे रहते थे।

इस प्रकार कवि ने अपनी कृतियों में पूर्णतः आध्यात्मिक विषय का प्रतिपादन किया है जिसको पढ़कर प्रत्येक पाठक बुराई से बचने का प्रयत्न कर सकता है तथा अपने आत्मा विकास की ओर आगे बढ़ सकता है।

भाषा

कविवर बूचराज की कृतियों की भाषा के सम्बन्ध में इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि बूचराज जन कवि थे। इसलिए जनता की भाषा में ही उन्हें काव्य लिखना अच्छा लगता था। उनके काव्यों की भाषा एक सी नहीं रही। प्रारम्भ में उन्होंने मयणजुज्झ लिखा जो अपभ्रंश से प्रभावित कृति है। इसकी भाषा को हम डिंगल राजस्थानी के निकट पाते हैं। जिसमें प्रत्येक शब्द का बड़े जोश के साथ प्रयोग किया गया है जिसका उद्देश्य अपने वर्णन में जीवन डालना मात्र माना जा सकता है। मैं मयणजुज्झ की भाषा को राजस्थानी डिंगल का ही एक रूप कहना चाहूँगा। जिसमें जननी को जणणी (२), मध्य को मज्झि (७), पुत्र को पुत्त (१०) के रूप में शब्दों का प्रयोग हुआ है। यही नहीं राजस्थानी शब्दों का जैसे पूछण लागा (२२), भाग्या (५६), वीडउ (३५) का भी प्रयोग कवि को रुचिकर लगा है। कवि उस समय सम्भवतः ढूंढाड़ प्रदेश के किसी नगर में थे इसलिए उसमें उर्दू शब्द जो उस समय बोलचाल की भाषा के शब्द बन गये थे, आ गये हैं। ऐसे शब्दों में चूतडि (३०), खवरि (३१), फौज (६५) जैसे शब्द उल्लेखनीय हैं।

इस समय अपभ्रंश का जन सामान्य पर सामान्य प्रभाव था। तथा अपभ्रंश की कृतियों का पठन पाठन खूब चलता था। इसलिए बूचराज ने भी अपनी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृति में अपभ्रंश शब्दों का खुलकर प्रयोग किया। ऐसे शब्दों के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

काव्य की भाषा	हिन्दी शब्द
णाण	ज्ञान
रिसहो	ऋषभ
तित्थयरु	तीर्थंकर
जम्मणु मरणु	जन्म मरण
धम्मु	धर्म
दुट्ठ	दुष्ट
तिजंच	तिर्यन्च
गव्वु	गर्व
गोइमु	गौतम

कवि ने कुछ शब्दों के आगे 'ति' लगाकर उनका क्रिया पद शब्दों में प्रयोग किया है। इस दृष्टि में हाकन्ति, हसंति, कुकंति, कुरलति, गायंति, वजंति (३४) जैसे शब्दों का प्रयोग उल्लेखनीय है।

यहाँ पर यह कहना पर्याप्त होगा कि कवि ने प्रारम्भ में अपनी कृतियों की भाषा को अपने पूर्ववर्ती अपभ्रंश कवियों की भाषा के अनुकूल बनाने का प्रयास किया लेकिन इसमें उसने धीरे-धीरे परिवर्तन भी किया जिसे 'सन्तोष जयतिलकु' एवं 'चेतन पुद्गल धमाल' में देखा जा सकता है। 'चेतन पुद्गल धमाल' कवि की सबसे अधिक परिष्कृत भाषा में निबद्ध कृति है। जिसे कोई भी पाठक सरलता से समझ सकता है। संवादात्मक कृति के रूप में कवि ने बहुत ही सहज एवं बोलचाल के शब्दों में गूढ़ से गूढ़ बातों को रखने का प्रयास किया है। इसलिए उसमें कोमल, सरल एव सुबोध रूप में विषय का प्रतिपादन हो सका है।

कवि की तीन प्रमुख कृतियों के अतिरिक्त 'नेमिनाथ बसन्तु', 'टंडाणा गीत' जैसे अन्य गीतों की भाषा भी राजस्थानी का ही एक रूप है। इन गीतों की भाषा पूर्वापेक्षा अधिक सरल है तथा शब्दों का सहज रूप में प्रयोग किया गया है। इसका एक उदाहरण निम्न प्रकार है—

राज दुवारह झल्लरी, अहि निसि सबद सुणावें।
सुभ असुभ दिनु जो धटइ, वहुडि न सो फिर आवइ।
आवइ न सो फिरि धाइ जो दिनु, आउ इणि परि छीज्जइ।
मोरुहु सम्भाइकु व्रत संजम, खिणु विलंब न कीजिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंच परमेष्ठी सदा समणउ हिंसइ तिज्ज समिकितु धरड ।
खिणाखिण चितावइ चेत चेतन राज द्वारह झल्लरी ।

लेकिन जब कवि ने पंजाब की ओर प्रस्थान किया तथा वहां कुछ समय रहने का अवसर मिला तो अपनी कृतियों को पंजाबी शैली में लिखने में वे पीछे नहीं रहे । इनके कुछ गीतों में पंजाबी पन देखा जा सकता है । शब्दों के आगे वे, वा, वो लगा कर उन्होंने अपने लघु गीतों में इनका प्रयोग किया है । ए सखी मेरा मणु चपलु दसै दिसे ध्यावै वेहा' इस पंक्ति में कवि ने 'वेहा' शब्द जोड़कर पंजाबीपने का उदाहरण प्रस्तुत किया है ।

इस प्रकार बूचराज यद्यपि शुद्धत: राजस्थानी कवि है । उसके काव्यों की भाषा राजस्थानी है लेकिन फिर भी किसी कृति पर अपभ्रंश का प्रभाव है तो कोई पंजाबी शैली से प्रभावित है । किसी-किसी पद एवं गीत की भाषा भी दुरुह हो गयी है और उसमें सहजपना नहीं रहा है तथा वह सामान्य पाठक की समझ के बाहर हो गयी है ।

छन्द

कविवर बूचराज ने अपनी कृतियों में अनेक छन्दों का प्रयोग करके अपने छन्द-शास्त्र के गम्भीर ज्ञान को प्रस्तुत किया है । मयणजुज्झ में १५ प्रकार के छन्दों का तथा सन्तोष जयतिलकु में ११ प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है । केवल एकमात्र चेतन पुद्गल धमाल ही ऐसी कृति है जो केवल दीपक छन्द एवं छप्पय छन्द में ही निबद्ध की गयी है । इसके अतिरिक्त बारहमासा राग वडहंसु में तथा अन्य गीत राग धन्याश्री, गौडी, सूहड, विहागडा एवं असावरी में निबद्ध किये गये हैं । बूचराज को दोहा, मडिल्ल, रड़ एवं षट्पदु छन्द अत्यधिक प्रिय हैं । वह दोहा को कभी दोहंडा नाम देता है । कवि ने रासा छन्द के नाम से छन्द लिखा है जिसमें चार चरण हैं । तथा प्रत्येक चरण में १५ व १६ अक्षरं हैं । मयणजुज्झ में ऐसे ८९ से ९२ तक के ४ पद्य हैं ।[1] अपभ्रंश के पद्धडिया छन्द का भी कवि ने प्रयोग किया है । लेकिन इसमें केवल ४ चरण हैं तथा प्रत्येक चरण में ११ अक्षर हैं ।[2]

---

१. करिवि पलाणउ मोहु भडु चल्लियउ ।
संमुह झंखज बाल बघूलउ भुल्लियउ ।
फुट्टिउ जलहरु कुंभ धाह तरुणि दिय ।
ले आइ तह अग्गि धूषंतिय रंडतिय ।।८९।।

२. तमकायउ तिनि भडु मोहु, जाइ, पुजु माया तह बुलाइ ।।
जब बैठे इनउ एक सत्थि, कलिकालु कहइ जब जोडि हत्थु ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रड छन्द में भी कवि ने कितने ही पद्य लिखे हैं। यह वस्तुबंध छन्द के समान है और किसी-किसी पाण्डुलिपि में तो रड़ के स्थान का वस्तुबंध नाम भी दिया है। इसी तरह मडिल्ल छन्द का भी पर्याप्त प्रयोग हुआ है। यह चोपई छन्द से मिलता जुलता छन्द है। रंगिका छन्द में आठ चरण होते हैं और यह सबसे बड़ा छन्द है। कविवर बूचराज ने इस छन्द का 'मयणजुज्झ' एवं 'सन्तोष जयतिलकु' इन दोनों में ही प्रयोग किया है।

कवि ने मयणजुज्झ एवं अन्य कृतियों में गाथा छन्द का भी खूब प्रयोग किया है। एक गाथा निम्न प्रकार है—

> ए जित्ति चित्त खिल्लउ, आयउ आनंदि घरह वद्धारे।
> उट्ठु उट्ठु चंचल वयणि, आरतउ वेगि उत्तारउ ॥५६॥

पाण्डुलिपि परिचय

मयणजुज्झ की राजस्थान के विभिन्न शास्त्र भण्डारों में निम्न पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध होती हैं :

	पत्र संख्या	लेखन काल	पद्य संख्या
१. आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर (महावीर भवन के संग्रह में) गुटका सं० ४६ वेष्टन सं० २८७	२४	—	१५६
२. भट्टारकीय शास्त्र भण्डार, अजमेर	२०	संवत् १६१६	१५८
३. शास्त्र भण्डार दि० जैन ठोलियान, जयपुर	—	सवत् १७१२	१५८
४. शास्त्र भण्डार दि० जैन बड़ा मन्दिर, जयपुर (गुटका सं० ५ वेष्टन सं० २६६४)	४१	—	१५८
५. शास्त्र भण्डार नागदी मन्दिर, बूंदी	२२	—	१४२
६. शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर, दीवान जी कामा (भरतपुर)	—	—	—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेकिन प्रस्तुत पुस्तक में दिया जाने वाला पाठ प्रथम, चतुर्थ एवं पंचम पाण्डुलिपियों के आधार पर तैयार किया गया है। आमेर शास्त्र भण्डार वाली प्रति जीर्ण अवस्था में है। लेकिन उसके पाठ सबसे अधिक शुद्ध है। बूंदी वाली पाण्डुलिपि में ५२।। पद्य एक लिपिकर्त्ता द्वारा तथा शेष पद्य दूसरे लिपिकार द्वारा लिखे हुए हैं। इसको पारा बाई द्वारा लिखवाया गया था। लिखने वाले देवपाल माली अलविरे का था। यहां क प्रति आमेर शास्त्र भण्डार वाली पाण्डुलिपि है। ख प्रति बूंदी के शास्त्र भण्डार की है। तथा ग प्रति से तात्पर्य शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर बड़ा तेरहपंथी मन्दिर जयपुर से है।

□ □ □

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मयरगजुज्झ

मंगलाचरण—साटिकु

जो सव्वट्ठविमाणहुंति चविउ तइ णाए चिंतंतरे।
उवन्नो मरुदेवि कूखि रयणो, स्यांग कुले मंडणो।
मुक्तं भोव सिरज्ज देस विमलं, पाली पवज्जा पुणो।
संपत्तो णिव्वाणि देउ रिसहो, काऊण तुव मंगलं ।।१।।

जिण अरह वागवाणि, पणवउ सुहमति देहि जय जणणी।
वण्णेसु मयण जुज्झं, किव जित्तिउ श्रीय रिसहेस ।।२।।

रिसह जिणवरु पढम तित्थयरु,
जिणधम्मह उद्धरणु, जुयलु[1] धम्मु सव्वै निवारणु।
नाभिराइ कुलि कवलु, सरवनु संसारह तारणु।
जो सुर इंदहि वंदियउ, सदा चलण सिरुधारि।
किउं किउं रतिपति जित्तिउ, ते गुण कहउ विथारि ।।३।।

सुणहु भवियण एहु परमत्थु,
तजि चिंता परकथा, इकु ध्यानु हुइ कंन्नु दिज्जइ।
मनुषिल्लइ कब लाज्यउं, हुइ समाधियउ अमी उपज्जइ।
परचै जिन्ह चित्तु एहु रसु, घालइ कसमल खोइ।
पुनरपि तिन्ह संसार महि जम्मणु मरणु न होइ ।।४।।

सुणहि नहीं जूवइ जे रत्त,
जे इत्तिय कामरस, बहु उपाय धंधइ जि रत्तीय।
पर निंदा पर कत्थ जिके, तियवरि उनमादि मत्तिय।
पडिय जि घोर समुद्द महि, नहु आवहि सुभ ध्यान।
नोमा रसु बहु अमीय रस, इतहि न सुणही कान ।।५।।

---

१. जुवल (क प्रति)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहा

चेतन एवं उसका परिवार—

पुव्व करम गहि बंधिउ, सहइ सु-दुख संताउ ।
इसु काया गढ भित्तरइं, वसै सचेतन राउ ॥६॥

रड

राउ चेतन काउ गढ मज्झि,
नहु जाणइ सार किमु, मनु मंत्री सपर बल बखाणउ ।
परवत्ति निवत्ति दुइ तासु तीय, ए प्रगट जाणउं ।
जाणउ निवत्ति विवेक सुत, परवत्तिहि भयो मोह ।
सो मल्लि बैठां रजू ले, करइ[1] कपटु सनेह नित दोहु ॥७॥

मडिल्ल

मोह धरहि माया पटरानी, करइ न संक अधिक सबलाणिय ।
करि परपंचु जगतु फुसलावइ, तहि निर्वत्ति किव आदरु पावइ ॥८॥

दोहा

चलिय निवत्ति विवेकु ले, दीट्ठे इसिय[2] आचार ।
मोह राउ तब गरजियउ, दल बल सयन विथार ॥९॥

गाथा

गढ[3] कनकपुरीय[4] नामो, राजा तह सत्तु करह थिरु रज्जो ।
तह[5] ले पुत्त पहुत्तिया, बहु आदरु पाइयो[6] तेण ॥१०॥
दीनी कन्या सत्त तिसु, सुमति सरस सुविसाल ।
थप्पि रज्जि विवेकु थिरु घालि गलइ गुणमाल ॥११॥

---

१. कर कपटु नित दोहु (क प्रति)
२. इसे (क प्रति)
३. चेतन की स्त्री निवृत्ति अपने विवेक सुत को लेकर कनकपुरी में पहुँच जाती है।
४. पुण्णपुरी (ग प्रति)
५. तहां लोकंत पहुतइ (ख प्रति)
६. पाइउ (ख प्रति)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोह द्वारा चार दूतों को बुलाना—

सालु विवेकह मोह मनि, सोवइ पान पसारि ।
येक दिवस इव सोचि करि, दूत बुलावइ चारि ।।१२।।

मडिल्ल

मोह[1] चारि तब दूत बुलाइय, सार लेण कुं वेगि पठाइय ।
कपटु कुसत्तु पापु वखाणउं, अरु[2] तहां दोहु चवथउ जाणउ ।।१३।।
खोजत खोजत देस सवाइय, पुन रंगइपट्टण[3] तब आइय ।
करि[4] भरडइ को वेस पठाइय, धीरज कोतवाल तब दिट्ठिय ।।१४।।

दोहा

रंगपट्टण का वर्णन—

धीरज देखि कुं दरसणीय, बहु ताडण तिन्ह दीय ।
पैसण मिले न नगर महिं, ले करि भागे जीय ।।१५।।
तीनि गए तिहुं वाहुडइ, कपटु कीयउ मनि चिट्ठ ।
तित[5] सरवर तिय भरहि जल, जितुसर जाइ वइट्ठ ।।१६।।

रड

ज्ञान सरोवर ध्यानु तसु पालि, जलुवाणी विमलमइ ।
सघण वरषत व्रत वारह, थिरु पंखी जोग तिहां ।
नलनि मगर प्रतिमा इग्यारह, अठतीसउं रिधि तिहां ।
आणंद कुंभ भरेहि, इक्क जीहत्ते सुन्दरी बहु थुति जैन करेह ।।१७।।

दोहा

बहुती जैन पसंसना, करत सुणी इक नारि ।
कपट छल्यउ तव नगर कहु, रूप जतीकउ धारि ।।१८।।

---

१. ख प्रति में १३ से १९ तक के पद्य नहीं हैं ।
२. अवरु ग प्रति
३. रंगपट्टन
४. करि भरडे कउ वेसु पइठे ग प्रति
५. तिस ग प्रति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मडिल्ल

नगरी मांहि कपटु, संचरयउ ठाम ठाम सो देखत फिरयउ ।
देखि विवेक सभा सुविचक्षण, देखि प्रजा वय सुभ लक्षण ।।१९।।
देख्या न्याउ नीति मारग बहु, देख्या तह टुइ लोगु सुख सहु ।
भेद छेदु सबहिं तिहां पायो, तब सु कपटु उठि पंथिहि पायो ।।२०।।

कपट का वापिस अधर्मपुरी में आन।—

आइ अधम्मपुरी सुपहुत्तउ, जाइ जुहार मोहसिंहु कित्तउ ।
मोह बुलाइ बात तसु पुच्छइ, कहहु विवेकु कवणटुइ अच्छइ ।।२१।।

दोहा

पासि बुलायो कपटु तब, पूछण लागा बात ।
कहां विवेक निर्वत्ति कहुं, कहु तिन्ह की कुसलात ।।२२।।

कपट का उत्तर—

मोह सुणहु तुम्हि कानु धरि[1], कपटु पयासइ एउ ।
जैसी देखी नयण मइ, तैसी बात कहेउ ।।२३।।

वस्तु बन्ध

धर्मपुरी का वर्णन—

बसइ पट्टणु पुन्नपुरु नयरु ।
तहाँ राजा सत थिरु, तिनि विवेकु गढि सुथिरु थप्पिउ ।
परणाई धीय तिनि, राजु देसु सबइ समप्पिउ ।
दया धम्मु तहां पालीयइ, कीजइ पर उपगारु ।
तह ठइ सुपनन दीसई, चोर अन्याई जारु ।।२४।।

दोहा

पवण छतीस्यु सुखस्यउं वसहिं, करइ न को परतीति ।
काचे कंचनं गलिय महि, पडे रहहिं दिनु राति ।।२५।।
तेरे गढ महि फोडि घर, चोर चरड ले जाहि ।
पर तिण कोइण छीपई, उसकी आज्ञा मांहि ।।२६।।
तहां परपंचु न दीसई, जह छै विसियन कोइ ।
सभै संतोषी मेदनी दीठी मइ अवलोइ ।।२७।।

---

१. दे क प्रति
२. ग प्रति में २८-२९ पद्य को केवल २८ वां पद्य ही माना है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मडिल्ल

दीठा नयरु फिरि विचारचउ पखि ।
सुभ वाणी सुणीय सव्वह मुखि ।
राउ नयरु विषमउं दलु वलु अति ।
इंद नरिंद करहिं जिसु की थुति ।।२८।।
सुणु सुणहो तूं मोह मुवपत्ति, मइं दीठा नयर तणी यहं गति ।
स्वामि विवेकु चडिउ अ्रति चाडइ, तुम्हं ऊपरि गव्वइ दिउ हाडइ ।।२९।।

दोहा

जब पच्चारिउ कपटि तिनि, तब मनि मच्छरु वाधु ।
डालि चडचा जणु वांनरा, चूत्तडि बीछू खाधु ।।३०।।
तब[1] अ्रहंकार कीयउ तह, लीयउ वेगि बुलाइ ।
खवरि करहु सब सयण कहु, सभा जुडो जिउं अ्राइ ।।३१।।

रड

मोह राजा की सभा—

रोसु अ्रायउ साथि तिसु भूंठ,
अ्ररु सोक संतापु तह, संकलपु विकलपु अ्रायउ ।
अ्रावर्त्ति चिंता सहितु, दुखु कलेसु कौ ध्यायउ ।
कलहु अ्रंदेसा छदमु तह, समसरु[2] बलगरु जाइ ।
अ्रैसी राजा मोह की सभा जुडी सभ अ्राइ ।।३२।।

दोहा

करिवि सभा तब मोह भडु, इव चिंतइ मन मांहि ।
जब लगु जीवइ विवेकु इहु[3], तब लगु सुख हम नांहि ।।३३।।

रड

तात मोहहि बयण सुणीयइ,
सुत मनमथु उठियउ, सिरु निवाइ करि जोडि जंपइ ।
दावानलु जिउ जलिउ, थरहराइ करि कोउ कंपिउ ।
रहहिकि कुंजर बापुडे, जितु वनि केहरि गंधि ।
आजु निर्वत्ति विवेक सुतु गहि ले अ्राउ बंधि ।।३४।।

---

१. तब अहंकारत्न कीवु तिनि क प्रति
२. अवरु समसरु सब्वलु गरजाये ग प्रति
३. दहु ग प्रति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहा

मदन का बीडा लेकर प्रस्थान—

मोह राउ तब हाथि करि, वीडउ अप्पइ अप्पु।
कुमति कुबुद्धि कुसीष देइ, चलायिउ कंदप्पु ।।३५।।

गाथा

गुडिय मयए मय मत्त गज्जिउ, सज्जिउ दलु विषमु चहु पयरेण।
हरि बंभु ईसु भज्जिउ, जब वज्जिउ गहिर नीसाएु ।।३६।।

गीतिका छंद

बसन्त का आगमन—

बज्जिउ निसानु बसन्तु आयउ, छल्ल कुंदसु खिल्लियं।
सुगंध मलयापवए झुल्लिय, अंब कोइल बुल्लियं।
रुण झुणिय केवइ कलिय महुवर, सुतर पत्तिहि छाइयं।
गावन्ति गीय बजंति वीणा, तरुणि पाइक आइयं ।।३७।।

जिन्ह कुंडिल केस कलाव कुंतिल, मंग मोत्तिय धारियं।
जिन्ह विणा मुवंग रुलंति चंदनि गुंथि कुसम सवारियं।
जिन्ह भवहं धुएहर धरिय संमुह नयण बाए चडाइयं।
गावन्ति गीय वजन्ति वीणा तरुणि पाइक आइयं ।।३८।।

जिन्ह तिलक म्रिगमय तिक्ख भल्लिय चीर धज फरकंतियं।
जिन्ह कनक कुंडल कंध मनमथ मूढ़ पंडिव भंतियं।
जिन्ह दन्त विज्जु चमकंत लग्गहि कुको कोनद वाइयं।
गायन्ति गीत वजन्ति वीणा तरुणि पाइक आइयं ।।३९।।

जिन्ह सिहणि गिरिवर रोम वए घण, नखसि असिवर करट्ठए।
इतु मग्गि चलंतह समरि तसकर कहउ नर कित्तिय हए।
वंज्जति घएरउ खिद्द नूपुर, काछ कुसम वएाइयं।
गावन्ति गीय वजन्ति वीणा तरुणि पाइक आइयं ।।४०।।

जिन्ह रागि कटि वंधिय पटंबर जिरह उर कंचूक से।
हाकंति हसति कुकंति कुरलति मूढ पट लहरी वसे।
जे कुटिल बुधिहि हरहि परचितु चरत चेउन जाणीयं।
गायन्ति गीय बजन्ति वीणा तरुणि पाइक आइयं ।।४१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखंतु दरसणु जिन्ह केरा रूप पहिला नासए ।
तिन्ह साथि परसु करंत खिणमहि तेउ तनहु पणासए ।
मोहणु करंतह आउ छीजइ कहहु किमि सुखु पाइयं ।
गायन्ति गीय वजन्ति वीणा, तरुणि पाइक आइयं ॥४२॥

जे दव्वु देखत चित्त रंजहि सील सत्तु गवावहि ।
जे चहुव गति महि अनत जम लगु बहुतु दुख सहावहि ।
चिति अवरु चितहि अवरु जंपहि अवरु जुगपति आइयं ।
गायन्ति गीय वजन्ति वीणा तरुणि पाइक आइयं ॥४३॥[1]

रड[2]

तरुण पय कडंत मंतीस
मिथ्यातीय गय गुडिय विसन सत्त हय तेउ सज्जिय ।
सुनाहु कुसील तिणि पापु कुत निसान वज्जिय ।
छत्तु धरियउ परमादु सिरि चमर कषाय ढलंति ।
इव रतिपति संवूह करि चडिउ गहीर गाजंति ॥४४॥

रंगिका

कामदेव का आक्रमण—

चडिउ गहीर गाजंत घोरि मानइ न संक उरि ।
सुभटु आपणु जोरि अतुल वले तिणि कुसम कोवंडलीय ।
भमर पण चकीय देखत तरुणि तिय कि कि न छले ।
सज्जि आणिय कुंत कृपाण साधिये पाचउ बाण ।
फेरिये जगत आण बंडिवि रणे, आइया आइया रे मदन राइ ॥
दुसहु लगउ धाइ चलिय सूर पलाइ गहवि तणो ॥४५॥

जिणि मिलिउ[3] संकरु माणु, छोडियउ अंतर ध्यानु ।
गौरी संग हित प्राणु इव नडियँ, जिन तपहु बिच टालि ।
घालिउ माया जालि गहन रूपि निहालि फंद पडियं ।
हरि लियो मदन कसि सोलह सहस वसि रहिउ गूजरि रसि रयण दिणो ।
आइया आइया रे मदनु राइ दुसह लगो धाइ
चलिय सूर पलाइ गहिवितणो ॥४६॥

---

१. क प्रति में यह पद्य तीन पंक्तियों का है ।
२. ग प्रति में इसका नाम वस्तु बंध दिया है ।
३. मल्यउ—ग प्रति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जमदगनि वे स्वामी तू टालिउ तिन्हा चित्त, छोडि तपु गेहकितु ।
आपु खोइयं, इंदु विषप अधिकु व्यापउ अहिल्या टालीयउ आपु ।
गोतमी दिय सरापु, भगउ इयं जिन लंकापति डिगाइ ।
आणिय सीय चुराइ, घाल्या रावणु घाइ कइ जिणो ।
अइया अइया रे मदन राइ चलिय सूर पलाइ गहिवि जिणो ॥४७॥

जिणि सन्यासी जतीय सार, जंगम सिर जटा धार ।
जोगीय मंडित छार घलिय रसे, जिन भरउ भगववेस ।
विहंडी लुंचित केस, काली पोस दरवेस कि कि नगसे ।
जख्य राकस गंधव गुरु, सुभट सबल नर पसुव पंखिय धर कित्तिय थुणो ।
अइया अइया रे मंदन राइ दुसुहु लागा धाइ ।
चलिय सूर पलाइ गहियावितणो ॥४८॥

कि के जैन के सेवणहार ते तो कीते भिष्टचार ।
भोगिय सुख अपार संसार तणो ।
उहि देखत भये अंध पडिय करम फंध ।
किये कुगत बंध जनम घणौ ।
जैसे वंभदत्त चक्कवति काम भोग करि थिति ।
गयउ नरक गति सतमि थुणो ।
अइया अइया रे मदन राइ दुसहु लागो ध्याइ ।
चलिय सूर पलाइ गहियावितणो ॥४९॥

जिनि कुंड रिषि ताडि, लीयउ सुभट पाडि ।
सिखर हु दिया राडि तपु तजियं ।
लीए सबल सुसर अंगि रहिउ तिय रंगि ।
विषय विषय संगि सुख भजियं ।
वीर चरण सेवक नितु इंदिय लोलप चित्तु ।
सेणिकु नरय पत्तु सुख निषणो ।
अइया अइया रे मदन राइ दुसहु लागौ ध्याइ ।
चलिय सूर पलाइ गहवितणो ॥५०॥

इक अबुह संजम रूपि, छलिय मदन भूप ।
दीनीय संसार कूप दंसण भट्टे ।
नित करहिसि परपंचु अनेकह जीव बंचु ।
तजि मान लेहि कंचु अप्पणु हट्टे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ते तौ रहिय सुचि आरंभ सकिन बरतु ठंभि ।
उवर भरहि डंभि रंजिवि जिणो ।
अइया अइया रे मदन राइ दुसहु लागी घ्याइ ।
चलिय सूर पलाइ गहिवितणो ॥५१॥

षट्पद

जितउ सुभटु वलिवंडु जिन्हु गज सिंघ निवाइय ।
जीतउ दैत्य प्रचंड लोइ जिन्ह कुमगिहि लाइय ।
जितउ देउ वलि लबधि धारि वहु रूप दिखालहि ।
जितउ दुट्ठ तिजंच करिवि लघु बणखंड जालहि ।
असपति गजपति नरपतिय भूपतिय भूरहिय भरि ।
ते अच्छ लच्छ ले टालिय अटल मयण नृपति परपंचु करि ॥५२॥

रड

जीतिये सहि कीयउ मनि हरषु ।
पुन्नपुरि[1] दिसि चलिउ, तब विवेक आवंत सुणियो ।
चित्तंतरि चिंतविउ करिवि मंतुये रिसउ मुणियउ ।
धम्मपुरिहिं श्री आदि-जिणु सुणियउ परगट नाउ ।
तत्थ गए हउं उव्वरउ मदन गंवावउं ठाउं ॥५३॥

गाथा

इव करंत गुह्य मंतो, आयउ सुह ध्यान दूव रिसहेसु ।
विवेक वेगि चबहु बुल्लावइ देब सरवन्नि ॥५४॥

दोहा

चलिउ विवेकु आनंदु करि, धम्मपुरी सुपहुत्त ।
परणाई संजमसिरि, सुखु भोगवइ बहुत्त ॥५५॥
जब बिबेकु नाठउ सुण्या, चितवइ अनंगु अयाणु ।
भाग्या पीठि न धावहि, पुरुषहि इहु परवाणु ॥५६॥[2]

---

१. पुष्पपुरी ।
२. 'ग' प्रति में ५६ वें पद्य की दूसरी पंक्ति नहीं है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रड

कामदेव का स्वदेश आगमन—

फिरिउ मनमथु जित्ति सव देसु,
नट भट जै जैं करिह, पिसाच गंधव्व गार्वाहि ।
बहु खिल्लिय दुट्टु मरिण, कुजसु पडहु गढ महि बजावहि ।
माया करइ बधावणउ, मोह रहसि चित्तु ।
सव्वे इंछा पुण्णिया, जिण घरि आयउ पुत्तु ॥५७॥

दोहडा

माइ पिता पगि लागि करि, तब मनमथु घरि जाइ ।
रहसिउ अंगिन मावई, जीते राणा राइ ॥५८॥

गाथा

ए जित्ति चित्ति खिल्लउ, आयउ आनंद घरह जब बारि ।
उट्ठु उट्ठु चंद बयरिण, आरतउ वेगि उत्तारउ ॥५९॥
मुहु रहिय मोड मानणि, पुच्छइ तब मयणु कवण कज्जेण ।
को सूरु वीरु अटलो कहि सुंदरि मुज्झ सरि मुवणे ॥६०॥

रड

रति एवं कामदेव के मध्य प्रश्नोत्तर—

कंत जित्तउ कवणु तै देसु,
को पट्टणु वरु रायरु, कवणु सवलु भूपत्ति डिगायउ ।
किसु छत्तु विहंडियउ, करिवि बंदि कहु कासु ल्यायो ।
किसु मलिया परतापु, तै कह कह फेरी आण ।
रति जंपइ हो मदन भड कहु पौरिषु अप्पाणु ॥६१॥
जिणि संकरु इंदु हरि बंभु,
वासिग्गु पयालि जिसु, इंदु चंदु गंह मरण तारायरण ।
बिद्याधर यक्षसु गंधव्व सहि देव गण इण ॥
जोगी जंगम कापडी सन्यासी रस छंदि ।
ले ले तपु बरण महि दुड्डिय ते मइ घलि वंदि ॥६२॥

दोहा

सुणि करि पौरिष मुज्भु तणा, घाल्यो मरण भरमाई ।
संमुहु अणिय न जुज्झयउ, गयउ विवेकु पलाइ ॥६३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रड

जाणिमंतु पिय गयउ विवेकु,
धम्मपुरि गढ चडिउ सर्वनि सनमानु दीयउ।
परतापै गरजियो, सूर्रजिव उद्योतु कियो।
जीवंतउ वैरी गयउ, देषुजि करिहौ सोजु।
तां तू मदनु न मोह भडु दुहू गंवावइ षोजु ।।६४।।

दोहा

ढंढोलिय तीन्यो[1] भुवण बलु लिद्धउ सुहडाइं।
सोमइ कहूँ न दिख्यिउ सो मुज्भु पकडइ बांह ।।६५।।

बडहू बडेरी पिरथवी, घर महि गव्वहि कासु।
तब बल पौरिष कंत तुव, जे जित्तहि आदीसु ।।६६।।

जव तिनि नारि बिछोहियउ, तव तमकिउ तिसु जीउ।
जणु पजलंती अग्गि महि, लेकरि घालिउ घीउ ।।६७।।

कवित्त

कामदेव का धर्मपुरी की ओर प्रस्थान—

रोम रोम उद्धसिया, भिकुटि चडिय निल्लाडिय।
गुरणाउ जिउ सिम्रु घालि चललिय अंगडाइये ।।
विसहर जिउं फुंकरइ, लहरि ले कोयह चडियउ।
जिव पावस घण मत्त तिवसु गज्जवि गड अडियउ।
नहू सहिय तमतिसु तिय किय, मछ तुछ जलि जणु सलिउ।
श्री धम्मपुरी पट्टण दिसहि, तबसु दुट्ठ मनमथु चलिउ ।।६८।।

गाथा

चल्लियउ रयहणाहो, सुंदरि धरि वयण चित्त मज्झमि।
कलि कालि तामु सुणियउं, उट्ठयउ मोहु भडु जाइ ।।६९।।

उट्ठि उठ्यो मोहू राउ दिट्ठिउ नर सूरु वीरु परचंडो।
तू कवण कत्थ बासहि, कहू आयो कवण कज्जेण ।।७०।।

---

१. तिरिणउ क प्रति, तिरिण ख प्रति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रड[1]

सुणहू स्वामीहउ सुकलिकालु
दस खेत्तहि संचरिउ, मइ[2] प्रतापु आपणँ कियउ ।
विवेकु दुडाइयउ, मुकति पंथु चलण न दीयो ।
कोडाकोडी अट्ठदस सायर मइवलु कित्तु ।
आदीस्वर भय भग्गियउ, इव तुम्ह सरणि पहूत्तु ।।७१।।

दोहा

आइ पडिय तिहि[3] अवसरिहि, पुरषहि सीझहि काम ।
कलीकालि पच्चारिउ, मोहू तमक्किउ ताम ।।७२।।

पद्धडीय छंदु

तमकायउ तिनि भडु मोहू जाइ, पुणु माया तह ठैलै बुलाइ ।
जव वैठे दूनउ' एक सत्थु, कलिकालु कहइ जव जोडि हत्थु ।।७३।।
तुम्ह पूत मदन अति चडिउ तेजि, मन माहि न देखिउ सो आगेजि ।
घर माहि वडत तिनि नारि दुट्ठि, आरत्तउ न कियउ वेगि उट्ठि ।।७४।।

कामदेव का प्रभाव—

नहु सहीय तमक मनमथ प्रचंडु, उत्तरिउ जाइ तितु घोर कुंडु ।
सो घोर कुंड दुद्धरु अगाहु, जलु रुहिरु पूई भरियो अथाहु ।।७५।।
भय भीम भयंकर पालि जाह, आसाता वेयणि नलनि ताह ।
जह बिरख तिक्ख करवाल पत्त, झडि पडहि तुट्टि छेदहि सिगात्त ।।७६।।
जह ढंख कंख पंखियन नेह, जिन्ह चुंच संडासिय भखह देह ।
जितु लहरि अगनि झाला तपाइ' खिणुमहि सतनु घालहि जलाइ ।।७७।।
करि मगर मंछ ए दुट्ठ जीय, तिसु भीतरि ते पुण लेइ दीय ।
वै परमाधरमी बधिक जाणि, ते घालि जालु काढति ताणि ।।७८।।
इक लो कुहाड कूकहि गहीर[4], ते खंड खंड करि घालहि सरीरु ।
जह तपा तपहि नित लोह थंभ, जिन्ह लावहि अंगिजि षलिय वंभ ।।७९।।

---

१. ग प्रति में रड के स्थान पर वस्तु बन्ध छन्द का नाम दिया है ।
२. मैनू (ख प्रति)
३. तित्तु (क, ख प्रति)
१. अहीर (क प्रति)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थाइयइ सु ता बाताइ सुद्ध, मदि मासि जिहुं तिय जीव लुद्ध ।
तह घाट विषम कुंभी गहीर, तिसु माहि पचावहि ले सरीरु ।।८०।।
सिरु तलैं करहि उपरि सि पाउ, वैं घालहि सबल निसंक घाउ ।
भाले करि पीडहि घाण माहि, रड वडहि रडहि बहु दुखु सहाइ ।।८१।।
वैं छेयरग भेयरग ताडणह ताप, वैंसहहि जीय जिनि कीय पाप ।
जिनि अन्यामानी मोह राइ, तितु सुर मज्जहि तेह जाइ ।।८२।।
तह स्वामि उत्तारिउ मयरग कीय, मइ आइ सारथयह तुम्ह दीय ,
धम्म[२]पुरु गढु अति विषम ठारगु, तिस उप्परि चलिउ करि बितारगु ।।८३।।
इव आइ जुडियइह्नु विषम संघि, उहूं संक न मानइ जीति कंधि ।
उहु अप्पु अप्पु अप्पउ भरगाइ, उहु अवरि कोडि नबडि गिणाइ ।।८४।।
आदीसुरस्यउ मिल्लिउ बिबेकु, उहुं वैंसि कियउ दूहुं मंतु एकु ।
अप्पणउ दाउ सहुको गणंति, को जाणइ पासा किं ढलंति ।।८५।।

दोहा

इती बाय सुरगेबि करि, चित्ति उप्पणउ कोहु ।
सधनु सवैं संवूहि करि, इव भडु चल्लिउ मोहु ।।८६।।

रड

मोह का साथ होना —

मोहु चल्लिउ साथि कलिकालु,
तहहूंतउ मदन भडु, तह सु जाइ कुमंतु कियउ ।
गढु विषमउ धम्मुपुरु, तहसु सघनु संवूहि लियउ ।
दोनउं चल्ले पैंज करि, गव्वु धरिउ मन माहि ।
पवण प्रबल जव उच्छलहि, घण घट केम रहाहि ।।८७।।

गाथा

रहहि सुकिउ घण घट्टं, जुडिया जह सबल गजि थट्टं ।
सवखिडि चले सुभटं, पयाणउं कियउ भड मोहं ।।८८।।

रासाछंदु

करिवि पयाणउं मोहु भड चल्लियउ ।
संमुह झंषाज वालबघूलउ झुल्लियउ ।
फुट्टिउ जलहरु कुंभ ध्याह तरुणि दिय ।
ले आइ तह अग्गि घूषंतिय रडंतिय ।।८९।।

---

२. धर्मपुरी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपशकुन होना—

मुंडिय सिरु नर न कटउ हथि कपालु जिसु ।
संमुहुई छींक पयाणउं करत तिसु ।
तिण तुस चम्म कपास कद्दम्म गुड लवणा ।
मोह चलतं तिसु नगर हू दीठे ए सवणा ।।६०।।

प्रथम मजलि चलंत सुफौही फोकरई ।
नाइक बाझहु मालउ बत्तीसी अणुसरइ ।
वांवइ काला विसहरु भैंसिहूं फणु हणई ।
सुक्क विरषतहि जुगिणि बोलइ दाहिणए ।।६१।।
सवणन सुपिनउ मानइ, चडिउ गविअते ।
कज्ज बिणासण अवसरि पुरुषह डिगय मते ।

धर्मपुरी के दर्शन होना—

मजलि मजलि करि चलिउ, धम्मपुरी दिसहि ।
आगम ध्यातम सार जणाइय वेचरहि ।।६२।।

दोहा

आगम ध्यातम बिन्निचर तिन्ह जणायउं ।
आइ तुम्ह उप्परि पल्याण्यो, स्वामी मनमथु राइ ।।६३।।

गाथा

सुणिय बात मणरसु उपायउ ।
मरुवत्तणु न क्कीवु बुलायउ ।
सार देइ बिव्वेक बुलावहु ।
सभा जोडि सुहु मंतु उप्पावहु ।।६४।।

कवित्तु

विवेक की सेना—

सम दम संबरु ढुकु ढुकु वैरागु सवलु दलु ।
बोहि तत्तु परमत्थु सहण संतौष गरूवभर ।
षिमा सु अज्जउ मिलिउ मिलिउ मद्दउ मुत्तित्तउ ।
संजमु सुत्तु सउव्वु आयउ किंचणु बंभवउ ।
बलु मंडि मिलिय करुणा अटलु सासण बिण बधाइयउं ।
ले फौज सबलु संवूहि करि इव विवेक भडु आइयउ ।।६५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हक्कारिउ सुभट चारितु सज्जिउ तपु सैनु सवलु संवूहि ।
गह गहउ जैन चित्ते, इव चल्लिउ रिसह जिणणाहि ।।९६।।

चल्लिउ रिसह जिणंदु स्वामी, विहिसिया मनु कवलु ।
तिसु पंथि सनमुष आइया, नाथि यामै मतु धवलु ।
मृदंग तूरा संष भेरी झल्लरी झंकारु ।
दाहिणइ सुंदरि सबद मंगल, गीय करहि उचारु ।।९७।।

ले हत्थि पूरणु कलसु लक्षिमी, मीलिय सनमुष आइ ।
पावकु दीपग्गु जोति समसरि देषिया जिण राइ ।
सव रच्छ सुरही अति अनूपमु, काढ तासु गुवालु ।
पयसंतु पवलिहि दिट्ठु, नरवइ, करगहै करवालु ।।९८।।

निलटंतु वांवइ वोलिया चडि सुफल विरखहि चाइ ।
इकु निवलु जुगलु पलोइया सावडू चडिया आइ ।
गरजंत सुणिया केसरी सिरि धस्या चवरु उठाई ।।९९।।

दुइ दिट्ठ गयवर अति सउज्जल करत गल गरजार ।
आवंत फल नारिंग निहाले अवर कुसमहि हारु ।
सब सवण सुपन संजोग उतिमालवधि पोतइ जाम ।
जे नीति मारग पुरष चालहि तिनहि सीझइ काम ।।१००।।

रड

हुइय उत्तिम सवेण जाम
गढ पाषलि उत्तरिउ, सुमति पंच सा बाण छाइयं ।
मनुसूरह गह गहिउ, जाम नीसाण परगढ बजाइय ।
दोनउ ढुक्किय सवल दल, जुडिय सुभट मुख मोडि ।
रणु दिट्ठहि जे नर खिसहि, तिनकी जननी खोडि ।।१०१।।

पद्धडीय छन्दु

तिन्ह जननि खोडि जे भजि जाहि, पच्चारिय नर पौरिषु कराहि ।
रणु अंगणु देखहि सूरबीर, पे रुणिय जेव नच्चहि गहीरु ।।१०२।।

आइयउ पहिल अन्यान घोरि, उट्ठि न्यान पछाडिउ करिवि जोरु ।
मिथ्यातु उठिउ तव अति करालु, जिनि जीउ रुलाउ अनत कालु ।।१०३।।

घल्लिउ कुमग्गहि लोउ तासु, तिनि मुसिउ न कोको को विस्वासु ।
अन्नादि काल जो नरह सल्लु, उहु मिडइ सुभटुए कल्लु मल्लु ।।१०४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

युद्ध का वर्णन—

लोगालोगोत्तरु दुहु पयार ।
जिसु सेवत भमियइ गति चयारि ।
समिकतु सुसूरु तब दिट्ठु होइ ।
बलु मंडि रणहि जुट्टियो सोइ ।।१०५।।

फाटियो तिमरु जब देखि भानु ।
भग्गियो छोडि सो पढम ठाणु ।
उठि रागु चलिउ गरजत गहीर ।
वैरागि हणिउं तणि तासु तीरु ।।१०६।।

उठि धाइ दुसहु तव विषइ लगु ।
पच्चखाणु देवलु परइ भगु ।
उठि कोहु चलिउ झाला करालु ।
तब उपसमु ले हणियो करवालु ।।१०७।।

मद्द भट्ट सहित गंजिउ मानु ।
जिनि मद्दवि जित्ति कर बिताणु ।
तब माया अति उट्ठी करूर ।
मलि अज्ज बिदिन्नो होट्ठ चूरि ।।१०८।।

बाईस परीसह उठेय गज्जि ।
दिखि देखि धीरजु सुभटु जि गईय भज्जि ।
आइयउ कलहु तह कलकलाइ ।
दुडि गयउ दुसहु तिसु खिमा धाइ ।।१०९।।

ढुक्कियउ झूट्ठु मूरिखु अंगेजु ।
सति राइ गंवायो तासु तेजु ।
कुसीलु जु होत दुट्ठु चित्ति ।
बलु करि बिदारिउ बंभदत्त ।।११०।।

दलु चलियउ मोहह मुख फिराइ ।
तब लोभु सुभटु भो जुडिउ आइ ।
तिणि दारुणि बलु मंडिउ बहूतु ।
उन बिकट बुधि सिट्ठ दिनी सुधुत्त ।।१११।

उहु दुषी करइ नित पुरिष संत ।
उहु व्यापि रह्या सह जीव जंता ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उहु लडइ खिणहु खिणि भज्जि जाइ ।
बलु करइ बहुडि संचरइ आइ ॥११२॥

दसमैं गुणठाणौ लगु चडेइ ।
बलु करइ अधिकु नहु जाण देइ ।
तिसु देषि पराक्रमु खलिय राइ ।
संतोषु तबसु उट्ठियउ रिसाइ ॥११३॥

तिसु सीसु हृण्या ले वज्ज दंडु ।
खँड हृडिउ लोभु पडियो प्रचंडु ।
एहु देषि जूद्धु सो कलियकालु ।
खिण माहि फिरिउ नारदु बितालु ॥११४॥

तिनि तजिय कुमति सुहमति उपाइ ।
विव्वेकु सहाई हुयउ आइ ।
जो चलन न दित्तउ मुत्ति मग्गु ।
कर जोडि सुस्वामी चलण लग्गु ॥११५॥

आसरउ उठिउ सव विधि समत्थु ।
रण मज्झि भउ करि उब्भ हथु ।
संवर वलु आणिउ ताम चित्ति ।
तिमु खोइय मूलि उप्पाडि थित्ति ॥११६॥

बहु भिडिय सुभट रण महि पचारि ।
के भग्गिय के घल्लियसि मारि ।
दल माहि जु क्रम हुंतिय प्रचंडु ।
तप सूर किये ते खंड खंड ॥११७॥

जव बात सुणीयहु मोह राइ ।
तब जलिउ बलिउ उट्ठिउ रिसाइ ।
करि रत्त नयण बहु दंत पीसि ।
अनिहाउ पडिउ जण तुट्टि सीसि ॥११८॥

बहु रूद्दि रूपि सो डह्यो आप्पु ।
सो बहुत करइ जीयहृ संतापु ।
रै मडिउ सु रणमहि दुसहु धाइ ।
उस संमुहु न ढुक्कइ कोइ आइ ॥११९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्तु बन्ध

को न ढुक्कइ समुहु तिसु आइ ।
बलु पौरिषु सबु हरिउ मलइ—
अमल सो अचल चालइ ।
वैरागहु चरितहु तपहु अवरु संजमहु टालइ ।
अट्ठाइसै पगल जिसु लगाइ जिस कहूं धाइ ।
सो नरु जम्मणु मरणु करि बहूतै जोणि भमाइ ।।१२०।।

तब बुलाय देवु आदीसु,
बिव्वेकु सवलु भडु' अप्पुवकारणि थानिकि बइट्ठिउ ।
अवगंजनु मोहकौ, न्यान बुद्धि अवलोइ देषिउ ।
पेरिउ तब तिनि सीख कहि, दे असिवरु सुहु भाणु ।
वेगि वियारहु धुत्त दुइ, जिउ प्रगटै निव्वाणु ।।१२१।।

गाथा

प्रगटावण पहुमतो, चडियो वव्वेकु सज्जि भोवालो ।
लो सरयन्नि चलणि लग्गिवि, लेउ नमतु चलियउ एवं ।।१२२।।

चौपाई

उन्मतु ले चल्लिउ मनमहि खिल्लिउ ।
उपजी बहुत समाधि रणि रंगणि आयो ।
साधह भायो नाठी कुमति कुव्याधि ।
रंजिय सुह्र सज्जणि जिव पावस घण ।
दुज्जण मथै तालो मोहह मौषंडनु ।
न्यानह मंडनु चडिउ बिवेकु मुवालो ।।१२३।।[1]

उस बाझहू जे नर, दीसहि रत खर कित्त किसहि न काजे ।
जिन्ह कहुं प्रसन्ना पुछिल्ल पुन्ना, ते राणे ते राजे ।
ते अविहउ मित्तह निम्मल चित्तह, विगसत बचन रसालो ।
मोहह मौषंडणु न्यानह मंडनु चडिउ बिवेकु मुवालो ।।१२४।।

---

१. क और ग प्रति की छन्द संख्या में अन्तर है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो दलि बलि पूरा, सव विधिसूरा, पंचह महि परवीणो ।
परमत्थह वुज्झइ आगमु सुज्झइ धम्मि ध्यानि नित लीणो ।
जो फेडैं दुर्गति आणैं सुहगति बहु जीवह रखवालो ।
मोहह मौखडनु न्यानुह मंडनु चडिउ विवेकु मुवालो ।।१२५।।

जो दव्वह खित्तहि, जाणैं छित्तिहि काल भावसु बिचारइ ।
नयसुत्तिहि सत्थहि भेयहि अत्थहि संकट विकट निवारइ ।
जो आगम विमासइ निरतउ भासइ मदन खनन कुद्दालो ।
मोहह मौखंडनु न्यानह मंडनु चडिउ विवेकु मुवालो ।।१२६।।

छपदु

पाप पटलु निद्दलनु जोति परमप्पय कासणु ।
चिंता मणियहु रमणु भवियण जण मन उल्हासणु ।
सकल कल्याण कोसु, सवइ आरति भय खिल्लणु ।
जडिगत जीव अवठंभि, भार धम्म धुर झुल्लणु ।
संतुट्ठ होइ जि सुर नर, मिलिउ तासु न पडइ कम्मपहु ।
चडिउ विवेकु इव सज्जि भडु, करण प्रगट निव्वाण पहु ।।१२७।।

पद्धडिय छंदु

मोह एवं विवेक के मध्य युद्ध—

परगटणु मग्गु निव्वाणु कज्जि ।
विवेकु सुभटु तव चडिउ सज्जि ।
तब ढोयो कीयो तेंनि जाइ ।
मुहु मोडि चलिउ तब मोहु राइ ।।१२८।।

देखिउ मदनु जब खिसत मोहु ।
तव चल्लिउ अप्पु मनि करि विछोहु ।
उइ दोनउ दुक्किय काल कंघि ।
तव भिडिय रणांगणि फौज बंधि ।।१२९।।

चै अणिय जोडि जुझिय मुवाल ।
तब पडहि खग्गजणु असणु झाल ।
ए तेजल्हेस्या गोले मिलंति ।
तिसीय उल्हेस्या झाला झलंति ।।१३०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैर हीय सुभट्ट अच्चल्ल होइ ।
दुह माहि नपिछौड खिसई कोइ ।
जब देखिउ दलु दुधरु अगाहू ।
तब संजमि रथि चडि चलिउ नाहु ॥१३१॥

छंदु रंगिका

आदिनाथ की कानदेव पर विजय—

जिणु संजमु रथहि चडि तिन्नि गुत्ति गय गुडि ।
मिलिय सुभट जुडि पंच वरत खिमा आडणु समुहू धरि ।
न्यानु करवालु करि समिकतु ताणि सिरि तवि उत्थितं ।
छुटि अगम सकल सार कुमति कथानर कपति घणो ।
भाजु भाजु रे मदन भट, आदिनाहु सिरिसट ।
देइ कर दह वट प्रथम जिणो ॥१३२।[1]

खेतुरचा भावन भाइ, मत्त धु जलहकाइ ।
मिलिय राणिय राइ, छत्तीस गुणं अनुप्रेक्षा पाइ कवार ।
सील सहंस अंगठार, दस विधि धम्मचार ।
सवल घणं वैठौ त्रोदसमें गुणगणु ।
देखिय अन्तर ध्यानि गति थि सब जाणि कहइ गुणो ।
भागु भाजु रे मदन भट आदिनाहु सिरि सरट····जिणो॥१३३॥

तिनि रतन जो से निकसि बभु बरत धारि असि ।
नफीरी बाजहि जसि, गहिर सरोदयारहिंय पोरिख पूरि ।
भागिय हिंसा दूरि बलु उपसनु सूरि कियो ।
नरो ए जु अतीसह .तीसचारि, परि जेति बंच कारि ।
मंतु सुध्यानु धरि राखिउ मणो, भाजु भाजु रे मदन भट ।
आदिनाहु सिरसट देइ कर दह बट प्रथम जिणो ॥१३४॥

घालिउ समर कटकु फंदि, मोहु राउ कियो बंदि ।
कसाइ चारि निन्द बहिहा भडमद मैंगल किय निपातु ।
चालिय भागि मिथ्यातु मुडिय घडा धम्म सुरति भाट पढंति ।
दुंदही देव वाजंति सुरह तीय गावंति सासण गुणो ।
भाजु भाजु रे मदन भट·········प्रथम जिणो ॥१३५॥

---

१. क प्रति में १३२ की संख्या नहीं दी गई है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कवित्तु

चडिउ कोइ कंदप्पु, अप्पु बलु अवर न मानइ।
कुंदइ कुरलइ तसइ, हसइ सुभटह अवगण्णइ।
ताणि कुसमु कोवंड भडरडह संडह दल।
बंभई सहरि दैत तिन्ह रखिय तिन्हक।
कवि बल्हणु जयंतु जंगमु अटलु।
सरकिय अवरु तिसु सरइ कोइ।
असि झाण हणिउं श्री आदिजिण।
गयउ मयणु दह बट्ट कुहुइ ॥१३६॥

वस्तु बन्ध

दुसहू बद्धउ मोहु प्रचंडु, भडु मयणु निंदियउ।
कलिय कालि तव पाडि लियउ, आनंदु निर्वत्ति मनि।
विवेक जसु तिलकु दीयउ, जे वडवडे धम्म के ते सव।
घाले बंदि चेयणुराउ छुडाइयउ, स्वामी आदि जिणंदु ॥१३७॥
छुट्टि चेयणु हुयउ मणु महजि,
सह खुल्लिय धम्मदर, समाधि आगम जाणियउ।
रवि कोट अनंत गुण, प्रगट जोति केवलि दिपायउ।
सुरपति नरपति, नागपति मिलिय सैन सब आइ।
अन्या फेरन देसमहि दियउ विवेकु पठाइ ॥१३८॥
स्वामि पठायउ राउ विवेकु
सो देसहि संचरिउ, उसभ सेणिकहु वेगि बुलावहु।
सो थप्पिउ गणहपत्ति, सुत्तु अत्थु तिसु कहु सुणायउ।
इकु धम्मु दुहू बिधि कह्यो, सागारी अणगारु दे।
संखेपिहिं इव कहियउ, भवियहु सणहु बिचारु ॥१३९॥

कर्म का विवेचन—

मिलि चउबिहु संघहु आइ,
बहू देबी देवतह, तिय जांचमि हुइय इक्कट्ठिय।
करि बारह परिखधा, ठामि ठामि मंडिवि वइट्ठिय।
वाणीय निम्मल अमियमै, सुणि उपजै सुद्द झाणु।
भवियणु मनु गहि गहिउ स्वामी करइ बखाणु ॥१४०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थिति पथासिय लोउ अलोउ,
पुणु भासिय अथि जो, नत्थि हुंति ते नत्थि भासिय ।
पुण्णि कारणि बहु बिधि कहिउ, जो जो जिसीय करेइ ।
सो सो तिवहि मेलि दल, सा सा गति भोगेइ ।।१४१।।

महारंभ पांरभ करि परिग्गहु मिलवहि ।
पंच इंदिय वसि करहि मद मासि चितु लावहि ।
इसे सुख के फल पाप न पुन्न विचारहि ।
सो नरु नर गेहि जाइ मणुव जम्मतरु हारइ ।।१४२।।

वहु माया केवलहि कपटु करि पर मनु रंजइ ।
अति कूडिहि अवगूढ़ करिवि छल परजीवह वंचइ ।
मुहि मीछा मनि मलिन पंच महि भला कहावइ ।
इन कम्महिं नरु जाणि जूनि तियजचहं पावइ ।।१४३।।

भद्द प्रवृत्ति जे होंहि ध्यान आरति न चहुँटहिं ।
अनुकंपा चिति करहिं विनउं रति मुखा भाषइ ।
पंचदह दहइ सरल प्रणामि, मनि न आणहि मछर गति ।
कहहि खरवन्नि पावहि सुगति राग संजम दहु पालहि ।।१४४।।

सावय धम्म जे लीण दिस समूह निहालइ ।
विण रुचि जे निजरहि वालयण तवु साधहि ।
इनु भाइ जिणराइ कह्यउ देवह एति वाधहि ।।१४५।।

रड छंद

मणहु सवै चित्त धरि भाउ,
निज समकितु सद्दहहु, देउ इक अरहंत सेवहु ।
आरंभ पारंभ बिनु, सुगुरु जाणि निग्रन्थ सेवहु ।
भासिउ धम्मु जु केवलिय, सो निश्चइ जाणेउ ।
तिन्ह बरत संजम नेमि तिन्ह, जिन्ह पहिला थिरु एहु ।।१४६।।

थूल पाण मम भखहू थूल कूडउ मम भासहु ।
थूलु अकत्तु मलेहु देखि परतिय वितु तासहु ।
परिगहु दिउह पमाणु, भोगउपभोग संखेवहु ।
अनर्थदंडिबिमाणु, नमउहू सामाइकु सेवहु ।।१४७।।
ख प्रति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थूल पाण मम वहहु, थूल कूडवो मम भासहु ।
थूल अदत्तमलेहु, देखि परतिय तन तासहु ।
परिगह दिगह पमाणु. भोग उपभोग संखवेहु ।
अनथदंड प्रमाण, नित्य सामाइकु सेवहु ।
पसंरतु सुमनु दसमहि दमहु, पोसहु एकादसि धरहु ।
आहार सुद्ध चित्त निम्मलइ, असंविभाग साधहु करहु ।।१४७।।

मडिल्ल

पहिली प्रतिमा दंसण धारहु, वीजी व्रत निम्मल उच्चारहु ।
तीजी तिहुं कालहि सामाइक, चौथी पोसहु सिव सुख दायक ।।१४८।।
पंचमी सकल सचित्त विवज्जइ, राईभोयणु छट्ठीयन किज्जइ ।
सप्तमी वंभ वरत दिढु पालहु, अट्ठमी आपणु आरंभु टालहु ।।१४९।।
नवमी परगहु परइ मिलीजइ, सावघ वचनु दसमी दीजइ ।
एकादसमी पडिमा कहि परि, रिषि जाउ ले भिक्षा पर घर फिरि ।।१५०।।

दोहा

इव जे पालहि भावस्युं इहु उत्तिम जिण धम्मु ।
जग महिं हूवउ तिन्ह तणउं, नर सकयत्थउ जम्मु ।।१५१।।

रड

जंपि सक्कइ करहु तउ तिसउ
वलु मंडिवि देहस्यउ, अहव किंपि जे नर सक्कहु ।
ता सद्दह ध्यानु निजु, हीयइ धरत खिणु इक न थक्कहु ।
अंते करहु सलेखणा, सव्वे जीव खमाइ ।
पालहु सावय सुख लहहु आण जिणेसुर राइ ।।१५२।।
सुणहु सावहु धम्मु हित करणु,
सो पालहु अलख मणि, सुग्गइ होइ दुग्गइ निवारइ ।
वुडंत संसार महिं, होइ तरंड खिण महि तारइ ।
वंधियइ कम्म जि सुह असुह, जीय अनंतइ कालि ।
ते तप वलि सव निद्दलहुं, जिव तरु कुंद कुदालि ।।१५३।।

षट् पद

छोडि इक्कु आरंभु राग दोषह विहु तजहु ।
तीनि सल्ल परिहरउ, चारि कषाय विवज्जह ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंच प्रमाद निवारि, छोडि पीडणु छक्काइहि ।
पंच सत्ति भय ठाणु, अट्ठ मद पडि सभा इंहि ।
अवंभुन नव विधि आचहु, मिथ्या दस विधि परहरहु ।
रिषि सुणहु एव सरवन्नि कहिउं, इकु अप्पणु पउ उवरहु ॥१५४॥

इकु वसि करि आतमउ, विनि थावर तेस पालहु ।
आरहुडु तैर घण दिट्ठि, ते समिय निहालहु ।
पंचइ चार चरहु दव्व छह विद्धि न लिज्जहु ।
सुत्त सत्त नय जाणि, मातु अडसमें गहिज्जहु ।
नव वंभ वडि दिढु राखीयइ, दस लक्षण धम्महम्महु ।
जिण भास इव मुनिवर सुणहु, गति न चारि इणि परिभमहु ॥१५५॥

सुमइ पंच तिय गुत्त पंचह वैयारित परि ।
संजमु सत्त दह भेय, भेय बारह तपु आचरि ।
पडिमा हुइ दस सहहु, सहहु वाइस परीसहु ।
भावण भाइ पचीस, पापु सुत्त तजि नव वीसहं ।
तेतीस असाइण वल्लियहिं, जिण चौवीसइ थुति करहु ।
अट्ठाईस पगय भडु मोहु जिणु, इय सुसाय सिवपुरि सहहु ॥१५६॥

दिन्नु देसण एह जिणराइ जह गणहरु संघ जाहु ।
भव्व जिय संवेउ आयउ किघ तित्थु चौबिहहि ।
तित्थंकरु तव नाउं पापउ, नामु गोतु फुणि वेधही ।
आउ सेसजिहुंति, तेखिउ करि सिवपुरि गयउ ।
सुख भोगवइ अनंत ॥१५७॥

षट्पदु

जह न जरा न मरणु जत्थ पुणि व्याधि न वेयणु ।
जह न देहन न नेह जोति मइ तह ठइ चेयणु ।
जह ठइ सुक्ख अनंत न्यान दंसण अवलोवहि ।
कालु विणासइ सयलु सिद्ध पुणि कालहि खोवहि ।
जिसु बणु न गंधु न रसु फरसु, सबदु न जिस किसही लह्यो ।
बूचराजु कहै श्री रिसह जिणु सुथिरु होइ तह ठइ रह्यो ॥१५८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राइ विक्कम तणउं संबतु नवासिय पणरहसै ।
सरद[1] रुत्ति आसवज वखाणिउं तिथि पडिवा सुकलु पखु ।
सनि-सुवारु करु नखित्तु जाणिउं तितु दिन बल्हु पसंट्ठयउ ।
मयणु जुद्धु सुबिसेसु, करत पढत निसुणत नरहु ।
जयउ स्वामि रिसहेसु ।।१५९।।

सुभं भवतु ।। लेखक—पाठकयो ।। लिखांपितं बाई पारा स्वयं पठनार्थं कर्म्मं क्षयनिमित्तं । लिखंत देवपालु माली अलावरे कौ ।।[2]

□□□

१. सबद (क प्रति)
२. (ख प्रति)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२

संतोषजयतिलकु

राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों में 'संतोषजयतिलकु' की एक मात्र पाण्डुलिपि उपलब्ध हो सकी है। पाण्डुलिपि श्री दि० जैन मन्दिर नागदी, बून्दी के गुटके में कविवर बूचराज के अन्य पाठों के साथ संग्रहीत है जो पत्र संख्या १७ से ३० तक उपलब्ध है। तिलकु में १२३ पद्य हैं। उसके लिपिकर्त्ता पांडे देवदासु थे जिनका उल्लेख 'चेतन पुद्गल धमाल' के अन्त में दिया हुआ है। पाण्डुलिपि शुद्ध, स्वच्छ एवं सुन्दर है।

साटिक

मंगलाचरण—

जा अज्ञान अधार फेडि करणं, संन्यानदी वंद्यवें।
जा दुंखं वहु कग्ग एण हरणं, दाइकसुग्गे सुहं।
जा देवं मणुणा तियंच रमणी, भक्तिखं तारणी।
सा जै जै जिणवीर वयण सरियं वाणी अते निम्मलं ।।१।।

रड

विमल उज्जल सुर सुरसणेहि,
सु भवियण गह गहहि, मनसु सरिजणु कवल खिल्लहि।
कल केवल पयडियहि, पाप पटल मिथ्यात पिल्लहि।
कोटि दिवाकर तेउ तपि निधि गुण रतन करंडु।
सो व्रधमानु प्रसंनु नितु तारण तरणु तरंडु ।।२।।

तरण तारणु हरणु दुग्गयह,
करुणाकरु जीय सहि, भविय चित्त वहु विधि उल्लासणु।
अठ कम्मह खिउ करणु सुद्द धम्मु दह दिसि पयासणु।
पावापुरि श्री वीर जिणु, जव सुपहुत्तउ आइ।
तव देविहि मिलि संठयउ समोसरण वहु भाइ ।।३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन्द्र का वृद्ध के वेष में गौतम गणधर के पास जाना—

जव सुदेखइ इंदु धरि ध्यानु,
नहु वाणी होइ जिण, तव सुक्र पट्टु मन महि उपायउ ।
हुइ वंभणु डोकरउ मच्छलोइ सुरपति आयउ ।
गोतमु नोतमु जह वसै अवरु सरोतमु वीरु ।
तत्थ पहुतउ आइ करि मघवै गुणिहि गहीरु ।।४।।
थिवरु बोलइ सुणहु हो विप्प,
तुम्ह दीसइ विमलमति, इकु सन्देहु हम मनहि थक्कइ ।
नहु तै साके मिलइ जासुहुं तयह गांठि चुक्कइ ।
वीरुहुं ता मुज्झ गुरु मोनि रह्यालो सोइ ।
हुउ सलोकु लीए फिरउ अत्थु न कहइ कोइ ।।५।।

गाथा

हो कहहु थिवर वंभण, को अछै तुम्ह चित्ति संदेहो ।
खिण माहि सयल फेडउ, हुउ अविरुल्लु बुद्धि पंडित्तु ।।६।।

षट्पदु

तीन काल षटु दव्वि नवसुपद जीय षटुक्कहि ।
रस ल्हेस्या पंचास्तिकाइ व्रत समिति सिगक्कहि ।।
ज्ञान अवरि चारित्त भेदु यहु मूलु सु मुत्तिहि ।
तिहुवण-महवै कहिउ वचनु यहु अरिहि न रुत्तिहि ।।
यहु मूलु भेदु निजु जाणियहु सुद्ध भाइ जे के गहहि ।
समक्कत्तदिट्ठि मतिमान ते सिव पद सुख वंछित लहहि ।।७।।

गाथा

एय वयण सवणि संभलि, चमकिउ चित मज्झि पुरइ नहु अत्थो ।
उट्ठियउ झत्ति गोइमु चल्लिउ, पुणि तत्थ जथ जिणणाहु ।।८।।

रड

तव सु गोइमु चल्लिउ गजंतु,
जणु सिंधुरु मत्तमय तरक छंद व्याकरण अत्थह ।
षटु अंगह वेयधुनि, जोतिक्कलंकार सत्थह ।।
तुलइ सु विद्या अतुल वलु चडिउ तेजि अति वंभु ।
मानु गल्या तिसु मन तणा देखत मानथंभु ।।९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा

देखंत मान थंभो, गलियउ तिसु मानु मनह मझंम्मे ।
हूवउ सरल पणामो पुछ गोइमु चिति संदेहो ।।१०।।

दोहा

गौतम द्वारा प्रश्न—

गोइमु पुछइ जोडिकर स्वामी कहहु विचारि ।
लोभि वियापे जीय सहि, तरिहि केउ संसारि ।।११।।

रड

भगवान महावीर का उत्तर—

लोभ लग्गउ पाणवघु करइ,
अलि जंपइ लोभिरतु, ले अदत्तु जव लोभि आवइ ।
यहु लोमु वंभह हरइ, लोभि पसरि परगहु वधावइ ।।
पंचइ वरतह खिउ करइ, देह सदा अनचारु ।
सुणि गोइम इसु लोभ का कहउ प्रयटु विथारु ।।१२।।

मूलह दुक्ख तणउ सनेहु,
सतु विसनह मूलु व कम्मह मूल आसउ भणिज्जइ ।
जिव इंदिय मूलु मनु, नरय मूलु हिंस्या कहिज्जइ ।
जगु विस्वासे कपट मति परजिय वंछइ दोहु ।
सुणि गोइम परमारथु यहु, पापह मूलु सुलोहु ।।१३।।

गाथा

भमयउ अनादि काले, चहुंगति मझम्मि जीवु वहु जोनी ।
वसि करि न तेनि सक्कियउ, यह दारणु लोभ प्रचडु ।।१४।।

दोहडा

दारणु लोभ प्रचंडु यहु, फिरि फिरि वहु दुख दीय ।
व्यापि रह्या वलि अप्पइ, लख चउरासी जीय ।।१५।।

पद्धडी छंद

यहु व्यापि रह्या सहि जीय जंत, करि विकट बुद्धि परमय हडंत ।
करि छलु पयसै धूरत्त जेंव, परपंचु करिवि जगु मुसइ एव ।।१६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संकुडइ मुडइ वढलु कराइ, वगजेंउ रहइ लिव घ्यान लाइ।
ठग जेंव ठगौ लिय सीसि पाइ, परचित्त विस्वासै विविह भाइ ।।१७।।

मंजार जेउ आसण वहुत्त, सो करइ जु करणउ नाहि जुत्त ।
जे वे सजेंव करि विविह ताल, मति यावइ सुख दे वृद्धवाल ।।१८।।

लोभ का साम्राज्य—

आपरणौ न औसरि जाइ चुविक, तम जेंउं रहइ तलि दीव लुक्कि ।
जव देखइ डिगतह जोति तासु, तव पसरि करइ अप्पणु प्रगासु ।।१९।।

जो करइ कुमति तव अण विचार, जिसु सागर जिउं लहरी अपार ।
इकि चडहि इक्कि उत्तरिवि जाहि, वहु घाट धडइ नित हीयै माहि ।।२०।।

परपचु करेइ जहरै जगत्तु, पर अप्पु न देखइ सत्तु मित्तु ।
खिण ही अयासि खिण ही पयालि, खिण ही म्रित मंडलि रंग तालि ।।२१।।

जिव तेल बुंद जल माहि पडाइ, सा पसरि रहे भाजनह छाइ ।
तिव लोभु करइ राई सचारु, प्रगटावै जगि में रह विथारु ।।२२।।

जो अघट घाट दुघट फिराइ, जो लगड जेव लंगत धाइ ।
इकि सत्रणि लोभि लग्गिय कुरंग, देहि जीउ आइ पारधि निसंग ।।२३।।

पत्तंग नयण लोभिहि भुलाहि, कंचण रसि दीपग महि पडाहि ।
इक घाणि लोभि मधुकर भमंति, तनु केवइं कंटइ वेधियंति ।।२४।।

जिह लोभि मछ जल महि फिराहि, ते लग्गि पणव अप्पणु गमहि ।
रसि काम लोभि गयवर भमंति, मद अंधसि वध वंधन सहंति ।।२५।।

इक इक्कइ इंदिय तणे सुक्ख, तिन लोभि दिखाए विविह दुक्ख ।
पंच इदिय लोभिहि तिन रखुत्त, करि जनम मरण ते नर विगुत्त ।।२६।।

जगमसि तपी जोगी प्रचंड, ते लोभी भमाए भमहि खंड ।
इंद्राधिदेव वहु लोभ मत्ति, ते वंछहि मन महि मणुवगत्ति ।।२७।।

चक्कवै महिय हुइ इक्क छत्ति, सुर पदइ वंछहि सदा चित्ति ।
राइ राणो रावत मंडलीय, इनि लोभि वसी के के न कीय ।।२८।।

वण मज्झि मुनीसर जे वसहि, सिव रयणी लोभु तिन हियइ माहि ।
इकि लोभि लग्गि पर भूमि जाहि, पर करहि सेव जीउ जीउ भणाहि ।।२९।।

सकुलीणो निकुलीणह दुवारि, लेहि लोभ डिगाए करु पसारि ।
वसि लोभि न सुणही धम्मु कानि, निसि दिवसि फिरहि आरत्त घ्यानि ।।३०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ए कीट पडे लोभिहि भमाहि, संचहि सु अन्नु ले धरणि माहि ।
ले वनरसु हुंढै लोभि रत्तु, मखिकासु मधु संचइ वहुत्त ।।३१।।
ते कियन पडिय लोभह मझारि, धनु संचहि ले धरणी भडारि ।
जे दानि धम्मि नहु देहि खाहि, देखंत न उठि हाथ झाडि जाहि ।।३२।।

गाथा

जहि हत्थ झाडिकि वणं, घनु संचहि सुलहि करिवि भंडारे ।
तरहि कैंव संसारे, मनु बुद्धि ऐ रसी जांह ।।३३।।

रड

वसइ जिन्ह मनि इसिय नित बुद्धि,
धनु विढवहि डहकि जगु, सुगुर वचन चितिहि न भावइ ।
मे मे मे करइ सुणत धम्मु सिरि सूलु आवइ ।।
अप्पणु चित्तु न रंजही जणु रंजावहि लोइ ।
लोभि वियापे जेइ नर तिन्ह मति अैसी होइ ।।३४।।

गाथा

तिन्ह होइ इसिय मत्ते, चित्ते अय मलिन मुहुर मुहि बाणी ।
विदहि पुन्न न पावो, वसकियो लोभि ते पुरिष ।।३५।।

मडिल्ल

इसउ लोमु काया गढ अंतरि, रयणि दिवस संतवइ निरंतरि ।
करइ ढीठु अप्पणु वलु मंडइ, लज्या न्यानु सीलु कुल खंडइ ।।३६।।

रड

कोहु माया मानु परचंड,
तिन्ह मज्झिहि राउ यहु इसु सहाइ तिन्निउ उपज्जहि ।
यहु तिव तिव विप्फुरइ, उइ तेय बलु अधिकु सज्जहि ।।
यहु चहु महि कारणु करणु, अव घट घाट फिरंतु ।
एक लोभ विणु वसि किए, चौगय जीउ भमंतु ।।३७।।

जासु तीवइ प्रीति अप्रीति,
ते जग माहि जाणि यह, जाणिउ रागु तिनि प्रीति नारि ।
अप्रीति हु दोष हुव, दहू कलाप परगट पसारि ।।
अज्ञा फेरी आपणी, घटि घटि रहे समाइ ।
इन्ह दहु वसि करि ना सकै, ता जीउ नरकि हि जाइ ।।३८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहा

सप्प उरहु जैंसे गरल, उपने विष संजुत्त ।
तैंसे जाणहु लोभके, राग दोष दुइ पुत्त ।।३९।।

पद्धडो छंद

दुइ राग दोष तिसु लोभ पुत्त ।
जाणहिं प्रगट संसारि धुत्त ।।
जह मित्त तणु तह राग रंगु ।
जह सत्त तहा दोषहु प्रसंगु ।।४०।।
जह रागु तहा सरलउ सहाउ ।
जह दोषु तहां किछु वक्र भाउ ।।
जह रागु तह मनहु प्रवाणि ।
जह दोषु तहा अपमानु जाणि ।।४१।।
जह रागु तहा तह गुणहि थुत्ति ।
जह दोषु तहा तह छिद्र चित्ति ।।
जह रागु तहा तह पतिपत्तिट्ठ ।
जह दोषु तहा तह काल दिट्ठु ।।४२।।
ए दोनउ रहिय वियापि लोइ ।
इन्ह वाझुन दीसइ महिय कोइ ।।
नित हियइ सिंसलहिं राग दोष ।
वट बाडे दारण मग्गहु मोख ।।४३।।

रड

पुत्त ग्रैसिय लोभ धरि दोइ ।
वलु मंडिउ अप्पणउ, नाद कालि जिन्ह दुक्ख दीयउ ।
इंद जालु दिखाइ करि, वसी भूत्त सहु लोगु कीयउ ।।
जोगी जंगम जतिय मुनि सभि रक्खे लिवलाइ ।
अटल न टाले जे टलहिं फिरि फिरि लग्गहि धाइ ।।४४।।

लोभ का प्रभाव—

लोभु राजउ रहिउ जगु व्यापि ।
चउंरासी लखमहि जथ जोउं पुणि तत्थ सोइय ।
जे देखउ सोचि करि तासु वाझु नहु अत्थि कोइय ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विकट बुद्धि जिनि सहि मुसिय घाले कम्मह फंध ।
लोभ लहरि जिन्ह कहु चडिय, दीसहि ते नर अंध ॥४५॥

दोहा

मणुव तिजंचह नर सुरह, हीडावै गति चारि ।
वीरु भणइ गोइम निसुणि, लोभु बुरा संसारि ॥४६॥

रड

गौतम स्वामी का प्रश्न—

कहिउ स्वामी लोभु बलिवंडु ॥
तव पुछिउ गोइमिहि इसु, समत्त गय जिउ गुजारहि ।
इसु तनिइ तउ वलु, को समथु कहुइ सु विदारइ ॥
कवण बुद्धि मनि सोचियइ कीजइ कवण उपाउ ।
किसु पौरिषि यहु जीतियइ सरवनि कहहु सभाइ ॥४७॥

भगवान महावीर का उत्तर—

सुणहु गोइम कहइ जिणणाहु ।
यह सासणु विम्मलइ, सुणत धम्मु भव वंध तुट्टहि ।
अति सूखिम भेद सुणि, मनि संदेह खिण माहि मिट्टहि ॥
काल अनंतिहि ज्ञान यहि, कहियउ आदि अनादि ।
लोभु दुसहु इव ज्जित्तयइ, संतोषह परसादि ॥४८॥

कहहु उपजाइ कह संतोषु ।
कह वासइ थानि उहु, किस सहाइ वलु इसउ मंडइ ।
क्या पौरिषु सैनु तिसु, कासु बुद्धि लोभह विहंडइ ॥
जोरु सखाई भवियहुइ पयडावै यहु मोखु ।
गोइम पुछइ जिण कहहु किसउ सुभटु संतोषु ॥४९॥

संतोष के गुण—

सहजि उप्पजइ चिति संतोषु ॥
सो निमसइ सत्तपुरि, जिण सहाय वलु करइ इत्तउ ।
गुण पौरिषु सैनु धम्मु, ज्ञान बुद्धि लोभह जित्तइ ॥
होति सखाई भवियहुइ टालइ दुरगति दोषु ।
सुणि गोइम सरवनि कहउ, इसउ सूरु संतोषु ॥५०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रासा छंद

इसउ सूरु संतोषु जिनिहि घट महि कियउ ।
सकयत्थउ तिन पुरिसह, संसारिहि जियउ ।।
संतोषिहि जे तिपते ते चिरु नंदियहि ।
देवह जिउ ते माणुस महियलि वंदियहि ।।५१।।

जगमहि तिन्ह की लीह जि संतोषिहि रंम्मिय ।
पाप पटल अंधारसि अंतर गति दंम्मिय ।।
राग दोष मन मज्झि न खिणु इकु आणियइ ।
सत्तु चित्तु चित्तंतरि समकरि जाणियइ ।।५२।।

जिन्ह संतोषु सखाई तिन्ह नित चडइ कला ।
नाद कालि सतोष करइ जीयह कुसला ।।
दिनकरु यहु संतोषु विगासइ हृिद कमला ।
सुरतरु यहु संतोषु कि वंछित देइ फला ।।५३।।

चितामणि संतोषु कि चित चितत्तु फुरइ ।
कामधेनु संतोषु कि सब कज्जह सरइ ।।
पारसु यहु संतोषु कि परसिहि दुक्खु मिटइ ।
यहु कुठारु संतोषु कि पापह जड कटइ ।।५४।।

रयणायरु संतोषु कि रतनह रासि निधि ।
जिसु पसाइ संडहि मनोरथ सकल विधि ।।
जे संतोषि समाणे तिन्ह भउ सब्भु गयउ ।
ध्रूमरेह जिउ तिन्ह मनु नितु निश्चल भयउ ।।५५।।

जिन्हहि राउ संतोषु सुतुट्ठउ भाउ धरि ।
पर रवणी पर दव्वि न छीपहि तेइ हरि ।।
कूडु कपटु परपंचु सु चित्ति न लेखिहहि ।
तिणु कंचणु मणि लुद्धसि समकरि देखिहहि ।।५६।।

पियउ अमिय संतोषु तिन्हहि नित महा सुखु ।
लहिउ अमरपद ठाणु गया परभमण दुखु ।।
राइहंस जिउ नीर खीर गुण उद्धरइ ।
धम्म अधम्म परिख तेव हीयै करइ ।।५७।।

आवै सुहमति ध्यानु सुबुद्धि हीयै भज्जइ ।
कलहि कलेसु कुध्यानु कुवुधि हियै तजइ ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेइ न किसही दोसु कि गुण सव्वह गहइ ॥
पडइ न आरति जीउ सदा चेतनु रहइ ॥५८॥
जाहन वक्क परणाम होहि तिसु सरल गति ॥
दृप्पजिउ निम्मलउ न, लग्गहि मलए चित्ति ॥
सीस जिव जिन्ह पर कित्ति सदा सीयलु रहइ ।
धवल जिव धरि कंधु गरुव भारह सहइ ॥५६॥
सूरधीर वरवीर जिन्हहि संतोषु बलु ॥
पुडयणि पति सरीरि न लिपइ दोष जलु ॥
इसउ अहै संतोषु गुणिहि वंन्नियै जिवा ।
सो लोभहं खिउ करइ कहिउ सरवन्नि इवा ॥६०॥

रड

कहिउ सरवन्नि इसउ संतोषु ।
सो किज्जइ चित्ति दिढु जिसु पसाइ सभि सुख उपज्जहि ॥
नहु आरति जीउ पडइ, रोर घोर दुख लख भज्जहि ॥
जिसु ते कल वडिम चडइ, होइ सकल जगि प्रीय ॥
जिन्ह घटि यहु अवट्ठी पिय पुन्न प्रिकिति ते जीय ॥६१॥

मडिल्ल

पुन्न प्रिकिति जिय सवणिहि सुणियहि ।
जै जै जै लोवहि महि भणियहि ॥
गोइम सिउ परवीणु पयंपिउ ।
इसउ संतोषु भुवप्पति जंपिउ ॥६२॥

चंदाइणु छंदु

जंपियै एहु संतोषु भूवपति जासु ।
नारीय समाधि अत्थइ थिति ॥
जे संसा सुंदरी चित्ति हे आवए ।
जीउ तत्तखिणे वंछियं पावए ॥६३॥

संतोष का परिवार—

संवरो पुत्तु सो पयडु जाणिज्जए ।
जासु ओलंबि संसारु तारिज्जए ॥
छेदि सो आसरै दूरि नै वारए ।
मुक्ति मझंम्मिले हेल संचारए ॥६४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खंतियं तासु को लंगणा वन्नियं ।
दुज्जणं तेउ भंजेइ पासंनियं ।।
कोह अगोगाह दभंति ते नरा ।
ताहं संतोसए सोम सीयंकरा ।।६५।।
एहु कोंटवु संतोष राजा तणो ।
जासु पसाइ वज्झंति दंती मणो ।
तासु नैरिहि को दुद्धना आवए ।
सो भडो लोभह खो जुग बावए ।।६६।।

दोहा

खो जुग वावइ लोभ, कउए गुणहहि जिसु पाहि ।
सो संतोषु मनि संगहहु, कहियहु तिहुं वणणाहि ।।६७:।

गाथा

कहियहु तिहु वणणाहो, जाणहु संतोषु एहु परणामो ।
गोइम चिति दिढु करु, जिउ जित्तहि लोभु यहु दुसहु ।।६८।।
सुणि वीरवयण गोइमि, आणिउ संतोषु सूरु घट मज्झे ।
पज्जलिउ लोहु तंखि खिणि, मेले चउरंगु सयनु अप्पणु ।।६९।।

रड

लोभ द्वारा आक्रमण—

चित्ति चमकिउ हियइ थरहरिउ ।
रोसाइणु तमकियउ, लेइ लहरि विषु मनिहि घोलइं ।
रोमावलि उद्धसिय कालरू इहुइ मुवह तोलइ ।।
दावानल ज़िउ पज्जलिउ नयण नि लाडिय चाडि ।
आजु संतोषह खिउ करउ जउ मूलहु उप्पाडि ।।७०।।

दोहा

लोभहि कीयउ सोचणउ हूवउ आरति घ्यानु ।
आइ मिल्या सिरु नाइ करि झूठु सवलु परधानु ।।७१।।

षट्पदु

लोभ की सेना—

आयउ झूठु पधानु मंतु तत्ति खिणि कीयउ ।
मनु कोहू अरु दोहु मोहु इक गुढउ थीयउ ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माया कलहि कलेसु थापु संतापु छदम दुखु ।
कम्म मिथ्या आसरउ आइ अंद्धम्मि कियउ पखु ।।
कुविसनु कुसीलु कुमतु जुडिउ रागि दोषि आइरु लहिउ ।
अप्पणउ सयनु वलु देखि करि लोहुराउ तव गहगहिउ ।।७२।।

मडिल्ल

गह गहियउ तव लोहु चितंतरि,
वज्जिय कपट निसाण गहिंय सरि ।
विषय तुरंगिहिं दियउ पलाणउ,
संतोषह दिसि कियउ पयाणउ ।।७३।।

आवत सुणिउ संतोष ततक्षिणि,
मनि आनंदु कीयउ सुविचक्षिणि ।
तह ठइ सयनह पति सतु आपउ,
तिंनि दलु अप्पणु वेंगि बुलायउ ।।७४।।

गाथा

वुल्लायउ दलु अप्पणु, हरषिउ संतोषु सुरु वहु भाए ।
जिसु ढार सहस अंग, सो मिलियउ सीलु भडु प्राइ ।।७५।।

गीतिका छन्दु

संतोष की सेना—

आईयौ सीलु सुद्धम्मु समकतु न्यानु चारितु सँवरो ।
वैरागु तपु करुणा महाव्रत खिमा चिति संजमु थिरु ।।
अज्जउ सुमद्दउ मुत्ति उपसमु द्धम्मु सो आकिंचणो ।
इव मेलि दलु संतोष राजा लोभ सिउ मंडइ रणो ।।७६।।

सासणिहि जय जयकारु हूवउ भग्गि मिथ्याति दडे ।
नीसाण सुत वज्जिय महाधुनि मनिहि कइर लडे खडे ।।
केसरिय जीव गज्जंत वलु करि चित्ति जिसु सासण गुणो ।
इव मेलि दलु संतोषु राजा लोभ सिउ मंडइ रणो ।।७७।।

गज ढल्ल जोग अचल गुडियं तत्त हयहीसारहे ।
वड फरसि पंचिउ सुमति जुट्टहिं विनि घ्यान पचारहे ।।
अति सबल सर आगम्म छुट्टहि असणि जणु पावस घणो ।
इव मेलि दलु संतोषु राजा लोभ सिउ मंडइ रणो ।।७८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सा णाहु सीलु सुपहिरि अंगिहि कुंतु रतनत्रय कियं ।
झुलहलइ हत्थि विवेक असिवरु, छत्तु सिरि समकतु हियं ।
इक पदम अरु तह सुक्ल लेस्या चवर ढाहि निसिदिणो ।
इव मेलि दलु संतोपु राजा लोभ सिउ मंडइ रणो ।।७६।।

षट्पदु

मंडिउ रणु तिनि सुभटि सैनु समु अप्पणु सज्जिउ ।
भाव खेतु तह रचिउ तुरु सुत आगमु वज्जिउ ।।
पच्चारयौ ध्यातमु पयड अप्पणु दल अंतरि ।
सूर हियै गह गहहि धसहि काइर चित्तंतरि ।।
उतु दिसि सु लोभु छलु तक्क वैवलु पवरिषु णियतणि तुलइ ।
संतोषु गरुव मेरह सरिसु इसुकि पवण भयणिए खलइ ।।८०।।

गाथा

किं खलिहै भय पवणं, गरुवउ संतोषु मेर सरि अटलं ।
चवरंगु सयनु गज्जिवि, रणि अंगणि सूर वहु जुडियं ।।८१।।

तोटक छंदु

रण अंगणि जुट्टिय सूर नरा, तहि वज्जहि भेरि गहीर सर ।
तह वोलिउ लोभु प्रचंडु भडो, हुणि जाइ संतोष पयालि दडो ।।८२।।
फिटु लोभ न वोलहु गव्व करे, हुण कालु चडया है तुम्ह सिरे ।
तइ मूढ सतायउ सयल जणो, जह जाहिन छोडउ तथ खिणो ।।८३।।

युद्ध स्थल—

जह लोभु तहा थिरु लछिवहो, दरि सेवइ उब्भउ लोउ सहो ।
जिव इट्ठिय चित्ति संतोषु करि, ते दीसहि भिष्य भयंति परे ।।८४।।
जह लोभु तहा कहु कत्थ सुखो, निसि वासुरि जीउ सहंत दुखो ।
सयतोषु जह्रा तह जोतिउसो, पय वंदहि इंद नरिंद तिसो ।।८५।।
सयतोष निवारहु गव्वु चित्ते, हउ व्यापि रह्या जगु मंडि थिते ।
हउ आदि अनादि जुगादि जुगे, सहि जीयसि जीयहि मुह्य लगे ।।८६।।
सुणु लोभ न कीजइ राडि घणी, सव थित्तिउ पाडउ तुम्हं तणी ।
हउ तुज्झ विदारउ न्यानि खगे, सहि जीय पढावउ मुक्ति मगे ।।८७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुउ लोभु अचलु महा सुभटो, जगु मैं सहु जितिउ वंधि पटो ।
सभि सूर निवारउ तेजु मले, महु जित्तइ कौणु समत्थु कले ॥८८॥

तइ अत्थि सतायउ लोगु घणा, इव देखहु पौरिषु मुज्झ तणा ।
करि राडउ खंड विहंड घडी, तर जेवउ पाडउ मूढ जडी ॥८९॥

सुणि इत्तउ कोपिउ लोभु मने, तव झूठु उठायउ वेगि तिने ।
सा आयउ सूरु उठाइ करो, सतिराइहि छेदिउ तासु सिरो ॥९०॥

तव बोडउ लीयउ मानि भडे, उठि चल्लिउ संमुह गज्जि गुडे ।
वलु कीयउ मद्दवि अप्पु घणा, खुर खोजु गवायउ तासु तणा ॥९१॥

इव ढुक्कउ छोहु सुजोडि अणी, मनि संक न मानइ और तणी ।
तव उट्ठि महाव्रत लग्गु वले, खिण मज्झि सु घाल्यौ छोहु दले ॥९२॥
भडु उट्ठिउ मोहु प्रचंडु गजे, वलु पौरिष अप्पणु सैनु सजे ।
तव देखि विवेक चडया अटलं, दह वट्ट किया सुइ भज्जि वलं ॥९३॥

वहु माय महाकरि रूप चली, महु अग्गइ सूरउ कवणु वली ।
ढुक्कि पौरषु अज्जवि चीरि किया, तिसु जोति जयप्पतु वेगि लिया ॥९४॥

जव माय पडी रण मज्झि खले, तव आइय कंक गजंति वले ।
तव उट्ठि खिमा जव धाउ दिया, तिनि वेगिहि प्राणनि नासु किया ॥९५॥

अय ज्ञानु चल्या उठि घोर मते, तिसु सोचन आइया कंपि चिते ।
उहु आवत हाक्या ज्ञानि जवं, गय प्राण पडया धर घूमि तवं ॥९६॥

मिथ्यातु सदा सहि जीय रिपो, रुद रूपि चडया सुइसज्जि अपो ।
समक्कतु डह्या उठि जोडि अणी, धरि धूलि मिल्या दिय चूर घणी ॥९७॥

कम्म अट्ठसि सज्जि चडे विषमं, जणु छायउ अंवरु रेणु भयं ।
तपु भानु प्रगासिउ जाम दिसे, गय पाटि दिगंतरि मज्झि धुसे ॥९८॥

जगु व्यापि रह्या सवु आसरयं, तिनि पौरिषु धोठिइता करयं ।
जब संवरु गज्जिउ घोरि घटं, उहु झाडि पिछोडि किया दवटं ॥९९॥

रसि रागिहि धुत्तउ लोउ सहो, रण अंगणि लग्गउ मंडि गहो ।
वयरागु सुधायउ सज्जि करे, इव जुझि विताडयौ दुट्ठु अरे ॥१००॥

यहु दोषु जु छिद गहंति परं, रण अंगणि ढुक्क उडाहि सिरं ।
उठि ध्यानिय मुक्किय अग्गि घणं, खिण मज्झ जलायउ दोषु तिणं ॥१०१॥

कुमतिहि कुमारगि सयनु नडया, गय जेउ गजंतउ आइ जुडया ।
खिण मत्तु परकय सिंघ परे, तिसु हाकसु णंत पयट्टु धरे ॥१०२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परजीय कुसील जु कट्ठु करै, रण मज्झि भिडंतु न संक धरै।
वभवत्तु समीरणु धाइ लगं, कुरविंद जि वागय पाटि दिगं ॥१०३॥

दुखहुंतजिट्टु गय देण सलो, साइजु दिउ आइ निसंक भलो।
परमा सुखु आयउ पूरि घटं, उहु भाडि पिछोडि कियादवटं ॥१०४॥

वहु जुज्झिय सूर पचारि घणे, उइ दीसहि लुट्टत मज्झि रणे।
किय दिनु रसातलि वीरवरा, किय तज्जि गए वलु मुक्कि धरा ॥१०५॥

राजा संतोष का आक्रमण—

अन दंसण कंद रहुंतु जहा, इकि भज्जि पइट्ठिय जाइ तहा।
यहु पेंतु संतोषह राइ चडया, दलु दिट्ठु उ लोभिहि सैनु पडया ॥१०६॥

रड

लोभि दिट्ठुउ पडिउ दलु जाम,
तव धुणियउ सीसु कर, अंध जेंउ सुज्झिउ न अग्गउ।
जणु घेरिउ लहरि विषु, कच कचाइ उठि धाइ लग्गउ॥
करइ सु अकरणु आकतउ, किंपिन वुज्झइ पट्टु।
जेरु चणउ अति उच्छलइ, तकि भड मंनइ भट्टु ॥१०७॥

गाथा

रोसा इणु थर हरियं, धरियं मन मझि रुद्द तिनि ध्यानो।
मुक्कइ चित्ति न मानो, अज्ञानो लोभु गज्जेइ ॥१०८॥

रंगिक्का छंदु

लोभु उठिउ अपणु गज्जि, मंडिउ वलुनि लाजि।
चडिउ दुसहु साजि रोसिहि भरे, सिरि तणिड कपटु छतु॥
विषय खडगु कितु, छदमु फरियलितु।
संमुह धरे गुण दसमंइ ठाणु लगु॥
जाइ रोक्यौ सूर मगु।
देइ वहुउ पसग्गु जगत अरे।
अैसे चडिउ लोभ विकटु, धूतइ धूरत नटु।
संतवइ प्राणह षटु पौरिषु करि ॥१०९॥

खिणु उठइ अणिय जुडि, षिणिहि चालइ मुडि।
खिणु गयजेव गुडि लागइ उठे, खिणु रहइ गगनु छाइ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खिणिह पयालि जाइ, खिणि मचलोइ भ्राइ ।
चउइ हठे वाकै चरत न जाणै कोइ व्यापैइ सकल लोइ ।
ग्रनेक रूपिहि होइ, जाइ संचरै ।।
ग्रैसे चडिउ लोभ विकटु धूतइ धुरत नटु ।
संतवइ प्राणह षटु पौरिषु करै ।।११०।।

जिनि समि जिय लिवलाइ, घाले ततबुधि छाइ ।
राखे ए वडह काइ, देखत नडे ।
यह दीसइ ज परवथु, देसु सैनु राजु गथु ।
जाण्या करि ग्राप तथु लालचि पडे ।।
जांकी लहरि ग्रनंत परि, धोरह सागर सरि ।
सकइ कवणु तरि ।
हियउध, ग्रैसे चडिउ, लोभ विकटु, धूतउ धूरत नटु ।
संतवैइ प्राणह षटु पौरिषु करि ।।१११।।

जैसी कणिय पावक होइ, तिसहि न जाणइ कोइ ।
पडि तिण संगि होइ, कि कि न करै ।
तिसु तणिय विविहिरंग, कौणु जाणै केते ढंग ।
ग्रागम लंग विलंग खिणि हि फिरै ।
उहु ग्रनतप सारै जाल, कर इक लोल पलाल ।
मूल पेड पत्त डाल, देइ उदरै ।
ग्रैसे चडिउ लोभ विकटु, धूतइ धूरत नटु ।
संतवैइ प्राणह षटु पौरिषु करि ।।११२।।

षट्पदु

लोभ विकटु करि कपटु ग्रमिटु, रोसाइणु चडियउ ।
लपटि दवटि नटि कुघटि झपटि झटि इव जगु नडियउ ।।
धरणि खंडि व्रह्मंडि गगनि पयालिहि धावइ ।
मीन कुरंग पतंग भ्रिग, मातंग सतावइ ।।
जो इंद मुणिंद फणिंद सुरचंद सूर संमुह ग्रडइ ।
उहु लडइ मुडइ खिणु गडवडइ, खिणु सुउट्ठि समुह जुडइ ।।११३।।

मडिल्ल

जव सुलोभि इत्तउ वलु कीयउ,
ग्रधिकु कष्टु तिन्ह जीयह दीयउ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तव जिणउ नमतु लै चिति गज्जिउ,
राउ संतोपु इनह परि सज्जिउ ।।११४।।

रंगिका छंदु

इव साजिउ संतोष राउ, हुवउ धम्म सहाउ,
उठिउ मनिहि भाउ आनंदु भयं ।
गुण उत्तिम मिलिउ माणु, हूवउ जोग पहाणु,
आयउ सुकल झाणु, तिमरु गयं ।।
जोति दिपइ केवल कल, मिटिय पटल मल,
ह्रदय कवल दल खिडियत दे ।
यैसे गोइम विमलमति, जिण वच धारि चिति,
छंदिय लोभह थिति चडिउ पदे ।।११५।।

तनिक पचु संजमु धारि, सतु दह परकारि.
तेरह विधि सहारि, चारितु लियं ।
तपु द्वादस भेदह जाणि, आपणु अंगिहि आणि,
बैठउ गुणह ठाणि, उदोतु कियं ।।
तम कुमतु गइउ घूसि, धौलिउ जगतु जसि,
जैसेउ पुन्निउ ससि, निसि सरदे ।
अैसे गोइम विमल मति, जिणवच धारि चिति,
छेदिय लोभह थिति, चडिउ पदे ।।११६।।

जिन वंधिय सकल दुट्ठ, परम पापनिघट्ठ,
करत जीयह कंठ, रयणि दिणो ।
जगि हो तिय जिन्हहि आण, देतिय नमुति जाण,
नरय तणिय ठाण, भोगत घणे ।।
उइ आवत नरीहि जेइ, खडगु समुह लेइ,
सुपनिन दीसे तेइ अवरु के दे ।
अैसे गोइम विमल मति, जिणवच धारि चिति,
छेदिय लोभहि थिति, चडिउ पदे ।।११७।।

लोभ पर विजय—

देव दुंदही वाजिय घण, सुर मुनि गहगण,
मिलिय भविकजण, हुंवर लियं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंग ग्यारह चौदह पुव्व, विथारे प्रगट सव्व,
मिथ्याती सुणत गव्व, मनि गलियं ।
जिसु वाणिय सकल पिय, चितिहि हरषु किय,
संतोषे उतिम जिय, धरमु वदे ।
अैसे गोइम विमल मति, जिणवच धारि चिति ।
छेदिय लोभह थिति, चडिउ पदे ॥११८॥

षट्पदु

चडिउ सुपदि गोइमु लवधि तप वलि अति गज्जिउ ।
उदउ हुवहु सासणि हि सयनु आगमु मतु सज्जिउ ॥
हिंसारहि हय वरतु सुभटु चारितु वलि जुट्ठिउ ।
हाकि विमल मति वाणि कुमत दल दरडि दवहिउ ॥
वंधिउ प्रचंडु दुद्धरु सुमनु जिनि जगु सगलउ धुत्तियउ ।
जय तिलउ मिलिउ संतोष कहु, लोभहु सह इव जित्तियउ ॥११९॥

गाथा

जव जित्तु दुसहु लोहु, कीयउ तव चित्त मझि आनंदे ।
हुव निकंट रज्जो गह गहियउ राउ संतोषु ॥१२०॥
संतोषुह जय तिलउ जंपिउ, हिसार नयर मंझ मे ।
जे सुणहि भविय इक्क मनि, ते पावहि वंछिय सुक्ख ॥१२१॥
संवति पनरइ इक्याण, भद्दवि सिय पक्खि पंचमी दिवसे ।
सुक्कवारि स्वाति वृषे, जेउ तह जाणि वंभ णामेण ॥१२२॥

रड

पढहि जे के सुद्ध भाएहि,
जे सिक्खहि सुद्ध लिखाव, सुद्ध ध्यानि जे सुणहि मनु धरि ।
ते उतिम नारि नर अमर सुक्ख भोगवहि वहुप्परि ॥
यहु संतोषह जयतिलउ जंपिउ वल्हि सभाइ ।
मंगलु चौविह संघ कहु, करइ वीरु जिणराइ ॥१२३॥

इति संतोष जयतिलकु समाप्ता ॥ध॥

□□□

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३

नेमीस्वर का बारहमासा

राग वडहंसु

सावन मास—

ए रुति सावणे सावणि नेमि जिए गवणो न कीजै वे।
सुणि सारेगा भाष दुसह तनु खिणु खिणु छीजै वे।
छीजंति वाढ़ी विरह व्यापित घुरइ घण मइ मंतिया।
सालूर सरि रड रडहि निसि भरि रयणि विज्जु खिवंतिया।
सुर गोपि यह सुह वसुह मंडित मोर कुहकहि वणि वणि।
बिनवंति राजुल सुणहु नेमि जिण गवउ नां करु सावणे ।।१।।

भाद्रपद मास—

ए भरि भाद्दवडै भादवि मारग जलहरे छाए वे।
कोइ परभूए परमुइं पंथी हरि न जु लाये वे।
नहु जु लाइ को पर भूमि पंथी किसु सनेहा जंप वे।
सरपंच तनि मनमथ वीरूद्धिय कर लजिउ निसि कंपवो।
वग चडिय तर सिरि देख पावस मनि अनन्दु उपाइया।
घरि आउ नेमि जिए चडिउ भाद्दउ मग्ग जलहर छाइया ।।२।।

आसोज मास—

ससि सोहाए सोहै ससिहरु आसूवा मासे वे।
जल निरमल निरमल जलसरि कवल वेगासे वे।
विगसंति सरि सरि कवल कोमल भवर रुणु झुणकार हे।
मयमंतु मनमथु तनि वियापइ किवसु चित्त सहार हे।
देखन्ति सेज अकेलि कामिणि मखहु नहु बोलै हसे।
घरि आउ नेमि जिणंद स्वामी आसूवै सोहै ससि ।।३।।

कार्तिक मास—

इनु कातेगे कातिग आगमु की ताडा पालै वे।
चडि मंडपे मंडपि राजुल मग्गो नेहोलै वे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मग्गो निहालै देवि राजुल नयए दह दिसि धावए।
सर रसहि सारस रयणि भिन्नि दुसहु विरहु जगवए।
किं वरहउ तुव विणु पेम लुद्धिय तरुणि जोवणि वालए।
वाहुडहुं नेमि जिए चडिउ कातिगु कियउ आगमु पालेए ।।४।।

मार्गशीर्ष मास—

ए इतु मंघैरे मंधिरियहु जीउ तरसए मेरा वे।
तुझ कारणे कारणि यहु तनु तप ए घणेरा वे।
तनु तपइ तिन्ह सुरि जनह कारणि जीउ जिसु गुणि लीणवो।
जिसु श्रास श्रधिक उसास मेलउ रहइ चितु उडीणवो।
संभलहि सभितिय के पियारे देखियह उग्गिम रितो।
तरसंति यहु मनु नेमि तुव विणु मंगि मंगिहरिह रितो ।।५।।

पोस मास—

ए इतु पोहे हे पोहे सीउ सतावाए वाली वै।
नव पल्लव पल्लव नववण सौ परजाली वै।
परजालि नववण रच्यौ सकोइय,पडइ हिमु श्राति दारणो।
वर खणि ते मनि किवसु धीरउ जिन्ह न सेज सहारणो।
श्रथ दीह रयणि सतुछ वासुर कियर विरहु दक्खिणे।
नेमिनाथ आउ सभालि को गुण सीउ पोहेहि श्रतिघणो ।।६।।

माघ मास—

ए इतु माघे हि माघिहि नेमि दया करे श्राऊ वे।
तनि मैंगल मैंमल जेंउ घुरैं श्रणैं राऊ वे।
श्रणरउ मइगल जेंव गज्जइ कुलह श्रंक सिरक्खवो।
श्रग्गाह दुसही विरह वेयण तोहि विणु किसु श्रक्खवो।
क्या सवरि श्रवगुणु तइ विसारीं लिखिन भूज पठावहो।
कर दया नेमि जिणंद स्वामी माघि इव घरि श्रावहो ।।७।।

फाल्गुण मास—

ए यहु फागुणो फागुणु निरगुणु माहो पियारे वै।
जिनि तरवरे तरवर झाणि कीए खइ खारेवे।
खइ खारढीखर किए तरवर पवणु महियलि झोलइ।
उरि लाइ कर निसि गणउ तारे निंद नहु श्रावइ खिणो।
घरि आउ नेमि जिणंद स्वामी चडिउ फागुणु निरगुणो ।।८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चैत्र मास—

एइतु चैंतेहे चैतिहि नव मोरी वणराए वे ।
नव कलियहो कलियहि भवर मणक्कियडे आए वे ।
अइ भवर नव कलियहि भणक्के नवइ पल्लव न तरे ।
नव चूव मंजरि पिकय लुद्धिय करहि धुनि पंचम सरे ।
झुल्लियउ मलय सुगंध परमलु दक्खिणिहि पिय सवरिय ।
दरसाइ दरसणु नेमि स्वामी चैत्ति नव नर मौलिया ।।९।।

वशाख मास—

ए यहु आइयडा अव दुसहु सखी वइसाखो वे ।
जइवइ सेवा इसिजाइ सनेहडा आखोवे ।
आखो सनेहा जाइ वाइस अन्नु नीरु न भावए ।
दुइ नयण पावस करहि निसिदिनु चितु भरि भरि आव ए ।
फुट्टउ न जं बल्लभ वियोनिहि हिया दुखि वज्जहि घडया ।
वइसाखु तुव विणु सुणहु सखिए दुसहु अति दारणु चडया ।।१०।।

जेठ मास—

एइतु जेठेंहे जेठिहि लूव अनल झख वावेंवे ।
दिनि दिनकरो दिनकरु दिवसि रयणि ससेतावेंवे ।
ससि तवइ निसि परजलइ दिन रवि नीरु सरि सुकियघणं ।
तडयडइ घर तडफडइ जलचर मिलिय अहि बंदण वणं ।
चच्चउ सिहं डुक पूरहि मजलु अंगु अधिकु दहावए ।
विललंति राजुलि फिरहु नेमि जिण लूव जेठिहि बावए ।।११।।

आषाढ मास—

एइतु षाढेहे षाढिहि नेमि न आईयडा प्यारा वे ।
मनु लागाडा लागा मनुवइ रोग हमारा वे ।
मनु लाइ इव वइरागि रजमति लियउ संजमु तंखिये ।
अष्टौ भवतंर नेहु निरजरि सहइ नव तेरह तणे ।
तिसु तरुणि काला गाउ माहा सिद्धि जिनिवर माइया ।
आषाढ चडिया भणइ बूचा नेमि अजउ न आईया ।।१२।।

।। इति वारहमासा समाप्ता ।।[1]

□ □ □

---

१. गुटका–दि० जैन मन्दिर नागदी बूंदी ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४

चेतन पुद्गल धमाल

प्रस्तुत धमाल की पाण्डुलिपि दि० जैन मन्दिर नागदी, बूंदी के उसी गुटके में है जिसमें बूचराज के अन्य पाठों का संग्रह है। यह धमाल पत्र संख्या २२ से ४४ तक है। इसके लिपिकर्त्ता पांडे देवदासु हैं। लिपि सुन्दर एवं शुद्ध है। धमाल की पाण्डुलिपियां कामां एवं अजमेर के भट्टारकीय भण्डार में भी है लेकिन वे उपलब्ध नहीं हो सकी इसलिए बूंदी वाली प्रति के आधार पर ही यहां पाठ दिया जा रहा है।

रागु दीपगु

मंगलाचरण—

जिनि दीपगु घटि न्यानु करि, रज दीठी दश चारि।
कवि 'बल्ह पति' सुस्वामि के, णवउ चलण सिरु धारि ॥१॥

दीपगु इकु सरवन्नि जगि, जिनि दीपा संसारि।
जासु उदइ सद्बु भागिया, मिथ्या तिमरु अंध्यारु ॥२॥

'जिण सासण' महि दीवडा, वल्ह पया नवकारु।
जासु पसाए तुम्हि तिरहु, सागरु यहु संसारु ॥३॥

भवियहु 'अरहंतु' दीवडा, कै दीपगु सिद्धन्तु।
कै दीपगु 'निरग्रंथ' गुरु, जिस गुणि लहिउ न अंतु ॥४॥

जैन धम्मु जिनि उद्धरया, जुगला धम्मु निवारि।
सो रिसहेसरु पणवियइ, तारै भव संसारि ॥५॥

चेयन गुणवंत जडस्यो, संगु न कीजै।
जड गलइरु पूरइ, तिव तिव दूख सहीजै ॥६॥

जड संगु दुहेला, चिरु भमिया संसारो।
जिनि ममता छोडी, तिन पाया भवपारु ॥७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जित सतरायह तणा, मलिया मयण हतेउ ।
'अजितनाथ' पय पणमियहि आवइ कमह छेउ ।।८।।

चेयन सुणु निरगुण जड, सिउ संगति कीजइ ।
इसु जड परशादिहि, मोखह सुखु विलसीजै ।।९।।

जड सहइ परीसहु काटै करमह भारो ।
जिसु जड न सरवाई, तिसु उरवारु न पारो ।।१०।।

तनु साध्या मोखिहि गया, कीया करमह अंत ।
'संभव स्वामी' वंदियै, जिण सासणि जयवंतु ।।
चेयण गुणवंता जडायो संगु न कीजै ।।११।।

चौगति तरि सिउपुरि गया, तरि सायरु अथाहु ।
सोहउ ध्याऊ हियइ धरि, 'अभिनन्दनु' जिणणाहु ।।
चेयण सुणु निरगुण जड सिउ संगति कीजइ ।।१२।।

चहुसै धुणह पवाणु तनु, मेघरायह घरि चंदु ।
नामु लित पातिग ह्यडहि, वंदहु 'सुमति' जिणंद ।। चेयण गुण० ।।१३।।

चारितु चरि मोखिहि गया, माया मोहु निवारि ।
'पदमपह' जिण पद कवल, नवउ सदा सिरुधारि ।। चेयण सुणु० ।।१४।।

जिसु मुखु दीठे भवणा, तूटै करमह फासु ।
सो बंदहु तारण तरणु, स्वामी देउ 'सुपासु' ।। चेयण गुण० ।।१५।।

जिसु लछंणि ससिहरु, 'अहइ राय' महसेणह तनु ।
चंद्‌प्पहु जिणु आठमा, संघ सयल सुपसन्नु ।। चेयण सुणु० ।।१६।।

चौदह रजु सहु लोउ, जिन दीठा घटि अवलोइ ।
"पुहपि जिणेसरु" पणमियइ, पुनरपि जनमु न होइ ।। चेयण गुण० ।।१७।।

राइ दिढह तनु कुलि कंवलु, मुकति रिउरि हारु ।
"सियल जिणेसरु" ध्याईयै, वंछित सुख दातारु ।। चेयण सुणु० ।।१८।।

अस्सीं धुणह पवाणु तनु, कंचणु बन्नु सरीरु ।
हउ पणउ "श्रीयांस जिणु", स्वामी गुणिहि गहीरु ।। चेयण गुण० ।।१९।।

"वसुसेणह" घरि अवतारचा, छेद्या जिन भव कंदु ।
"वासुपुइ" जिणु वंदियइ, जिसु वंदइ सुर इंदु ।। चेयण सुणु० ।।२०।।

सहिय परीसह मोंखिहि गया, मयण महाभड मोडि ।
"विमल जिणेसरु" 'विमलमति', हउ पणउ कर जोडि ।। चेयण गुण० ।।२१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्राठ कंम्म जिनि निरजरे, चितुवइ रागि धरेइ ।
अन करण "श्री अनंत जिणु", भवियह वंछित देइ ।। चेयण सुणु० ।।२२।।

संवरु करि जो गुण चडचा, मलिया मयणह मानु ।
"धम्मनाथ" धम्मह निलउ, हौ पणवउ धरि ध्यानु ।। चेयण गुण० ।।२३।।

गढि हथिनापुरि अवतरचा, दिपइं अंगु कणकंति ।
सो संघह मंगलु करइ, "संति करण जिणु" संति ।। चेयण सुणु० ।।२४।।

जासु धनुष पय तीस तनु, कुखि श्रीमति अवतारु ।
सो तुम्ह पापहि खिउ करइ, सवरहु "कुंथु" कुवारो ।। चेयण गुण० ।।२५।।

जो राता सिव रणिसिउं, सव्वइ कम्म निखेइ ।
आरति भंजणु "अरह जिणु", अजिय सु पदु हम देइ ।। चेयण सुणु० ।।२६।।

कुंभ नरिंदह राइ तनु, मिथलापुरि अवतारु ।
"मल्लि जिणेसरु" पणवियइ, आवागवणु निवारो ।। चेयण गुण० ।।२७।।

राजगिरिहि गढि अवतरचा, सोहइ कज्जल वन्नु ।
"मुणि सुव्वउ जिणु" वीसमा, संघ सयल सुपसंनो ।। चेयण सुणु० ।।२८।।

जिसुका नाउ जपंति यहं, छीजइ कम्म क्लेसु ।
विजयराइ घरि अवतरचा, सवरहु "नमि सु जिणेसो" ।। चेयण गुण० ।।२९।।

चल्या सु नव भव नेहु, तजि पसु वचन सु विचारि ।
वंदहु स्वामी "नेमि जिणु", जो सीझइ गिरनारि ।। चेयण सुणु० ।।३०।।

आव भोगि जिन सउ वरिस, कीया मुकति सिउ साथु ।
सकल मूरति हउ वंदिसिउ, स्वामी "पारसनाथ" ।। चेयण गुण० ।।३१।।

करि करुणा सुणु वीनती, तिभुवण तारण देव ।
"वीर जिणेसर" देहि मुझु, जनमि जनमि पद सेव ।। चेयण सुणु० ।।३२।।

अरहंत सिद्धह चारजह. अरु अवझ्या पणमेहि ।
सव्वे साहु जे नमहि, ते संसार तरेहि ।। चेयण गुण० ।।३३।।

पंच प्रमिष्ठी 'वल्ह कवि' ए पणमी धरि भाउ ।
चेतन पुद्गल दहूक, सादु विवादु सुणावो ।। चेयण सुणु० ।।३४।।

यह जड खिणिहिं विधंसिणी, ता सिउ संगु निवारु ।
चेतन सेती पिरति करु, जिउ पावहि भव पारो ।। चेयण गुण० ।।३५।।

वारु वारु तुम्ह सिउ कहउ, किता कु पूछहि ऊड ।
जिसु जड ते तूं गुणि चढ्या, तासि पिरतिम तोडि ।। चेयण सुणु० ।।३६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वहुत्ती जूनिह ढाइ करि, ले नरकह महि देइ ।
यैंसी जड यह मीत सूणि, मूढु विसासु करेइ ।। चेयण गुण० ।।३७।।

सहीइ परीसह वीसदुइ, काटैं करमह भारु ।
तिसु सिउ मूढ नविरचीयैं, तारैं भव संसारु ।। चेयण सुणु० ।।३८।।

जिनि कारि जाणी आपणी, निश्चैं वूडा सोइ ।
खीरु[1] पडचा विसहरि मुखे ताते क्या फलु होइ ।। चेयण गुण० ।।३९।।

चेतनु चेतनि चालइ, कहउत मानैं रोसु ।
आपे वोलत सो फिरैं, जडहि लगावइ दोसु ।। चेयण सुणु० ।।४०।।

जेरूपतीना हेतु करि, सिड्वा गहि रे घाट ।
कांजी पडिया दूध महि, हूवा सु वारह वाट ।। चेयण गुण० ।।४१।।

छह रस भोयण विविहि परि, जो जड नित सीचेइ ।
इंदी होवहि पडवडी, तउ पर धम्मु चलेइ ।। चेयण सुणु० ।।४२।।

सुणहु पियारे वीनती, देखहु चिति अवलोइ ।
वीजु जु कलिरि वीजीयैं, ताते क्या फलु होइ ।। चेयण गुण० ।।४३।।

चौवीस परिग्रहु पर तजैं, पंद्रह जोग धरेइ ।
जड परसादिहि गुणि चडैं, सिव पुरि सुख भूचए ।। चेयण सुणु० ।।४४।।

इसु जड तणा विसासु करि, जो मन भया निसंकु ।
काले[2] पासि वइट्ठियह, निश्चैं चडइ कलंकु ।। चेयण गुण० ।।४५।।

खाजैं पीजैं विलसियइ, फुरइत दीजैं दानु ।
यहु लाहा संसार का, भावैं जाणु न जाणो ।। चेयण सुणु० ।।४६।।

मूरखु मूलु न चेतई, लाहै रह्या लुभाइ ।
अंधा वाटैं जेवडी, पाछइ वाछा खाइ ।। चेयण गुण० ।।४७।।

पडवन्ना पालैं सदा, उत्तिम यहु परवाणु ।
अंकरि जा विसु संग्रही, तौ वन छूटैं जाणु ।। चेयण सुणु० ।।४८।।

इसैं भरोसैं जे रहे, चेते नाही जागि ।
डूवे तारु वापुडे, भेडह पूछडि लागि ।। चेयण गुण० ।।४९।।

---

१. दूध ।
२. कोयला ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचै इंदी दंडि करि, आपा आप्पुरणु जोइ।
जिउ पावहि निरवाण पदु, चौगइ जनमुन होइ ।। चेयरण सुरणु० ।।५०।।

क्या जे इंदी वसि कीई, क्या साध्या अप्पारणु।
इकु परमंथु न जारिणया, किउ पावै निरवारणु ।। चेयण गुण० ।।५१।।

विरणु करमह काटे आपरणे जो नरु को सीझेइ।
ता किं सेणकु नरक महि, अजहु दुख भूचेए ।। चेयरण सुरणु० ।।५२।।

क्या जें सेरणकु नरक महि, वहु वहु दुख भूचंतु।
भव्वं जीयहमहि सो गण्या, निश्चै इव सीझंतो ।। चेयण गुरण० ।।५३।।

काया राखहु जतनु करि, चडहु जेंव गुरण ठारिण।
विरणु मरणुव जम्मिहो भवियणहु, गया न को निरवाणि ।। चेयण सुरणु० ।।५४।।

हरतु परतु दोनउ गया, नाउर वारु न पारु।
जिनकरि जाणी आपणी, से डूबे काली धार ।। चेयरण गुरण० ।।५५।।

जिउ गैसंदरु कट्ठ महि, तिल महि तेलु भिजेंउ।
आदि अनादि हि जारिणयै, चेतन पुंद्गल एव ।। चेयण सुरणु० ।।५६।।

लेहि गैसंदरु कट्ठ तजि, लेहि तेल खलि राडि।
चेतहि चेतनु मेलियै, पुदगलु परहर वालि ।।चेयरण गुरण० ।।५७।।

वालत्तण की वालही, गुरणंहि न पूजै कोई।
सा काया किव निंदियै, जिसहु परम पदु होइ ।। चेयरण सुरणु० ।।५८।।

काया कर जलु अंजुली, जतनु करंतिहि जाइ।
उत्तिमु विरता नित रहै, मूरिखु इमु पतियाए ।। चेयरण गुरण० ।।५९।।

मनका हठु सवु कोइ करइ, चितु वसि करइ न कोइ।
चडि सिखर हु जव खडहडै, तवरु विगुचरिण होइ ।। चेयरण सुरणु० ।।६०।।

सिखर हु मूलि न खडहडै, जिरण सासरण आधारु।
सूलि ऊपरि सीझिया, चोरि जप्पा नवकारु ।। चेयरण गुरण० ।।६१।।

उइ साधण परिरणाम उइ, कालभि उइ थावोर।
इव साध फिरहि सहि डोलते, तदि सीझै थे चोर ।। चेयण सुरणु० ।।६२।।

साधु न डोलइ मूलि हरि, जिसु महि ज्ञानु रतन्नु।
तेरह विधि चारितु धरै, पुद्गल जारणइ अन्नु ।। चेयरण गुरण० ।।६३।।

पुद्गलु अन्नु न जारिणयहु, देखहु मनि विवपाइ।
किरिया संजमु ता चलै, जा पुद्गल होइ सखाए ।। चेयरण सुरणु० ।।६४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिण पूजा सम्मत्त गुरु, साहामी सिउ नेहु।
इन्ह सेवंतिहि सीजीयै, नाही अचिरजु एहु ॥ चेयण गुण० ॥६५॥
जिसु संगि रूलंतह जम्मु गया, एको सुखु नहु लाघु।
लोभी जीउ पतंग जिउ, फिर फिर मूरख दाधौ ॥ चेयण सुणु० ॥६६॥
डाइणि मंतु अफीम रसु, सिखिन छोडणु जाइ।
को को कवणु न मोहिया, काया ढवली लाइ ॥ चेयण गुण० ॥६७॥
जो जो ढवली लाइया, सोडविया गवारु।
सांपु पिटारै पालिया, तिनिक्या कीया उपगारो ॥ चेयण सुणु० ॥६८॥
जोखिणु काया वसि करहि, इंदी रहणु न जाइ।
तजि तपु संसारिहि रूलहि, पाछै लोक हसाए ॥ चेयण गुण० ॥६९॥
ते तप तिहि कहु किव खलहि. जिन्हि जीत्या संसारु।
सत्तु मित्तु सम करि जाणिया, साध्या संजम भारो ॥ चेयण सुणु० ॥७०॥
पहिला आपणु देख कसि, लेहि संजमु भारु।
जे ता देखहि ओढणा, तेता पाव पसारो ॥ चेयण गुण० ॥७१॥
भला करंतिहि मीत सुणि, जे हुइ वुरंहा जाणि।
तौ भी भला न छोडियै, उत्तमु यहु परवाणु ॥ चेयण सुणु० ॥७२॥
भला भला सहु को कहै, मरमु न जाणै कोइ।
काया खोई मीतरे, भला न किसही होए ॥ चेयण गुण० ॥७३॥
हाडह केरा पंजरी, धरिया चम्मिहि छाइ।
वहु नरकिहि सो पूरिया, मूरिख रहिउ लुभाए ॥ चेयण सुणु० ॥७४॥
जिम तरु आपणु धूप सहि, अवरह छांह कराइ।
तिउ इसु काया संगते, जीयडा मोखिहि जाए ॥ चेयण गुण० ॥७५॥
काया नीचु कुसंगडा, वैसंदर सरि जोइ।
तांता पकडै ज़लिमरै, सीलइ काला होइ ॥ चेयण सुणु० ॥७६॥
जिसु विणु खिणु इकु ना सरै, भाव लियै जिसु लागि।
जे घर पुर पट्टण दहै, ता घरि कीजइ आगि ॥ चेयण गुण० ॥७७॥
काइ सराहहि चेनहि, पुद्गलु घालहि राडि।
खेतु विसो अविणा सरु, जिसुकी सगती वाडी ॥ चेयण सुणु० ॥७८॥
वेस्वानेहु कसुंभरगु, अर जल उप्परि कार।
इसासु पुद्गल मीत सुणि, विहडत होइ न वार ॥ चेयण गुण० ॥७९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिउ ससि मंडणु रयणिका, दिनका मंडणु भाणु ।
तिम चेतन का मंडणा, यहु पुदगलु तूं जणि ।। चेयण सुणु० ।।८०।।

इसु काया कै संगते, यहु जीउ पडइ जंजालि ।
हुडै कचोला नीर कहु, कूटी जै घडियालि ।। चेयण गुण० ।।८१।।

जल कहु निंदइ जीयडा, पुदगलु घालइ राडि ।
खेतु भिसो अविणा सरु, जिसुकी सगती वाडि ।। चेयण सुणु० ।।८२।।

काय कलेवरु वीस सुहु, जतनु करंतिहि जाइ ।
जिव जिव पाचै तुंवडी, तिव तिव अति कडवाइ ।। चेयण गुण० ।।८३।।

जो परमलु हुई कुसम महि, सो किव कीजै अंगि ।
पुदगल जीउ सलगनु तिव, इव भास्या................।। चेयण सुणु० ।।८४।।

फूलु मरइ परमलु जीवइ, तिसु जाणै सहु कोई ।
हंसु चलइ काया रहइ, किवरु वरावरि होइ ।। चेयण गुण० ।।८५।

कहा सकति सिव वाहरी, सकति विनसिउ काइं ।
पुद्गलु जीउ सलगनु तिव, वासुं दुह इकठाए ।। चेयण सुणु० ।।८६।।

काया संगिहि जीयडा, राख्या करमिहि बंधि ।
पडचा कपुरु जुल्ह सणमहि, गयवर वत्तणु गंधि ।। चेयण गुण० ।।८७।।

इस काया कै संगते, जाण्या उत्तिम धम्मु ।
मूरख सा किव निंदियै, किया सफलु जिनि जम्मु ।। चेयण सुणु० ।।८८।।

कुंजर कुंथू आदि दे, असे पुद्गलि लीय ।
सगति तै नहु वंधिए, जहा सुखी होइ जीय ।। चेवण गुण० ।।८९।।

काया तारइ जीय कहु, सतु संजमु व्रत धार ।
जिउ वेडी सगि उत्तरै, सउमण लोहा पारि ।। चेयण सुणु० ।।९०।।

जड वेणी पोहण तणी, इसा जाणि जिय चेतु ।
कोन तिरंता दीठु मइ, करि काया सु हेतु ।। चेयण गुण० ।।९१।।

काया की निंदा करहि, आपुन देखहि जोइ ।
जिउ जिउ भीजइ कांवली, तिउ तिउ भारी होइ ।। चेयण सुणु० ।।९२।।

इसै भरोसै जे रहे, चेते नाही जागि ।
झूठें तारु वापुडे, भेडह पूछड लागि[1] ।। चेयण गुण० ।।९३।।

---

१. यह पद्य पहिले ४९ संख्या पर भी आ गया है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तेतीस सागर वरष सुर, जिसु पसाइ सुख दीठ।
तिसु जड सिउ इव राचियइ, जिउ कापडइ मजीठ ।। चेयण सुणु० ।।९४।।

तेतीस सागर दुख नरक महि, ते भी चित्ति चितारि।
इसु काया के एह गुण, रे जीय देखु सुहियइ विचारि ।। चेयण गुण० ।।९५।।

तेतीस कोडा कोडि कम, पोतै मोह निहाणु।
ते सहि काटै तपु सहै, काया यहु परवाणु ।। चेयण सुणु० ।।९६।।

काया कहु मुकलाइ करि, रह्या निचिंता सोइ।
ते तपु डूबे लेइ करि, अजहू फिरहि निगोए ।। चेयण गुण० ।।९७।।

जिय विणु पुद्गल ना रहै, कह्यिा आदि अनादि।
छह खंड भोगे चक्कवै, काया कै परसादि ।। चेयण सुणु० ।।९८।।

देव नरय तियंजच महि, अरु माणस गति चारि।
जिसुका घाल्या तूं फिर्या, तिस सिउ हौस निवारि ।। चेयण गुण० ।।९९।।

तुझ कारणि वहु दुख सहै, इनि काया गुणवंति।
चेतन ए उपगार तुझ, छोडि चला इसु अंति ।। चेयण सुणु० ।।१००।।

कासु पुकारउ किसु कहउ, हीयडे भीतरि डाहु।
जे गुण होवहि गोरडी, तउव न छाडै ताहु ।। चेयण गुण० ।।१०१।।

मानु महतु लोगी कुजसु, अरु वडि माकलि माहि।
पंच रतन जिसु संगते, चेतन तू रुलहाहि ।। चेयण सुणु० ।।१०२।।

भला कहावै जगु मुसे सै, भगलु करे नट जेउ।
जड कै संगिहि दिठु मैं, घणा वुडंता एव ।। चेयण गुण० ।।१०३।।

माणिकु भीता अति चडा, जा कंचणु तुम्ह पाहि।
ता लगु सोभा चेतनहि, जा लगु पुदगल माहि ।। चेयण सुणु० ।।१०४।।

यहुनि कलमलु जीवडा, मुकति सरूपी आथि।
आपा आपु विटंविया, इसु काया कै साथि ।। चेयण गुण० ।।१०५।।

मोती उपना सीप महि, विडिमा पावै लोइ।
तिउ जिउ काया संगते, सिउपरि वासा होइ ।। चेयण सुणु० ।।१०६।।

जव लगु मोती सीप महि, तव लगु सभु गुण जाइ।
जव लगु जीयडा संगि जड, तब लगु दुख सहाय ।। चेयण गुण० ।।१०७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रे चेतन तूं तावला. जा जड तुम्ह संगि होइ ।
जे मद्दु भाजनि गूजरी, खीरु कहै सवु कोए ।। चेयण सुण० ।।१०८।।

चेतन तूं नित ज्ञान मइ. यहु नित अशुचि सरीरु ।
घालि गवाया कुंभ महि, गंगा केरा नीरु ।। चेयण गुण० ।।१०९।।

उतु जमि न्यानु अराधिया, कीया वरतु अभंगु ।
तिसु पुंनिहि तै पाईया, इसु काया सिउ संगु ।। चेयण सुण० ११०।।

सा जड मूढ न सीचियै, जिसु फलु फूलु न पानु ।
सो सोना क्या फूकियै, जोरु कटावै कानु ।। चेयण गुण० ।।१११।।

जोवनु लछि सरीरु सुख, अरु कुलवंती नारि ।
सुरगु इच्छाई पाईया, जिन्ह कै एसो चारो ।। चेयण सुण० ।।११२।।

तूं सात धातु नींदहि सदा, चितमहि करहि विसेषु ।
तिन्ह साथि हिय नित भरी, रे जिय संभलि देखु ।। चेयण गुण० ।।११३।।

आहारु मैथुना नींद जड, ए चारिउ जीय साथि ।
तेसठि सलाका आदि दे, इन्ह विणु कोइ न आथि ।। चेयण सुण० ।।११४।।

ए चारिउ संगि ताम लगु, जा जीउ करमह माहि ।
छोडि करम जीउ मोखि गया, इनहु नेडा जाहि ।। चेयण गुण० ।।११५।।

कालु पंच मारुद्द यहु, चित्तु न किसही ठांइ ।
इंदी सुखु न मोखु हुइ, दोनउ खोवहि काए ।। चेयण सुण० ।।११६।।

कालु पंचमा क्या करै, जिन्ह समकतु आधारु ।
जदि कदि बोइ पुन्यात्मा, निश्चै पावहि पारु ।। चेयण गुण० ।।११७।।

राजु करंता जे मुवा, ते भी राजु कराहि ।
भीख भमंता जे मुवा, ते भीखडीय भमाहि ।। चेयण सुण० ।।११८।।

तपु करि पावइ राज पदु, राजहु नरकुभि होइ ।
जिनि सुहु असुह निवारिया, सो वंद्या तिहु लोए ।। चेयण गुण० ।।११९।।

काइ पिछोडहि थोथि कहु, जिकु कणु ए कुन होइ ।
जो रयणायरु सहु मथहि, मसका चडइ न तोए ।। चेयण सुण० ।।१२०।।

कणुंता इकु सरवनि जगि, अवरु सभै रुपरालु ।
जिसु सेवत चौगय तणा, तूटै माया जालु ।। चेयण गुण० ।।१२१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चेतन काइ तडप्फडहि, कूडा करहि पसारु।
जितु फलि सकहि न पहुचि करि, तिसुकी हुवस निवारो ।। चेयण सुगु० ।।१२२।

काया किसियन आपणी, देखहु चिति अवलोइ।
कूकरि वंकी पूछडी, सा किम सीधी होइ ।। चेयण गुण० ।।१२३।।

भोगहि भोग जि इंदपरि, भूपति सेवहि वारि।
काया भीतरि आइकरि, सुख पाया संसारि ।। चेयण सुगु० ।।१२४।।

यहु सुखु जिय अविणासरु, दिनु दिनु छीजतु जाइ।
जो जल सिखरहु खडहडै, सो किउ सिखरि चडाए ।। चेयण गुण० ।।१२५।।

यहु संजमु असिवर अणी, तिसु ऊपरि पगु देहि।
रे जीय मूढ न जाणही, इव कहु किउ सीझेइ ।। चेयण सुगु० ।।१२६।।

असिवरु लागै तिन्हु कहु, जे विषया सुखि रत्तु।
साधि संजमु हुव वज्ज मैं, ते सुर लोइ पहुतो ।। चेयण गुण० ।।१२७।।

इसु काया परसादते, चेतन सोभा होइ।
पंचहु महि वाडिमा चडै, भला कहै सवु कोइ ।। चेयण सुगु० ।।१२८।।

भला कहावै जगु मुसै, भगलु करै नट जेंउ।
जड कै संगिहि दीठु, मइ, घणा वूडंता एव ।। चेयण गुण० ।।१२९।।

बहुता जूनि भमंति यह, लही मुनिष की देह।
तिस सिउ असी पिरति करु, जिउ सिल ऊपरि रेह ।। चेयण सुगु० ।।१३०।।

सिलभि विणसै रेहसिउ, देहमि खिण महि जाइ।
तिसु सिउ निश्चल पिरति करु, जोले दुख छोडाइ ।। चेयण गुण० ।।१३१।।

दुक्खहु मूलिन छूटइ, पडिया आरति झाणि।
काया खोवइ आपणी, किउ पहुचे निरवाणि ।। चेयण सुगु० ।।१३२।।

उद्दिमु साहसु धीरु वलु, बुद्धि पराकमु जाणि।
ए छह जिनि मनि दिढु किया, ते पहुंचा निरवाणि ।।१३३।।

चेयन गुणवंते जडसिउ संगु न कीजै।

जड गलइरु पूरै, तिव तिव दूख सही जै।
जड संगु दुहेला चिरु भमिया संसारो ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनि ममता छोडी तिनि पाया भव पारो ।
पाया सुतिनि भव पारु निश्चै संगु जड मक्काजिणो ॥
तेरह प्रकारि हि सुद्ध चारितु, धर्‌या दिढु अप्पण मुणे ।
चहु गति तणा सहि दुख भाजहि, मुकति पंथ लभंतिया ॥
तिसु साथि जड नहु संगु कीजै, सुणु चेतन गुण वंतिया ॥१३४॥

चेतन सुणु निरगुण जड सिउ संगति कीजै ।
इसु जड परसादिहि मोखह सुखु विलसीजै ॥
जड सहइ परीसह काटै करमह भारो ।
जिसु जड न सखाई तिसु उरवारु न पारो ॥
उरवारु पारु न होइ किछुहू रिदुइय काइ गवावहे ।
इंदिया सुखु न मोखु होवइ फिरि सुमनि पछितावहो ॥
सुरलोइ चकवति उच्च पदवी भोगतइ भोग्या घणा ।
तिसु साथि जड नित संगु कीजै सुण चेतन निरगुणा ॥१३५॥

दुख नरकि जि दीठे ते इव हीयइ संभाले ।
इसु जडकै संगते चेतन आपनु गाले ॥
परताषि विष वेली सीच्यह वया फलु होए ।
मधु विंद कए सुख तिन्ह लगि आपुन खोए ॥
ननु खोइ आपणु राखि दिढु करि नीर समकतु निश्चलो ।
जब लगै मंदिरि कालु पावकु धम्मु का लाभे जलो ॥
धनु पुत्त मित्तु कलत्तु काया, अंति नहु कोइ सखा ।
संभलहु इव चेतन पियारे, नरकि जे दीट्ठे दुखा ॥१३६॥

जह पुहपु तह मधु जह गोरसु तह घीउ ।
जह काठ अगनि तह जह पुदगल तह जीउ ॥
मति मुगध सि भूली हंढहि घरु घरु वारो ।
पाखंडी जगु डहकहै, सकहि न आप उतारे ॥
ते सकहि आपुन तारि मूरिख, सकति काया खोवहे ।
चारितु लेकरि विषय पोषहि पंक उरि मल धोवेहे ॥
सिव सकति सदा सलगनु जुगि जुगि मरमु नहु कि नही लषो ।
संभलहु इव चेतन पियारे पुहपु जह तह होइ मधो ॥१३७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिय मुकति सरूपी तू निकल मलु राया ।
इसु जडकै संगते भमिया करमि भमाया ।।
चडि कवल जिवा गुणि तजि कद्दम संसारो ।
भजि जिए गुए हीयडै तैरा यहु विवहारो ।।
विवहार यहु तुझ जाणि जीयडे करहु इंदिय संवरो ।
निरजरहु वंधण कर्म्म केरे जान तनि दुक्काजरो ।।
जे वचन श्री जिण वीरि भासे ताह नित धारह हीया ।
इव भणइ 'बूचा' सदा निम्मलु मुकति सरूपी जीया ।।१३८।।

।। इति चेतन पुद्‌गल धमाल समाप्त ।।

□□□

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५

नेमिनाथ बसंतु

अमृत अमुल उमउरै निमि जिण गढ गिरनारे ।
म्हारै मनि मधुकर तुह वसै संजम कुसुम मझारे ।
सखीय वसंत सुहावौ दीसइ सौरठ देसो कोइल कुहकै मधुरसरे ।
सावणह प्रवेसो विवलसिरी महमसै भवरा रुणु झुणकारे ।।
गावहि गीत सुरासुर गंधप गढ गिरनारो ।
विजय पढहु जसु वाजइ आगम अविचल तालो ।
निमि जिण कीरति विलासिणि नचइ सुछन्द छंदवालो ।
अभय भंडार उघाडय पडइ संजम सिंगारो ।
अट्ठारह सहि असील सहिलडा सरिसउ नेमि कंवारो ।
न्यान कुसुम मह महकइ चारित चंदन अंगे ।
मुकति रमणि रंगि रातउ निमि जिणु खेलइ फागो ।
सरस तंबोल समाणाइ रालइ रंग उगालो ।
समदविजय राइ लाडिलउ अपुर देस विसालो ।
नव रस रसियउ निमि जिणु नव रसु रहितु रसालो ।
सिद्धि विलासिणि भोल यो समदविजय रइ वालो ।
नेमि छयल त्रिभुवण छलिउ मलियो मालणि माणो ।
राजल देखत दिन्नरमे संजम सिरिय सुजाणो ।
जणु जागै तव्व सोवइ जागय सूतै लोग ।
मोह किवाड अजलै अनमखु नयण संजोग ।
सरस बडे गुण माडइ चुरि चुरि करइ अहारो ।
जाए पराइ जगु झगडइ सिवदेको अलियारो ।
कुंड ठाइन्द्र मै न्हाइजै पहिरिजइ निरमल चीरो ।
नेमि गंधोदकु बंदिजै निर्मल होइ सरीरो ।
चंदन कपूर कुंकु घसि चरचिजै सावल धीरो ।
अमल कमल सालि पूजि जै भव भव भंजण वीरो ।
दवणउ मरवड सेवती सहृदल पाडल मालो ।
मनह मनोरथ पूरवइ प्रभु पूज जइ त्रिकालो ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नव नेवज रस गोरस पुज्जि जै त्रिभुवण माही।
जनम जीवन फलु लाभइ रे निति तन होइ उछाहो।
आरत्यो प्रभु कीजइ विमल कपूर प्रजाले।
अमर मुकति मगु दीसई मोह महातमु जाले।
कुस्नागुरु धूप धूपिजइ जिन तनु सहजि सुवासो।
अमर रमणि रंगि रमिजइ पाइजइ शिवपुर वासो।
नव नारिंग कदली फल पुज्जि जै त्रिभुवण देवो।
जनम जीवन फलु लाभइ होइ संसारह छेवो।
काचीय कलीन विहसइ चोरा वाउ।
भूलउ भवरा रुण झुण चंचल छपल सहाउ।
भमरु कमल रस रसियउ केतुकि कुसुम लुभाइ।
वंधण वेदु मूरिख सहइ राइ बंघै न सुहाइ।
साजन छयल तिस लहि जाहि नित नवल वसंतु।
सवम नवल परि विहसइ जाह नित रमणि हसन्तु।
रामाइण रंगि रातउ भार धरहि तु अयाणु।
परमाहथि पंथि भूलउ किउ पावहि गुण ठासो।
अडली डाल डलामल अण खाधा फल खाये।
चाल्हवि यरवण सूवडउ सखीयण बंधणा जाइ।
मूलसंघ मुखमंडण पदम नन्दि सुपसाइ।
वील्ह वसंतु जि गावइ से सुषि रलीय कराइ॥

॥ इति नेमिनाथ बसंतु समाप्तो ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६

टंडाणा गीत

टंडाणा टंडाणा मेरे जीवडा, टंडाणा टंडाणावे ।
इहि संसारे दुख भंडारे, क्या गुण देखि लुभाणावे ।।

जिनि ठगि ठगिया अनादि कालहि, भी तिन्ह जोगु पत्याणावे ।
पड्या कुमारगि मिथ्या सेवहि, मेटहि जिणि की आणावे ।।

पाप करहि पर जीव सतावै, होसी नरका ठाणावे वारा ।
केती बारह रंकु कहाया, कित्ती बारह राणावे ।।

समइ समइ सुह असुह जो वांधै, लागो होइ सताणावे ।
बज्र लेप वह खोली नाही, लवहि अवर अयाणावे ।।

ए वह भवि भवि चहुगति भीतरि, बांध्या करमह घाणावे ।
तेरह विधि तै पालि न सकिया, चारितु धरि कृपाणावे ।।

केवल भाषित धरम अनुपमु, सो तुम चिति न सुहाणावे ।
ले संजम तै जीति न सक्या, तीखे मनमथ वाणावे ।।

राग दोष दोइ वइरी तेरै, देहि न सिवपुरि जाणावे ।
आठ महामद गज जिम गरजै, तिन मिलि किया निताणावे ।।

मात पिता सुत सजन सरीरी, यहु सबु लोगि विडाणावे ।
रयणि पंखि जिम तरवर वासै, दस दिस दिवसि उडाणावे ।।

जम्मण मरण सहे दुख अनंता, तौ नहुवउ सयाणावे ।
केते पुरिस निपुंसिक लिंगिहि, के ते नाम धराणावे ।।

नट जिम भेष कीये वहुतेरे, तिन्हको कहइ प्रवाणावे ।
आपणु परु कारणि करि आरंभु, तू पीडहि षट प्राणावे ।।

क्रोह मान माया लोभ संगहि, नितिहि रहै भरमाणावे ।
चेतनु राव निबल तइ कीयो, मनु मंत्री सिउ लाणावे ।।

विषयह स्वारथ पर जिय वंचहि, करि करि बुधि विनाणावे ।
छोडि समाधि महारस (अ)नूपम, मधुर बिंदु लपटाणावे ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आइ जरा जव गढ मैं पैसे जोवन करइ पयाणावे ।
ओसर गुण तूटैंहि जिव बाणुष धण पीछैं पछिताणावे ॥

करि उद्दिमु अप्पणु वलु मडै, भोगहु अमर विमाणावे ।
आश्रव छेदि गहौ निज संवरु, काटहु करम पुराणावे ॥

पाखिहि मासि नीरसु भोयणु, ले करि सेबउ जाणावे ।
समकति ओहृणि दस विधि पूरहु निम्मलु धम्म किराणावे ॥

सुद्ध सरूप सहजि लिव निसिदिन, झावउ अंतरि झाणावे ।
जंपति 'बूचा' जिम तुम्हि पावहु, वंछित सुख निखाणावे ॥

सुख निर्वाण निर्भय ढाणं, सिव रमणी मस्तकि तिलयं ।
आत्मप्रतिबुद्ध जमि कवि सुद्धं, बत्तीसो गुण पद निलयं ॥

॥ इति टंडाणा गीत समाप्ता[1] ॥

□ □ □

१. गुटका दि० जैन मन्दिर नागदी बूंदी ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७

भुवनकीर्ति गीत

आजि वद्धाउ सुणहु सहेली, यहु मनु पदुमनु विघसइ जिमकलीए ।
गोट्ठि अनंद नित कोटिहि सारिहि, सुहु गुरु सुहु गुरु वेदहि सुकरि रलीए ।।
करि रली वन्दह सखी सुहु गुरु लवधि गोइम सम सरै ।
जसु देखि दरसणु टलहि भवदुख, होइ नित नवनिधि घरै ।।
कपूंर चन्दन अगर केसरि आणि भावन भावए ।
श्रीभुवनकीर्ति चरण प्रणमोहूं, सखी आज बद्धावहो ।।१।।

तेरह विधि चारित प्रतिपालइ, दिनकर दिनकर जिम तपि सोहइए ।
सर्वज्ञि भासिउ धर्म सुणावै वाणी हो वाणी भव मनु मोहइए ।
मोहन्ति वाणी सदा भवि सुनु ग्रन्थ आगम भासए ।
षट् द्रव्य अरु पञ्चास्तिकाया सप्ततत्व पयासए ।।
वावीस परिसह सहइ अंगिह गरुव मति नित गुणनिधो ।
श्रीभुवनकीर्ति चरण पणमि सु चारितु तनु तेरह विधो ।।२।।

मूलगुणाहं अठाइसइ धारइए मोहए मोहु महाभडु ताडियो ए ।
रतिपति तिणु दंतिहि महिइउ पुणु कोवडुए कोवडुकरि तिहि रालीयो ए ।।
रालियो जिमि कोवंड करिहि वनउ करि इम बोलइ ।
गुरु सियलि मेरह जिउ अजंगमु पवण भइ किम डोलए ।
जो पंच विषय विरतु चित्तिहि कियउ खिउ कम्मह तणु ।
श्रीभुवनकीर्ति चरण प्रणमइ धरइ अठाइस मूलगुणु ।।३।।

दस लाक्षण धर्म निजु धारि कुं संजमु भूसणु जिसु वनिए ।
सत्रु मित्रु जो सम किरि देखई गुरनिरगंथु महामुनीए ।।
निरगंथु गुरु मद अट्ठ परिहरि सवय जिय प्रतिपालए ।
मिथ्यात तम निर्द्धण दिन म जैणधर्म उजालए ।।
तेरेन्नव्रतहं अखल चित्तहं कियउ सकयो जम्मु ।
श्रीभुवनकीर्ति चरण पणमउ धरइ दशलक्षिण धम्मु ।।४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुर तरु संघ णलिउ. चिंतामणि दुहिए दुहि ।
महोढा घरि घरि ए पंच सवद वाजहि उछरंगि हिए ॥
गावहि ए कामणि मधुर सरे अति मधुर सरि गावति कामणि ।
जिणहं मन्दिर अवही अष्ट प्रकार हि करहि पूजा कुसममाल चढावहि ॥
बूचराज भणि श्री रत्नकीर्ति पाटिउ दयोसह गुणे ।
श्री भुवनकीर्ति आसीरवादहि संघु कलियो सुरतरो ॥

॥ इति आचार्य श्रीभुवनकीर्ति गीत ॥

□□□

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८

पार्श्वनाथ गीत

जाग सलौनडी ए सुरण एक बाता ।
पार्श्व जिरणंद सिवां एहु मन राता ।
राता यहु मन चरण जिरणवर वामादेवी नंदनो ।
एक जगतगुरु जगनाथ वंदो, पुण्य का फल पावए ।
जिन कमठ बल तप तेज हारचो, मन धर्यासि धरवणीए ।
कवि वल्ह परस जिरणंद बंदौ, जाग रयण सलौनीए ॥१॥
कुंकम चंदन सबल करीजै, चउसर माल गले कुसम ठवीजे ।
कुसमै ठवीजै हार गुंथित, न्हाण पूज करावइए ।
एक जगत गुरु जगनाथ वंदौ, पुण्य का फल पावए ।
जिन अष्ट कर्म्म विदार क्षय करि, मन धरचासि घरवणीए ।
कवि वल्ह परस जिरणंद्र वंदौ, सवलि चंदन कीजिए ॥२॥
त्रिभुवरणं तारण मुक्त नरेसो, सत फणतो णिकरे रहीया सेसौ ।
रहीया सेसो सात फरिण, अंत किवही न पाइया ।
ध्याणिवइ कोडी झिरइ, निझकरि पुरुष डिढ चित लाइया ।
घरि पुत्त संपइ लेइ लक्ष्मी, दुरति निकंदना ।
कवि वल्ह परस जिरणंद वंदइ, स्याम त्रिभुवन वंदना ॥३॥
जन्म वनारसे उतपते जासो, अलिवर विषम गढोलिय निवासो ।
लिया निवास थान अलवर, संघ आवइ वहु पुरे ।
एक अंग मंडित कनक कुंडल, श्रवन मुख हीरे जडे ।
दह पंच सहसउ वद तरेसठ, माघ सुदि तिथि वारसी ।
कवि वल्ह परस जिरणंद वंदौ जन्म लिया वनारसी ॥४॥[1]

॥ इति पार्श्वनाथ गीत समाप्तो ॥

□□□

---

१. प्रस्तुत पार्श्वनाथ गीत अभी एक गुटके में उपलब्ध हुआ है । गुटका आमेर शास्त्र भण्डार में २६२ संख्या वाला है । इसमें पार्श्वनाथ की स्तुति की गयी है । यह गीत संवत् १५६३ माघ सुदी १२ को लिखा गया था । कवि की अब तक उपलब्ध कृतियो में यह प्राचीनतम कृति है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९

राग वडहंसु

ए सखी मेरा मनु चपलु दसै दिसे ध्यावै वेहा ।
ए वहु पडियडा लोभ रसे खिणु सुभ ध्याने ना आवै वेहा ।।
आवै न खिणु सुभ ध्यानि लोभी पंच संगिहि रात वो ।
मोहिया इनि ठगि मोहि धूरति विषु भ्रमी करि जातवो ।
निगोद नर यह सहे वहु दुख कियो भ्रमणु घणेर वो ।
दस दिसिहि ध्यावै हरि न रहई सखी मनु मेरवो ।।१।।

एहउ वरजे रही हरि न सुणै अचरु चरै दिन रयणे वेहा ।
ए यहु मातडा आठमदे ततु न चाहीयडा नयणे वेहा ।
चाहीया तत्तु न न्यान नयणि हि सुमति चिति न धारिया ।
मिथ्याति पडिया नाद कालि हु जनमु एवइ हारिया ।
मुल्लिया तितु भव मझि सागरि धून ते जाण्या सही ।
सो अचरु चर इन सुणइ कहिया वरजिहउ तिसुकौ रही ।।२।।

एति तु निगुण सिवा चेतनो क्या घुलि रहिउ लुभाए वेहा ।
ए निरंजनो पटल अजनि राख्या धूरतै छाए वेहा ।
छाइया धूरति पटल अंजनि राउ त्रिभुवन केरउ ।
दुख रोग सोग विजोग पंजरि किया आइ वसेरउ ।
अप्पणउ वस्तु तजि हुवउ परवसि लछि धरि कायर जिव ।
घुल रह्या निसि दिनु सगुण चेतनु निगुण तिसुनारी सिवा ।।३।।

ए रयणत्तउ वर तो भजो सुण सुण जीय हमारै वेहा ।
ए सरवनि धम्मो पालिनि जो औगुण मिटहि तुम्हारे वेवा ।
तुम मेटहि अवगुण जीय संभलि धम्मो जो सरवनि कह्या ।
मनि वचनि काया जिन्हिहि पाल्या सासुता सुख तिन्ही लह्या ।
दुख जरा जम्मण मरण केरे अव भागा भवो ।
बूचराज कवि मंजु जाय म्हारे वरतु यहु रयणत्तउ ।।४।।

× × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०

राग धनाक्षरी

सुणिय पधानु मेरे जीयवे, की सुभ ध्यानि न भ्रावहि ।
साचा धम्मु न पालिया फिरि फिरिता गति धावहि ।।
फिरि फिरि गति ध्याया सुख न पाया हुंढचाए उतपंदा ।
इन्ह विरवया संगिहि पया कुंढ गिहि काता भ्रापुरि चंदा ।।
सुह भ्रसुह कमह किसुह समइ तू जाणहि भ्रापु कमावही ।
सुणिय पधानु मेरे जीयवे की सुभ ध्यानि न भ्रावहि ।।१।। टेर

खुभिया पंकज मोहनी सत्तरि कोडा कोडिवे ।
नलका सुक जिउ भासिया सत्रया न वंण छोडिवे ।।
नहु बंधण छोड उडिया लोडैं करै कलाप रे ।
रसु रसणिहि चाख्या मूलू न राख्या कीए गते हि वसेरे ।।
ठगि ठगिया लोभे नडि मोहे जडिया घाल्या भ्रापणु वोडिवे ।
खुभिया पंकज मोहनी सत्तिरि कोडाकोडिवे ।।२।।

संपति सजन सरीरि सुत पेखि न मुल्ला सभायवे ।
खेवट केरी ना वजिउ मिले सजोगिहि भ्राइवे ।।
मिलिया संजोगिहिं इन्हही लोगिहि पुव्वहि पुन्न कमाणे ।
यहु रत्नु चिंतामणि कवडी कारणि खोउ न मूढ भ्रयाणे ।।
पउरंगु सनेह यहु सुखु एह मधुविंदु रस सायवे ।
संपति सजन सरीरि सुत पेखि न मुल्ला सभाइवे ।।३।।

भ्ररहंत देउ निरगंथ गुरु केवल भाषित धम्मजी ।
जिनि यहु निजु करि जाणीया कीया सफलु तिन्ह जम्मुजी ।।
तिन्ह जमणु सहला गयान भ्रहला जिनही समकतु जाता ।
दुरगति दुखु टाल्या सीयलु पाल्या मिथ्या जालि न फात्या ।।
जंपति 'बूचा' कहइ सरवनि जीति सुमति मानहु भरमु जी ।
भ्ररहंतु देउ निरगंथ गुरु केवल भाषित धम्मजी ।।४।।

× × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११

राग घनाक्षरी

पट मेरी का चोलरणा लालो लौंग ग मोती का हारुवे लालो ।
पहिरि पटंवर कामिनी लालो, नौ सती किया सिंगारु वे लालो ।।
सिंगारु करि जिण भवरिण आई, रहसु वहु मन महि घणा ।
सभ ईछ पूनी भया आनंदु देखि दरसनु तुम्ह तणा ।।
कप्पूर चंदनि अगरि केसरि अंगि चरची मेलया ।
सिरि संति जिणवर करहु पूजा पहिर पाटम चोलया ।।१।।

राइ चंवा अरु केवडा लालो मालवी मारुवा जाइवे लालो ।
कुद मचकुंद अरु केवडा लालो, सेवती वहु महकाइ वे लालो ।।
महकाइ वहु सेवंती पाडल राइवेलि सुहावरणी ।
सुनल सोवन कवल कवियरु नव निवली अति घणी ।।
ले आउ मालणि गुंथि नवसरू देखि विगसैं हीयडा ।
माला चहोडैं सीसि जिणवर राइ चंवा केवडा ।।२।।

पंच कलस भरि निरमल लालो, स्वामी न्हवरणु करेहि वे लालो ।
भावहो कामिनी भावना लालो, पुन्न तणा फलु लेहि वे लालो ।।
फलु लेहि भवियण पुन्न केरा, करि महोछा आवहो ।
नारिंग तुरी जु जभीर नेवजु आणि सीसि चडावहो ।।
आरती लेकरि फिरहु आगैं गहिर शब्द वजावहो ।
सिरि संत जिणवर न्हवरण कीजैं पंच कलस भराव हो ।।३।।

गढु हथिनापुरु वंदियैं लालो, जिन्नु स्वामी अवतारु वे लालो ।
सफलु जनमु यहु जारिणयैं लालो, तेय मुकत्ति दातारु वे लालो ।।
मुकति दाता नयरिण दीठा रोगु सोगु निकंदणो ।
अवतारु अचला देवि कुक्षिहि राइ विससेण नंदणो ।।
जगदीस तूं सुण भणइ 'बूचा' जनम दुखु दालिद हरो ।
सिरि संति ज़िणवरु देउ तूठा थानु गढ़ि हथिनापुरो ।।४।।

× × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१२

पद रागु गौडी

रंग हो रंग हो रंगु करि जिणवरु ध्याईयै ।
रंग हो रंग होइ सुरंगसिउ मनु लाईयै ।।
लाईयै यहु मनुरंग इस सिउ अवरु रंगु पतंगिया ।
घुलि रहइ जिउ मंजीठ कपडे तेव जिण चतुरंगिया ।।
जिव लगनु वस्तरु रंगु तिवलगु इसहि कानर गाव हो ।
कवि 'वल्ह' लालचु छोडु झूठा रंगि जिवरु ध्याव हो ।।१।।

रंग हो रंग हो पंच महाव्रत पालियै ।
रंग हो रंग हो सुख अनंत निहालियै ।।
निहालियहि सुख अनंत जीयडे आठ मद जिनि खिउ करे ।
पंचिंदिया दिढु लिया समकतु करम बंधण निरजरे ।।
इय विषय विषयर नारि परधनु देखि व चित्तु न टाल हो ।
'कवि वल्ह' लालचु छोडि झूठा रंगि पंच व्रत पाल हो ।।२।।

रंग हो रंग हो दिढु करि सीयलु राखीयै ।
रंग हो रंग हो रान वचन मनि भाखीयै ।।
भाखियै निज गुर ज्ञान वाणि रागु रोसु निवार हो ।
परहरहु मिथ्या करहु संवरु हीयइ समकतु धार हो ।।
वाईस प्रीसह सहहु अनुदिनु देहसिउ मंडहु वलो ।
'कवि वल्ह' लालचु छोडि झूठा रंगु दिढु करि सीयलो ।।३।।

रंग हो रंग हो मुकति रवणी मनु लाईयै ।
रंग हो रंग हो भव संसारि न आइयै ।।
आइयै नहु संसारि सागरि जीय वहु दुखु पाइयै ।
जिसु वाझु चहुगति फिरचा लोडै सोइ मारगु ध्याइयै ।।
तिभुवणह तारणु देउ अरहुंत तासु गुण निजु गाइयै ।
'कवि वल्ह' लालचु छोडि झूठा मुकति सिउ रंगु लाइयै ।।४।।

× × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१३

रागु दीपु

न जाणौ तिसु वेल कौ वे चेतनु रह्या लुभाई वे लाल ।
चित हमारी राजे परहरी वे सुद्धंतरि लिवलाइ वे लाल ।।
अंतरि लिवलागी आरति भागी जाण्या थूलु निराला ।
लोका अवलोक सभे जिनि दीपे हूवा सहजि उजाला ।।
निरमलु रसु पीवै जुगि जुगि जीवै जोतिहि जोति समाइवे ।
न जाण्यो तिसु वेल कौ वे चेतन रह्या लुभाइ वे लाल ।।१।।

जिथी रूपन गंधरसो वैं पयासु तिथि जाइ वे लाल ।
सरगुण विधानि गुण सिवावे किती हेति सभाइ वे लाल ।।
कित्ती सज्झाए चित्ति चाए आपनडैं सुखि थीए ।
रंग महि नित अंछै कहि न गच्छइ अमिय महारस पीए ।।
जगु जाणइ सोवै उहु समु जोवै उनमनि रच्यौ मनु लाइवे ।
जिथी रूपुन गंधर सोवे पया मुतिथी तूं जाइवे लाल ।।२।।

वालत्तण की वालहीवे हौ रत्ती तैं नालि वे लाल ।
दुख सुख कित्ती भोगवे वे संगि अनादी कालि वे लाल ।।
संगि नादी काले विधी वाले जोवन दैगैं वारे ।
जे जे सुखभाणे आपी भाणे तेइ वचित्ति चितारे ।।
हम साथि विरच्या अवरे रच्या साकि न वाचा पालिवे ।
वालत्तण की वालही वे हौ रत्ती तैं नालि वे लाल ।।३।।

जोथा सोई सोहु वावे क्या अखातैं नालिवे लाल ।
पाली दरि जे वस रोवे जिवसर अदरि पालिवे लाल ।।
सर अंदरि पाले देखु निहाले आगमि ध्यातमि कहिया ।
जो परम निरंजणु सव दुख भंजणु इव जोगी सरि लहिया ।।
जंपति 'वूचा' गरु तरियैं सागरु असी बुद्धि संभालिवे ।
जोथा सोई सो हुवावे क्या अखातैं नालि वे लाल ।।४।।

× × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४

रागु सूहड

वाले वलिवेहुं मावे मनु माया धुलि रात्तावे ।
वाले वलिवेहुं मावे रहइ आठ मदि मात्तावे ।।
मदि हुंढै माता घरमु न जाता जो सरवंनि हि भास्या ।
धन पुत्त कलत्ता मित्ता हित्ता देखत हियै विगस्या ।।
सा विंसरीके व नरकि जा भोगी वेदन दुसहु असाता ।
करुणा करुतारि कहै जन 'वूचा'.........................।
वाले वलिवेहुं मावे मनु माया धुलि राताते ।।१।।

वाले वलिवेहुं मावे सवल मिथ्यातिहि मोह्यावे ।
वाले वलिवेहुं मावे पंच ठगिहि मिलि दोह्यावै ।।
ठगि पंचिहिं दोह्या तै नहु जोह्या साचा समकतु सारो ।
चौगति हींडतह कष्ट सहंतह मूलि न लद्धा पारो ।।
आगम सिद्धंतह वचन सुणंतह तैं नहु चितु पउ वोह्या ।
करुणा करुतारु कहै जन 'वूचा' ।
वाले वलिवेहुं मावे सवल मिथ्यातहि मोह्या वे ।।२।।

वाले वलिवेहुं मावे जी लोहा पारसु पर सैंवे ।
वाले वलि हुं मावे ताहु कंचणु दरसैवे ।।
हुइ कंचणु दरसै संगति सरसै सुद्ध सरुउ पिछाणै ।
सहु अंदरु भीतरु एको हांवै ता परमारथु सहु जाणै ।।
आनन्द रूपी नित रहइ निरंतरि कवलु हियै महि हरसै ।
करुणा करुतारुक कहइ जन 'वूचा' ।
वाले वलिवेहुं मावे जी लोहा पारसु परसैवे ।।३।।

वाले वलिवेहुं मावे सेवहु तिहुवण राया वे ।
वाले वलिवेहुं मावे जिनि सांचा मग्गु दिखाया वे ।।
जिनि मग्गु दिखाया लिव मनु लाया तिसु अन्यामहि रहियैं ।
अविहडु अविनासी जोति प्रकाशी थानु मुकति जिय लहियै ।।
भीउ भाग्गउ संसारह अति घोरह पुनरपि जनमनु पाया ।
करुणा करुतारु कहइ जनु 'वूचा' ।
वाले वलिवेहुं मावे सेवहु तिहुवण रायावे ।।४।।

× × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५

रागु विहागडा

ए मेरै अंगणे वाचवा वासो चवे कोवल कलियावा।
ए मइ गुंथि पडचा वा नवसर सो नव सरकरि मने रलिया वा॥
मनि रलिय करि गुंथ्यासि नवसर जिणह पूज रचावहे।
सा सुता सुख जिउ मिलहि वंछित जमु न चोगय पावहे॥
जिसु देखि दरसणु टरहि भव दुख भाउ उपजै खिणु खिणो।
जि अदिजिण कारणि नि पाया राइचंवा अंगणों॥१॥

ए तेरे चरणे वा चरणे वा चरणि मेरा मनो मोह्यावा।
ए दुइ लोयणे वा अनदोसो अनदोसो जम्मो जोह्यावा॥
जोह्यासु जा मुख देव केरा अवरु नहु सेवउ किसो।
जिनि आठ मद निरजरे वलु करि हीयइ गुण वसिया तिसो॥
वंधिया तूं इन करमि कटिनिहि भविउ जनम घणेरिया।
मोह्या सु इन चितु आदि जिणवर चलणि इन दुहु तेरिया॥२॥

पिरतिइ नेहडी कीजै वेसा कीजै जिणवर भाषीवा।
ए षटु कायहा वा जाणी वा सो वाणी तिन्ह दिणे राखीवा॥
तिन्ह राखि दिढु दे अभइन्हा परि करि नहि सैइकु खिणु।
जिम जाणि वेयण किया निय तण तिम सुवयण पर तिणु॥
इकु रहहु समकति सदा निश्चलु जिम सुमूलु न छीजए।
हम कहउ आदि जिणंद स्वामी पिरतिन्हा परि कीजए॥३॥

ए चंद निरमली वा वाणी वा सो वाणी भवियह पारो वा।
ए व्रत वारहा वा धारो वा सो धरि तरहुसए सारोवा॥
सइसारु सागरु तरहु जिम जय पंचमह वय दिढु रहो।
वाईस प्रीसह सहहु दुग्गम तेइ अहि निसि सहो॥
सव्वु ईछ पुनीय भणइ 'वूचा' जनमु सफला जाणिया।
उलस्यात मनु सुणि आदि जिणवर चद निरमली वाणीया॥४॥

× × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१६

रागु आसावरी

दोहा :—संजमि प्रोहणि ना चडे भए अनंत सैंसारि ।
स्वामी पारे उत्तरे हमि थके उरवारे ।। छंदु ।।

हम थाके उरवारि स्वामी पारेगए ।
समकतु संवलो नाहते नरदीन भये ।।
ते भये दीन जहीन समकति मग्गि जिणवर ते खडे ।
गति चारि चउरासिय लख महि जनमु करि ते रूले ।।
वहु वारि दरसनु भया स्वामी धम्मु पालि न सकिया ।
तुम्हि पारि पहुते वीर जिणवर असे पतणि थकिया ।।१।।

इक्क लडेन्नरु माहि देखे कष्ट वहो ।
आसत वेदन घोर सहारै कवण कहो ।।
कहु को सहारइ घोर वेदन ताइ तावा पावहे ।
करि लोह थंभसि अग्गिवंने आणि अंगि लगावहे ।।
छेयणत भेयण डंड मुद्गर तनु पहारे सल्लिया ।
दुख कष्ट देखे सुणहु स्वामी नर माहि इक्कलिया ।।२।।

सेव्या कुगुरु कुदेउ पडियाक धम्म मते ।
पुदगल प्रवतिन काल कीती वहुत थुते ।।
थुति वहुल कीती सुणहु जीयडे आठ कम्मिहि तू नड्या ।
वलु करि डिगाया पंच धुत्तिहि एव मिथ्यातिहि पड्या ।।
नित चड्यो मान गयंदि मय मति तत्तु चित्ति न वेहिया ।
पडिया कुद्धंम्मिहि सुणहु जीयडे कुगुरु हेते सेविया ।।३।।

हम चातिगह पियास दरिसन नीर विणा ।
अवतनि ताप वुझाउ सरवनि सरस घणा ।।
घण सरस सरवनि करुणा भवह पारु लघाव हो ।
दुख जरा जम्मण मरण केरे तिन्हह वेगि छुडाव हो ।।
कर जोडि 'बूचा' भणइ सेवगु मेटि जिण अंतरि तम ।
तुम्ह नीर दरसण वाझु स्वामी त्रिसावहु चातिग हम ।।४।।

× × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१७

गीत

नित्त नित्त नवली देहडी नित्त नित्त श्रवइ कम्मु ।
नित्त नित्त श्रावइ कुल श्रमल, नित्त नित्त माणसु जम्म ।
नित्त नित्त न माणसु जम्मु लाभइ, नित्त नित्त न वांछित पावइ ।
नित्त नित्त न श्ररि जु खेतु लभै, नित्त न सुभ मति श्रावये ।
नित्त नित्त न सुभ गुरु होइ दंसणु, धम्मु जो जंप्पइ इहि ।
तो चेतना करि चेतन संभालउ, मणुव जम्म न नित्त नित्तो ।।१।।

जा लगु खिसियन जोवना. जा लगु जरा न जणावै ।
जा लगु तनु न संकोचिये, जा लगु रोग न श्रावै ।
श्रावइ न जा लगु रोगु श्रंगइ, तेजु नहु जब लगु खलइ ।
जव्व लग न मति श्रुति भइं भिभल, जाम वल इन्द्री मिल्यो ।
जव लग न बिछुडे प्राण प्राकम ताम तन पसरी गुणो ।
जव्व लग न चेतनु चढिउ श्रासणु, जाम खिलियन जोवणो ।।२।।

राजु दुवारह झल्लरी, अहि निसि सबद सुणावै ।
सुभ श्रसुभ दिनु जो घटइ, बहुडि न सो फिरि श्रावइ ।
श्रावइ न सो फिरि घटइ जो दिनु श्राउ इणि परि छीज्जइ ।
पौरसहु सम्माइक्कु व्रत संजमु खिणु विलम्ब न कीजिए ।
पंच परमेष्ठी सदा प्रणमउ, हियइ निज्ज समिकितु धरहु ।
खिण खिण चितावइ, चेत चेतन राजद्वारह झल्लरी ।।३।।

जो सरवनि निज्ज भाखियो यो उत्तिम्म धम्मु पालहु ।
थावर जंगमु जे जिया ते सम्मदिष्टि निहालउ ।
निहालि ते समदिष्टि जीवा, नंत त्यानि ये कह्या ।
षट् द्रव्य श्ररु पंचस्तिकाया, घृत घटवत भरि रह्या ।
इम भणइ बूचा व्रत्त उत्तिम तीनि रतन प्रकासिया ।
सुख लहउ वंछित सदा पालहु धरमु सरवनि भासिया ।।४।।

× × ×

गुटका संख्या मन्दिर बधीचन्द जी शास्त्र भण्डार—वेष्टन संख्या ९७१ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१८

गीत

ए मनुषि लियडा कवल विगस्सेवा ।
ए जिरगु देखीयडा पापा पराणस्सेवा ।।
सहि पाप पणासे जनम केरे देव दरसनु जोइया ।
सयल वंछित इछ पुन्निय भावहा पति गोइया ।।
गह गहिय अगि नमाइ सुंदरि रोरु कसमलु पिल्लिया ।
श्री वीर जिरगवर भवणि आई सखी तनु मनु खिल्लिया ।।१।।

आजु दिनु घनो रयरिग सुहाइवा ।
आई तउछरगि जिणह मंदरि देव गुरगंवहु गाइया ।
संसारि सफला नमु किया धम्मसि मनु लाइया ।।
सिद्धथराइ नरिंद नंदनु दिपइ अति उज्जल तनी ।
श्री महावीरु जिरगंदु स्वामी दिवसु आजु जाण्या घनो ।।२।।

ए गुंथि मालरगे माल लिवाईया ।
एमइ भाव सिवा जिरग चडाईया ।।
चडाइ जिरगसिरि माल कुसमह, महमनिहि भावन भाईया ।
कप्पूरि चंदनि अगरि केसरि जिरगह पूज रचाईया ।।
त्रिभुवनाह नाथु अनाथु स्वामी मुकति पंथ उजालणे ।
श्री वीर जिरगवर भवरग लाई माल गुंथी मालणे ।।३।।

ए सिव अनंत सुखादेण दातारावे ।
एनु म्ह चलरिग मनो रचिउ हमारावे ।।
हम रचिउ मनु तुम्ह पदह पंकज जरा मरगु निवारहो ।
दयाल इव किछु करहु करुरगा भवह सागरु तारहो ।।
बूचराज कवि चहुगति निवाररगु, सिद्धरवरगी रातवो ।
श्री महावीरु जिरगंदु पणविउ अनंत सिव सुख दातवो ।।४।।

× × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१६

गीत

धम्मो दुग्गय हरणो, करणो सह धम्म मंगल मूलं ।
जे भास्यो जिण वीरो, सो धम्मो नरह्न पालोहु ॥१॥

जिसो सुकुल विनु सीलु भणिज्जै, रुपु तिसो विरणु गुणह थुणिजै ।
जिसो सु दीखै विरणु पत्तह तरु, तिसो सु जिण धम्मह विरणु जगि नरु ।
हेमु तिसो वली विनु जाणहु, अ्रत्थ हीरणु जिउ कावु बखाणह ।
अर्क विना जैसे दीसै दिनु, जती जोगु जिसो चारित विनु ॥२॥

चारित विनु जती तपी विन मतवै, जोई विनु जो घ्यान अ्रहै ।
पढचा विनु सिद्धि वुद्धि विन पंडिय, विनु सिद्धह जोवावहे ।
मन विनु जिउ भूह भूह विनु भोगी, कतपीसु विनु खिमा थुरण ।
जिण सासरण वचन इव भास्यो, इसोसु नरु जिणधम्म विना ॥३॥

समीयरु विनु रैंणि दिवस विनु दिनीयरु, विन परिमल जे कुसम भरणे ।
विनु तेय सुरंग जलह विनु सरवर, विनु चातिक रुष वाधु घरणं ।
पिक विरणु तरु सूंड विरणु गयवरु, जिउ दल विणपैं संतरणं ।
जिण सासरण वचन इव भास्यो, इसोसु नरु जिण धम्म विना ॥४॥

छत्तह विरणु डंक गुरण विरणु जिउ घण, कंठह विरणु जे घुणहि गीयं ।
कर विरणु जिउ ताल वेस विरणु लावण, विरणु लज्जु जे कुलतीयं ।
लछी विरणु लोल सुरह विरणु वीरहि जिउ दल विरणु पैसं तिरणं ।
वण विरणु जिउ सिंघ मोर विरणु गिरवर, हंस विरणु जिउ मानसर ॥५॥

विस विनु जिउ उरग, लूण विरणु भोयरणु, जिसो सु विरणु केवै भवर ।
मंती विरणु नृपति सोम विरणु पटरिण सुक वल्हइ वसचुभरणं ।
जिसी रैंणि विनु जोति, तिसो चकवी विरणु दिनीयरु ।
जिसी दीप विरणु रैंणि तिसी विहूणि ने वरि ॥६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विणु रुजि भोयण जिसा वन्धरसि तिसी कहाणी ।
जिसा भाव विणु भगति तिसो मोती विणु पाणी ।
तैसो जु वीजु कल ख योगि रही संपै वा घातिउ ।
कवि कहै वल्हे रे वुहयणह जिण सासण विगुजम इव ।।७।।

लिखितं कल्याण संवत् १६४८ वरष कातग वदि अमावस्या ।

□ □ □

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२

छीहल

१६ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण के जैन कवियों में छीहल सबसे अधिक चर्चित कवि रहे हैं। रामचन्द्र शुक्ल के हिन्दी साहित्य के इतिहास से लेकर सभी इतिहासकारों ने किसी न किसी रूप छीहल का नामोल्लेख अवश्य किया है। छीहल राजस्थानी कवि होने के कारण राजस्थानी विद्वानों ने भी अपने अपने इतिहास में उनकी रचनाओं का परिचय दिया है।

सर्वप्रथम रामचन्द्र शुक्ल ने छीहल का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "ये राजपुताने के ओर के थे। संवत् १५७५ में उन्होंने पञ्च सहेली नाम की एक छोटी सी पुस्तक दोहों में राजस्थानी मिली भाषा में बनाई जो कविता की दृष्टि से अच्छी नहीं कही जा सकती। इसमें पांच सखियों की विरह वेदमा का वर्णन है। इनकी लिखी बावनी भी है जिसमें ५२ दोहे हैं। उदाहरण के रूप में उन्होंने पञ्च सहेली के प्रथम दो एवं अन्तिम एक पद्य भी उद्धृत किया है।[1] डा० रामकुमार वर्मा ने अपने "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" में कवि की पञ्च सहेली गीत के परिचय के साथ ही उनके सम्बन्ध में अपना अभिमत लिखा है कि "इनका कविता काल संवत् १५७५ माना जाता है। इनकी पञ्च सहेली नामक रचना प्रसिद्ध है। भाषा पर राजस्थानी प्रभाव यथेष्ट है क्योंकि ते स्वयं राजपुताने के निवासी थे। रचना में वियोग शृंगार का वर्णन ही प्रधान है।[2]

मिश्रबन्धु विनोद में छीहल का वर्णन रामचन्द्र शुक्ल एवं रामकुमार वर्मा के परिचय के आधार पर किया गया है। क्योंकि उद्धरण भी शुक्ल वाला ही दिया गया है। वे लिखते हैं कि इन्होंने संवत् १५७५ में पञ्च सहेली नामक पुस्तक बनाई जिसमें पांच अबलाओं की विरह वेदना का वर्णन है और फिर उनके संयोग का भी कथन है। इनकी भाषा राजपुताने ढर्रे की है और इनकी कविता में

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृष्ठ १९८।
२. रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ ५४४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छन्दोभंग भी है। इनकी रचना से जान पड़ता है कि ये मारवाड़ की तरफ के रहने वाले थे क्योंकि उन्होंने तालावों आदि का वर्णन बड़े प्रेम से किया है।[1]

डा० शिवप्रसाद सिंह ने अपनी पुस्तक "सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य" में छीहल का सवसे अच्छा मूल्यांकन प्रस्तुत किया है।[2] यही नहीं उन्होंने रामचन्द्र शुक्ल एवं डा० रामकुमार वर्मा के मत का उल्लेख करते हुए कवि के सम्बन्ध में निम्न प्रकार अपने विचार लिखे हैं—"आचार्य शुक्ल ने छीहल के बारे में बड़ी निर्ममता के साथ लिखा, संवत् १५७५ में इन्होंने पञ्च सहेली नाम की एक छोटी सी पुस्तक दोहों में राजस्थानी मिली भाषा में बनाई जो कविता की दृष्टि से अच्छी नहीं कही जा सकती। इनकी लिखी एक बावनी भी है जिसमें ५२ दोहे हैं। पञ्च सहेली को बुरी रचना कहने की बात समझ में आ सकती है क्योंकि इसे रुचि भिन्नता मान सकते हैं। किन्तु बावनी के बारे में इतने निःसंदिग्ध भाव से विचार किया यह ठीक नहीं है। बावनी ५२ दोहों की एक छोटी रचना नहीं है बल्कि इसमें अत्यन्त उच्चकोटि के ५३ छप्पय छन्द हैं। डा० रामकुमार वर्मा ने छीहल की पञ्च सहेली का ही जिक्र किया है। वर्मा जी ने छीहल की कविता की श्रेष्ठता-निकृष्टता पर कोई विचार नहीं दिया किन्तु उन्होंने पञ्च सहेली की वास्तविकता का सही विवरण दिया है।"

इसके पश्चात् 'राजस्थानी साहित्य का इतिहास' पुस्तक में डा० हीरालाल महेश्वरी ने छीहल कवि का राजस्थानी कवियों में उल्लेखनीय स्थान स्वीकार करते हुए उनकी पञ्च सहेली और बावनी को काव्यत्व से भरपूर एवं बोलचाल की राजस्थानी में बहुत ही अनूठी रचनाएँ मानी हैं।[3] इसके पश्चात् और भी विद्वानों ने छीहल के बारे में विवेचन किया है। डा० प्रेमसागर जैन ने छीहल को सामर्थ्यवान कवि माना है। तथा उनकी चार रचनाओं का परिचय एवं बावनी का नामोल्लेख किया है।[4] लेकिन जैन विद्वानों में डा० कामता प्रसाद, डा० नेमीचन्द शास्त्री आदि ने छीहल जैसे उच्च कवि का कहीं उल्लेख नहीं किया है।

जन्म परिचय

छीहल राजस्थानी कवि थे। वे राजस्थान के किस प्रदेश के रहने वाले थे

---

१. मिश्रबन्धु विनोद—पृ० १४३।
२. सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, पृ० १६८।
३. राजस्थानी भाषा और साहित्य—पृ० २५५–५८।
४. हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि पृ० १०१–१०६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके बारे में उन्होंने स्वयं ने कोई परिचय नहीं दिया है। लेकिन पञ्च सहेली गीत में कवि ने जिस प्रकार कुए पर पानी भरने के लिए आने वाली पांच विरहिणी स्त्रियों का चित्र प्रस्तुत किया है। उनके परस्पर की वार्तालाप को काव्यबद्ध किया है। उससे ऐसा लगता है कि कवि शेखावाटी प्रदेश के किसी भाग के थे जो ढूंढाड प्रदेश की सीमा को भी छूता था। बावनी में दिये गए परिचय के अनुसार वे अग्रवाल जैन थे तथा दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में उत्पन्न हुए थे। कवि ने 'लघुवेलि' में जिस प्रकार जिन धर्म की महत्ता का वर्णन किया है उससे स्पष्ट है कि ये दिगम्बर अनुयायी श्रावक थे।[1] डा० शिवप्रसाद सिंह ने लिखा है कि कवि के जैन होने का कहीं उल्लेख नहीं मिलता।[2] इससे प्रतीत होता है कि उन्होंने कवि का लघु गीत नहीं देखा। पंथी गीत का भाव नहीं समझा। पिता का नाम नाथू जी नल्हिग वंश के थे।[3] इससे अधिक परिचय अभी तक नहीं मिल सका है। खोज जारी है और हो सकता है किसी अन्य सामग्री के उपलब्ध होने पर कवि के सम्बन्ध में पूरा परिचय ही प्राप्त हो जावे।

छीहल रसिक कवि थे। जब उन्होंने पञ्च सहेली गीत की रचना की थी तो लगता है वे युवावस्था में थे। और किसी के विरह में डवे हुए थे। कवि पानी भरने के लिए कुए पर जाते होंगे और उन्होंने वहाँ जो कुछ सुना अथवा देखा उसे छन्दोबद्ध कर दिया। मालिन, छीपन, सोनारिन, तम्बोलिन, आदि जाति की युवतियां वहाँ पानी भरने आती होंगी। जब उसने उनसे अपने अपने विरह की बात सुनायी तो कवि ने उसे छन्दोबद्ध कर दिया। कवि की अब तक ७ रचनाएं उपलब्ध हो चुकी हैं। यद्यपि बावनी को छोड़कर सभी लघु रचनाएं हैं। किन्तु छोटी होने पर भी ये काव्यमय हैं तथा कवि की काव्य-शक्ति को प्रस्तुत करने वाली हैं। सात रचनाओं के नाम मिम्न प्रकार हैं—

१. पञ्च सहेली गीत
२. बावनी
३. पंथी गीत
४. लघु वेली
५. आत्म प्रतिबोध जयमाल

---

१. श्री जिनवर की सेवा कीधी रे मन मूरख आपणा ॥१॥
२. सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य—पृ० १६८।
३. नाल्हिग वंसि नाथू सुतनु अगरवाल कुल प्रगट रवि।
बावनी वसुधा विस्तरी कवि कंकण छीहल कवि ॥५३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६. उदर गीत
७. वैराग्य गीत

१. पञ्च सहेली गीत

यह राजस्थानी भाषा की कृति है। डा० रामकुमार वर्मा ने इसके सम्बन्ध में लिखा है कि इसमें पाच तरुणी स्त्रियों ने मालिन, छीपन, सोनारिन, तम्बोलिन, प्रोषित पतिका नायिका के रूप में अपने प्रियतमों के विरह में, अपने करुण आवेगों का वर्णन अपने पति के व्यवसाय से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं का उल्लेख और तत्सम्बन्धी उपमाओं और रूपकों के सहारे किया है।[1] डा० शिवप्रसाद सिंह ने पञ्च सहेली को १६ वीं शती का अनुपम श्रृंगार काव्य माना है। साथ में यह भी लिखा है कि इस प्रकार का विरह वर्णन उपमानों की इतनी स्वाभाविकता और ताजगी अन्यत्र मिला दुर्लभ है।"[2]

पञ्च सहेली में पांच विभिन्न जाति की स्त्रियों के विरह की कहानी कही गई है। ये स्त्रियां किसी उच्च जाति की न होकर मालिन, तम्बोलिन, छीपन, कलालिन एवं सुनारिन हैं जिनके पति विदेश गये हुए हैं। उनके विरह में वे सभी स्त्रियां समान रूप से व्यथित हैं। कवि ने यह बतलाने का प्रयास किया है कि पति वियोग में प्रोषित पतिका कितनी क्षीणकाय म्लान मुख हो जाती हैं। उनके आंखों में कज्जल, मुख में पान नहीं होता। गले में हार भी नहीं पहना जाता और केश भी सूखे-सूखे लगते हैं। वह हमेशा अनमनी रहती है। तथा लम्बे श्वास लेती है। उनके अधरोष्ठ सूख जाते हैं तथा मुख कुम्हला जाता है।

छीहल कवि जिस किसी नगर के रहने वाले थे, वह सुन्दर था तथा स्वर्ग-लोक के समान था। वहां विशाल महल थे। स्थान-स्थान पर सरोवर थे तथा कुए और बावड़ियों से युक्त था। नगर में सभी ३६ जातियां रहती थीं। लोगों में बहुत चतुरता थी। वे अनेक विद्याओं को जानते थे। तथा वे एक-दूसरे का सम्मान करते थे। नगर की स्त्रियां रूपवती एवं रंभा के समान लावण्यवती थी। नये-नये वस्त्रा-भूषण पहिन कर वे सरोवर पर पानी भरने जाती थी। एक दिन इसी प्रकार नगर की कुछ नवयौवना स्त्रियां वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर सरोवर के पास आईं। उस समय बसन्त था। इसलिए उनमें और भी मादकता थी। उनमें से कुछ गीत गा रही थीं। कुछ झूलना झूल रही थी तथा एक-दूसरे से हास परिहास कर रही

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- पृ० ४४८।
२. सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य—पृ० १७०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थी। लेकिन उनमें पांच सहेलियां ऐसी भी थीं जो न नाचती थी, न गाती थी और न हंसती थी। कवि के शब्दों में उनकी दशा निम्न प्रकार थी—

तिन महि पंच सहेलियां नाचइ गावइ न हसइ।
ना मुख बोलई बोल....... ....॥६॥

नयनह काजल ना दीउ, ना गलि पहिन्दो हार।
मुख तम्बोल न खाईया, ना कछु किया सिंगार ॥१०॥

रूखे केस ना न्हाईया, मइले कप्पड तास।
विलखी वइसी उनमनी, लांवे लेहि उसास ॥११

सुन्दरियों ने जब उन्हें उदास देखा तो उसका कारण जानना चाहा क्योंकि साथ की सहेलियों ने कहा कि वे यौवनवती हैं उनकी देह भी रूप वाली है। फिर इतनी उदासी का क्या कारण है। यह सुनकर उन्होंने मधुर स्वर से अपना-अपना सच्चा दुख निम्न प्रकार कहा—

उन्होने कहा कि वे एक ही घर की अथवा जाति की नहीं अपितु मालिन, तम्बोलिन, छीपन, कलालिन एवं सुनारिन जाति की हैं। लेकिन विरह का कारण सब का समान है। इसलिए एक-एक ने अपने दुख का कारण कहना प्रारम्भ किया—सर्वप्रथम मालिन जाति की यौवना स्त्री ने कहा कि उसका पति उसे छोड़कर परदेश चला गया है। जिसके विरह से वह अत्यधिक दुःखी है। उसका एक दिन एक वर्ष के बराबर व्यतीत होता है। यौवनावस्था में पतिदेव परदेश चले गये हैं। रात्रि दिन आँखों में से आंसू बहते रहते हैं। कमल के समान मुख कुम्हला गया है। सारा बाग सूख गया है। शरीर रूपी वृक्ष पर फूल लगने लगे हैं तथा दोनों नारंगियां रस से ओतप्रोत हैं लेकिन अब वे विरह से सूखने लगी हैं क्योंकि वन को सींचने वाला माली परदेश गया हुआ है।

पहिली बोली मालनी मुझको दुख अनन्त।
बालइ यौवन छांडि कइ, चल्यु दिसाउरि कंत ॥१७॥

निस दिन बहवई पवाल ज्यु, नयनह नीर अपार।
विरहउ माली दुक्ख का सूभर भरया किवार ॥१८॥

कमल वदन कुमलाईया, सूकी सुख वनरइ।
वाझू पीयारइ एक खिन, बरस बराबरि जाइ ॥१९॥

तन तरवर फल लागिया दुइ नारिंग रसपूरि।
सूखन लगा विरह झल, सींचन हारा दूरि ॥२०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूसरी विरहिणी तम्बोलिन थी। वह पति के विरह में इतनी दुर्बल हो गयी थी कि चोली मात्र से ही पूरा शरीर ढक जाता था। वह हाथ मरोड़ती, सिर धुनती और पुकारती। उसका कोमल शरीर जलता। मन में चिन्ता छाये रहती और आंखों से अश्रु धारा कभी रुकती ही नहीं। जब से उसके पिया बिछुड़े तब से ही उसके सुख का सरोवर सूख गया—

हाथ मरोरउ सिर घुनउं, किस सउ करूं पुकार।
तन दाझई मन कलमलइ, नयन न खंडइ धार ॥२५॥
पान झडे सब रूंख के, वेल गई तनि सुक्कि।
दूभरि रति बसंत की, गया पियारा मुक्कि ॥२६॥
हीयरा भीतरि पइसि करि, विरह लगाइ आगि।
प्रीय पानी विनि ना बुझवइ, बलीसि सबली लागि ॥२७॥

छीपन आंखों में आंसू भर कर कहने लगी कि उसके विरह का दुःख वही जानती है, दूसरा कोई नहीं जानता। तन रूपी कपडे को दु.ख रूपी कतरनी से वह दर्जी (प्रियतम) एक साथ तो काटता नहीं है और प्रतिदिन देह को काटता रहता है। विरह ने उसके शरीर को जला कर रख दिया है। उसका सारा रस जला कर उसको नीरस कर दिया है।

तन कपडा दुक्ख कतरनी दरजी विरहा एह।
पूरा व्योंत न व्योंतई, दिन दिन काटइ देह ॥३२॥
दुःख का तागा वीटीया सार सुई कर लेइ।
चीनजि बंधइ अविकाम करि, नान्हा बरवीया देई ॥३३॥
विरहइ गोरी अति दही, देह मजीठ सुरंग।
रस लिया अबटाइ कइ, बाकस कीया अंग ॥३४॥

चौथी कलालिन थी। वह कहने लगी कि उसका शरीर तो भट्टी की तरह जल रहा है। आंखों में से आंसू बरस रहे हैं जो मानों अर्क बन रहा है। उसका भरतार बिना अवगुन के ही उसको कस रहा है। एक तो फागुन का महिना फिर यौवनावस्था, लेकिन उसका प्रियतम इस समय बाहर गया हुआ है इसलिए उसकी याद कर करके वह मर रही है।

मो तन भाटी ज्यूं तपइ, नयन चुबइ मद धारि।
बिन ही अवगुन मुझ सूं, कसकरि रहा भरतार ॥३६॥
माता योवन फाग रिति, परम पियारा दूरि।
रली न पूजै जीव की, मरउ विसूरि विसूरि ॥४२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पांचवी विरहिणी सुनारिन थी। वह तो विरह रूपी समुद्र में इतनी डूब गई थी कि उसका थाह पाना ही कठिन था। उसके अंगों को मदन रूपी सुनार ने हृदय रूपी अंगीठी पर जला जलाकर कोयला कर दिया था। उसके विरह ने तो उसका रूप ही चुरा लिया जिससे उसका सारा शरीर सूना हो गया।

हूं तउ वूडी विरह मइ, पाउं नाहीं थाह ।।४५।।
हीया अंगीट्ठी मसि जिय, मदन सुनार अभंग।
कोयला कीया देह का मिल्या सवेइ सुहाग ।।४६।।

इस प्रकार पांचों विरहिणी स्त्रियों से छीहल कवि ने जब उनके विरह दुःख का वर्णन सुना तो संभवतः वे भी दुःखी हो गये। अन्त में कवि को भी कहना पड़ा कि विरहावस्था ही दुःखावस्था है। जिसमें पल भर को सुख नहीं मिलता।

छीहल वयरी विरह की घडी न पाया सुख।
हम पंचइ तुम्हसउं कह्या, अपना अपना दुःख ।।५१।।

कुछ दिनों पश्चात् फिर वे पांचों मिली। वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने के साथ-साथ उनके पति भी परदेस से वापिस आ गये थे। इसलिए वे हंसने लगीं, गाने लगीं। उस दिन वे पूरे शृंगार में थीं। छीहल ने जब उन्हें हंसते हुए देखा तो उन्होंने फिर उन स्त्रियों से पूछा--

विहसी गावइहि रहिससूं कीया सइ सिंगार।
तब उन पंच सहेलियां, पूंछी दूजी बार ।।५४।।
मइ तुम्ह आमन दूमनी देखी थी उतवार।
अब हूं देखूं विहसती, मोसउ कहउ विचार ।।५५।।

उनका सांई आ गया था। वियोगिन बसन्त ऋतु जा चुकी थी। मिलन की वर्षा ऋतु आ गई थी। मालिन के सुख रूपी पुष्प को पति ने मधुकर बनकर खूब पी लिया था। तम्बोलिन ने चोली खोल कर अपार यौवन भरी देह को निकाला और अपने पति के साथ बहुत प्रकार ये रंग किया। आंखों से आंख मिली और अपूर्व सुख का अनुभव किया।

मालिन का मुख फूल ज्यउं बहुत विगास करेइ।
प्रेम सहित गुन्जार करि, पीय मधुकर सलेइ ।।५८।।
चोली खोल तम्बोलनी काढया गात्र अपार।
रंग कीया बहु प्रीयसुं, नयन मिलाई तार ।।५९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रचना काल

पञ्च सहेली गीत का रचना काल संवत् १५७५ फागुण सुदि पूर्णिमा है। उस दिन होली थी और कवि भी होली के उन्मुक्त आनन्द में ऐसी सरस रचना लिखने में सफल हुए थे। इसलिए स्वयं ने लिखा है कि उसने अपने मन के मधुर भावों से इस रचना को निबद्ध किया है।

मीठे मन के भावते, कीया सरस बखाण।
अण जाण्या गूरिख हंसइ, रीझइ चतुर सुजांण ॥६७॥

भाषा

छीहल राजस्थानी कवि हैं। उनकी कृतियों की भाषा के सम्बन्ध में डा० शिवप्रसाद सिंह ने लिखा है कि कवि की कुछ पाण्डुलिपियाँ व्रजभाषा के निकट है जबकि कुछ पर राजस्थानी प्रभाव ज्यादा है। आमेर शास्त्र भण्डार वाली पाण्डुलिपि को उन्होंने राजस्थानी प्रभावित कहा है। लेकिन अन्त में वे यही निष्कर्ष निकालते हैं कि पञ्च सहेली गीत की भाषा राजस्थानी मिश्रित व्रजभाषा है।[1] अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में इसकी चार प्रतियां हैं जिनमें तीन का नाम तो "पञ्च सहेली री बात" दिया हुआ है।[2] इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रतिलिपिकार उसे राजस्थानी भाषा की कृति मान कर चलते थे। वैसे कृति की अधिकांश शब्दावली राजस्थानी भाषा की है। न्हाईया (११) प्रवालीयां (१२) बालीयां (१३) चल्यु (१७) कुमलाईया (१९) चंपाकेरी (२२) वीछुड्या (२९) आदि शब्द एवं क्रिया पद सभी राजस्थानी भाषा के हैं।

पञ्च सहेली गीत एक लोकप्रिय कृति रही है। राजस्थान के कितने ही शास्त्र भण्डारों में इसकी प्रतियां संग्रहीत है।

१. दि० जैन शास्त्र भण्डार मन्दिर ठोलियान — गुटका संख्या ९७।
२. भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर — गुटका संख्या १३८।
३. शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर चौधरियों का मालपुरा (टोंक) — गुटका संख्या ११।
४. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी केटलाग राजस्थानी सेक्सन नं० ७८ छद सं० ६६ पत्र १९-२२ लिपि काल सं० १७१८।
५. " " " नं० १४२ पृ० ७६–७७।

---

१. सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य—पृ० १७०–७१।
२. वही।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी केटलाग राजस्थानी सेक्सन नं० २१७—अन्त में संस्कृत श्लोक भी दिये हुए हैं।

७. „ „ „ नं० ७७ पत्र सं० ९८–१०२ लिपिकाल संवत् १७४९।

मूल्यांकन

पञ्च सहेली गीत राजस्थानी भाषा की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमें श्रृंगार रस का बहुत ही सूक्ष्म तथा मार्मिक वर्णन हुआ है। वियोग श्रृंगार में विरहिणी नायिकाओं के अनुभावों का चित्रण उन्हीं के शब्दों में इतना संवेद्य और अनुभूतिपरक है कि कोई भी सहृदय विरह की इस दंशकारी वेदना से व्याकुल हुए बिना नहीं रहता।[1] कवि ने उसमें वियोग तथा संयोग दोनों का ही चित्रण कर के साहित्य में एक नयी परम्परा को जन्म दिया है। उन्हीं पांचों स्त्रियों की संयोग में मनोभावों की दशा एकदम बदल जाती है। एक तम्बोलिन की मनोदशा वर्णन में तो कवि ने सब सीमाओं को लांघ दिया है। वास्तव में विरह में और मिलन में यौवना स्त्री की क्या दशा रहती है कवि ने इसका बहुत ही सूक्ष्म हृदय ग्राही वर्णन करके पाठकों को आश्चर्य चकित कर दिया है। भाषा एवं शैली दोनों दृष्टियों से भी पञ्च सहेली गीत एक उत्कृष्ट रचना है। राजस्थानी भाषा साहित्य में इस लघु काव्य को एक महत्त्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिये।

२. बावनी

छीहल कवि की यह दूसरी बड़ी रचना है जिसमें कवि ने कितने ही विषयों को छुआ है। प्रो० कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' के शब्दों मे बावनी में वर्णित नीति और उपदेश के विषय हैं तो प्राचीन पर प्रस्तुतीकरण की मौलिकता, प्रतिपादन की विशदता एवं दृष्टान्त चयन की सूक्ष्मता सर्वत्र विद्यमान है। कवि संस्कृत के सुभाषितों एवं नीतियों का ऋणी हैं। पर उनके अनुवादन अनुधावन मात्र नहीं है।[2] प्रस्तुत कृति भाषा एवं भाव दोनों के परिपाक का उत्तम उदाहरण है। यद्यपि नीति और उपदेशात्मक विषयों का वर्णन बावनी का मुख्य विषय है फिर भी कवि कभी भी काव्य से दूर नहीं हुआ। उसने अपने विषय को नये ढंग एवं नये भावों के साथ अभिव्यक्त किया है।

---

१. सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य—पृ० ३०७।

२. मरुभारती—वर्ष १५ अंक २—पृ० ९।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन विद्वानों ने बावनी संज्ञक काव्य लिखने में आरम्भ से ही रुचि दिखाई है। ये बावनियां किसी एक विषय पर आधारित न होकर विविध विषयों का वर्णन करती हैं। बावनी लिखने वाले कवियों में डूंगरसी, बनारसीदास, जिनहर्ष, दयासागर, ब्र० माणक, मतिशेखर, हेमराज आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। जैन कवि न तो अपने पौराणिक कथानकों में ही बंधे रहे और न उन्होंने सामन्ती के चित्रण में जन सामान्य को भुलाया। जैन काव्य में विराग और कष्ट सहिष्णुता पर बहुत बल दिया गया है। यह भी सत्य है कि इस प्रकार सदाचरण के नीरस उपदेश काव्य को उचित महत्त्व नहीं देते किन्तु यह केवल एक पक्ष है। अपने अध्यात्म जीवन को महत्त्व देते हुए तथा पारलौकिक सुखों के लिए अति सचेष्टा दिखाते हुए भी जैन कवि उन लोगों को नहीं भुला सका जिनके बीच वह जन्म लेता है। उसके मन में अपने आस-पास के लोगों के सुखी जीवन के लिए अपूर्व सदिच्छा भरी हुई है। वह सृष्टि की सारी सम्पत्ति जनता के द्वार पर जुटा देना चाहता है।[1]

बावनी का एक-एक छप्पय नीति के रत्न हैं जो अपनी प्रभा से उद्भासित और प्रकाशित हैं। कवि ने बड़ी सम्यता से मर्यादा, नीति और न्याय के पक्ष का समर्थन करते हुए पाखंडियों और स्वार्थियों की खबर ली हैं। जगत का स्वभाव प्रस्तुत किया है तथा उसमें मानव को अच्छे कार्य करने की प्रेरणा दी है।

प्रस्तुत बावनी का हिन्दी की बावनियों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। आचार्य शुक्ल ने यद्यपि इसमें ५२ दोहे होना लिखा है पर इसमें ५३ छप्पय छन्द हैं जो ओम से प्रारम्भ होकर नगराक्षर क्रम से निबद्ध हैं। क्रम निर्वाह के लिये ओ, औ, क्ष, त्र वर्ण छोड़ दिये गये हैं तथा ङ, एवं ञ के स्थान पर न का तथा ऋ, ॠ, लृ, ॡ, य, व, श, के स्थान पर क्रमशः रि, री, लि, ली, ज, ओ, म, का प्रयोग किया गया है। कई अन्य कवियों द्वारा रचित बावनियों में भी वर्णमाला का यह परिवर्तित रूप पद्य क्रम के लिये प्रयुक्त हुआ है।[2] बावनी के आरम्भिक पांच पदों में आदि अक्षरों के द्वारा ॐ नमः सिद्धं बनता है जो कवि के जैन होने का द्योतक है।

बावनी का प्रथम पद्य मंगलाचरण के रूप में तथा अन्तिम पद्य में कवि ने बावनी का रचना काल एवं स्वयं का परिचय दिया है। इसके शेष छन्द नीति एवं उपदेश परक हैं। कवि ने बावनी में विषय का अथवा नीति एवं उपदेशों का कोई क्रम नहीं रखा है किन्तु जैसा भी उसे रुचिकर प्रतीत हुआ उसी का वर्णन कर दिया।

---

१. सूर पूर्व ब्रज भाषा और साहित्य—पृ० २८१।
२. मरु भारती वर्ष १५ अंक–२ पृ० ९।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय प्रतिपादन

प्रारम्भ में पांच इन्द्रियों के विषयों में यह जीव किस प्रकार उलझा रहता है और अपने मन को अस्थिर कर लेता है। हाथी स्पर्शन इन्द्री के वशीभूत होकर, हरिण श्रवण इन्द्री के कारण अपनी जान गंवा देता है। यही नहीं रसना इन्द्री के कारण मछलियां जाल में फंस जाती हैं। भंवरा एवं पतंग भी इसी तरह जाल में फंसकर अपने जीवन का अन्त कर लेते हैं—

नाद श्रवण धावन्त तजइ मृग प्राण ततष्षिण।
इन्द्री परस गयन्द वास अलि मरइ विचष्षण।
रसना स्वाद विलग्गि मीन वज्झइ देखन्ता।
लोयण लुबुध पतंग पडइ पावक पेषंन्ता।
मृग मीन भंवर कुंजर पतंग, ए सब विणासइ इक्क रसि।
छीहल कहइ रे लोइया, इन्दी राखउ अप्प वसि ।।२।।

कवि ने समस्त जगत को स्वार्थमय बतलाया है। मनुष्य जगत् में आता है और कुछ जीवन के पश्चात् वापिस चला जाता है। यह सब उसी तरह है जैसे फलों से लदे वृक्ष पर पक्षी आकर बैठ जाते हैं और फल समाप्त होने तथा पत्ते झडने पर सब उड़ जाते हैं। उसी तरह मनुष्य जगत् से स्वार्थ के लिए अथवा धन के लिए मित्रता बांधता है और वे मिल जाने के पश्चात् उसे वह भुला बैठता है।

छाया तरुवर पिष्षि आइ, वहु बसै विहंगम।
जब लगि फल सम्पन्न रहै, तब लगि इक संगम।
विहवसि परि अवथ्थ, पत्त फल झरै निरन्तर।
खिण इक तथ्थ न रहइ, जांहि उडि दूर दिसंतर।
छीहल कहै दुम पंखि जिम महि मित्र तणु दव्व लगि।
पर कज्ज न कोऊ वल्ल हो, अप्प सुवारथ सयल जगि ।।२६।।

मनुष्य को थोड़े-थोड़े ही सही लेकिन कुछ अच्छे कार्य करने चाहिए। दूसरों के हित के लिए विनयपूर्वक धन दिन भर देते रहना चाहिए अर्थात् भलाई एवं दान के लिए कोई समय निश्चित नहीं होता। कवि कहता है कि जब तक शरीर में श्वास है तब तक अपने ही हाथों से अपनी सम्पत्ति का उपयोग कर लेना चाहिए क्योंकि मरने के पश्चात् वह उसके लिए बेकार है। कवि ने वीसल राजा की उपमा दी है जो १९ करोड़ का धन जोड़ कर छोड़ गया और उसका जीवन पर्यन्त भोग और दान किसी में भी उपयोग नहीं किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थौरो थौरो मांहि, समय कछु सुकृति कीजइ।
विनय सहित करि हित्त, वित्त सारै दिन दीजइ।
जब लगि सांस सरीर मूढ विलसहु निज हत्थहिं।
मुवा पछै लंपटी, लच्छी लगै नहिं सत्यहिं।
छीहल कहइ बीसल नृपति संचि कोडि उगणीस दव्व।
लाहौ न लियौ भोगव्वि, करि अंतकाल गौ छांडि सव्व ॥३६॥

मनुष्य जीवन भर भविष्य की कल्पना करता रहता है और मृत्यु की ओर जरा भी सचेत नहीं रहता लेकिन जब मृत्यु आती है तो उसकी सब आशाएँ धरी की धरी रह जाती हैं और वह कुछ भी नहीं कर सकता। जिस प्रकार मधुकर कमल पुष्प में बन्द होने के पश्चात् सुखद प्रातःकाल की कल्पना करता है लेकिन उसे यह पता नहीं कि उसके पूर्व ही कोई हाथी आकर उसकी जीवन लीला समाप्त कर सकता है इसलिए भविष्य की आशाओं की कल्पना छोड़कर वर्तमान में अच्छे कार्य कर लेना चाहिए—

भ्रमर इक्क निसि भ्रमै, परौ पंकज के संपुटि।
मन महि मंडै आस, रयणि खिण मांहि जाइ घटि।
करि हैं जलज विकास, सूर परभाति उदय जब।
मधुकर मन चिंतवै, मुक्त ह्वैव हैं बन्धन तब।
छीहल द्विरद ताही समय, सर संपत्तउ दइव वसि।
अलि कमल पत्र पुडइणि सहित, निमिय माहि सौ गयो ग्रसि ॥४३॥

इस प्रकार पूरी बावनी सुभाषितों एवं उपदेशात्मक पद्यों से भरी पड़ी है। उसका प्रत्येक पद्य स्मरणीय है तथा मानव को विपत्ति से बचा कर सुकृत की ओर लगाने वाला है। सभी सुभाषित सम्प्रदाय भावनाओं से दूर किन्तु मानवता तथा विश्व सेवा का पाठ पढ़ाने वाले हैं। मानव को राग, द्वेष, काम, क्रोध, मान एवं माया के चक्कर से बचाने वाले हैं। यही नहीं जगत का वास्तविक स्वरूप को भी प्रस्तुत करने वाले हैं। कवि ने इन पद्यों में अधिक से अधिक भावों को भरने का प्रयास किया है। इसलिए कवि की प्रस्तुत बावनी हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा की सुन्दरतम कृतियों में से है।

भाषा

भाषा की दृष्टि से बावनी राजस्थानी भाषा की कृति है। इसमें अपभ्रंश शब्दों की जो भरमार है वे इसके राजस्थानी रूप को ही व्यक्त करने वाले हैं। डा० शिवप्रसाद सिंह ने बावनी को ब्रजभाषा के विकास की कड़ी के रूप में माना है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो सूरदास के व्रजभाषा का परिवर्त्ती रूप है लेकिन बावनी में व्रज का ही नहीं अपभ्रंश एवं राजस्थानी का भी परिस्कृत रूप देखा जा सकता है।

छीहल कहइ गल गज्जि करि, जो जल उल्हरि देइ घन।
चातक्क नीर ते परि पियैं, ना तो पियासो तजैं तन ।।३४।।

रचना काल

बावनी की रचना संवत् १५८४ कार्तिक सुदी अष्टमी गुरुवार के दिन सम्पन्न हुई थी। कवि ने अपने श्री गुरु का नाम लेकर रचना प्रारम्भ की थी और सरस्वती की कृपा से उसकी यह रचना सानन्द समाप्त हुई थी।

चउरासी अग्गला सइ जु पनरह सवच्छर।
सुकुल पष्ष अष्टमी मास कातिग गुरुवासर।
हृदय उपनी बुद्धि नाम श्री गुरु को लीन्हो।
सारद तणइ पसाइ कवित सपूरण कीन्हो।

कवि का परिचय

बावनी के अन्तिम पद्य में कवि ने अपना परिचय दिया है। वह नाथू का पुत्र था। अग्रवाल जैन जाति में उत्पन्न हुआ था तथा उसका वंश नाल्हिग कहलाता था।

नाल्हिग वंससि नाथू सुतनु अगरवाल कुल प्रगट रवि।
बावन्नी वसुधा विस्तरी, कवि कंकण छीहल्ल कवि ।।५३।।

बावनी अपने समय में लोकप्रिय कृति रही है तथा उसका संग्रह गुटकों में मिलता है जिससे पता चलता है कि पाठक इसे चाव से पढ़ा करते थे। अब तक राजस्थान के जैन ग्रंथागारों में बावनी की निम्न पाण्डुलिपियां उपलब्ध हो चुकी हैं—

१. शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर लूणकरणजी पांडे, जयपुर — गुटका संख्या १४० लेखन काल सं० १७१६ (इसमें २२ से ५३ तक के पद्य हैं)
२. शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर ठोलियान — गुटका संख्या १२५ (इसमें ५० पद्य हैं)
३. भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर — गुटका संख्या ३५ (इसमें ५३ पद्य हैं)
४. उक्त कृतियों के अतिरिक्त, अनूप संस्कृत लायब्रेरी बीकानेर तथा अभय जैन ग्रंथालय बीकानेर में भी बावनियों की पाण्डुलिपियां मिलती हैं।[1]

---

१. सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य पृ० ३७७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार बावनी राजस्थानी भाषा की एक उत्कृष्ट रचना है जिसकी पाण्डुलिपियां राजस्थान के और भी भण्डारों में उपलब्ध हो सकती हैं।

वैराग्य गीत मानव को जीवन में अच्छे कार्य करने के लिए प्रेरणा स्वरूप है। बचपन, यौवन एवं वृद्धावस्था तीनों ही ऐसे ही निकल जाते हैं और जब मृत्यु आती है तो यह मनुष्य हाथ मलने लगता है इसलिए अच्छे कार्य तो जितना जल्दी हो कर लेना चाहिए। यही गीत का सार है जिसको कहने के लिए कवि ने प्रस्तुत गीत निबद्ध किया है।

उदर गीत में कवि कहता है कि सारा जीवन यदि उदर पूर्ति में ही व्यतीत कर दिया और अगले जन्म के लिए कुछ नहीं किया तो यह मनुष्य जीवन धारण करना ही व्यर्थ जावेगा। कवि की भावना है कि प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में ऐसा कोई सुकृत कार्य अवश्य करले जिससे उसका भावी जीवन भी सुधर जावे।

इस प्रकार छीहल कवि की कृतियां राजस्थानी काव्यों में उल्लेखनीय कृतियां हैं। सभी कृतियां जन कल्याण की भावना से लिखी हुई हैं। इनमें शिक्षा है, उपदेश है, नीति और धर्म का पुट है तथा लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों की कहानी प्रस्तुत की गयी है।

□□□

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१. पंच सहेली गीत

नगर वर्णन—

देखा नगर सुहायणा, अधिक सुचंगा थान ।
नाउं चगेरी परगट, जन सुर लोक सुजान ।।१।।

ट्ठाइ मिंदिर सत खिने, सो नइ लिहिया लेहु ।
छीहल तन की उपमा कहत न आवइ छेहउ ।।२।।

ट्ठाइ ट्ठाइ सरवर पेखीया, सू सर भरे निवाण ।
ट्ठाइ कूवा बावरी, सोहइ फटक समान ।।३।।

पवन छतीसी तिहां वसइ, अति चतुराई लोक ।
गुम विद्या रस आगला, जानइ परिमल लोग ।।४।।

तिहा ठइ नारी पेखीयइ, रंभा केउ निहारि ।
रूप कंत ते आगली, अवर नहीं संसार ।।५।।

पहरि सभाया आभरण, अर दख्यण के चीर ।
वहुत सहेली साथि मिलि, आई सरवर तीर ।।६।।

चोवा चंदन थाल भरि, परिमल पहुप अनंत ।
खंडइ बीडी पान की, खेलहु सखी बसंत ।।७।।

केइ गावइ मधुर धुनि, केइ देवहि रास ।
केइ हीडोलइ हीडती, इह विधि करइ विलास ।।८।।

तिन मांहि पंच सहेलियां, नाचइ गावहि ना हसइ ।
ना मुखि बोलइ बोल............ ....।।९।।

नयनह काजल ना दीउ, ना गलि पहिन्दो हार ।
मुख तंबोल न खाईया, ना कछु कीया सिंगार ।।१०।।

रूखे केस ना न्हाईया, मइले कप्पड तास ।
विलखी बइसी उनमनी, लांबे लेहि उसास ।।११।।

सूके अहर प्रवालीयां, अति कुमलाणा मुख ।
तउ मइं बूझी जाइ कह, तुम्ह कहउ केतउ दुख ।।१२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दीसय योवन बालिया, रूप दीपंती देह ।
मोसउं कहउ विचार, जाति तुम्हरी केह ।।१३।।

तउ ऊनि सच आखीया, मीठा बोल अपार ।
ना वह मारी जाति की, छीहल्ल सुनहु विचार ।।१४।।

मालन अर तंबोलनी, त्रीजी छीपनि नारि ।
चउथी जाति कलालनी, पंचमी सुनारि ।।१५।।

जाति कही हम तम्ह सउ, अब सुनि दुख हमार ।
तुम्ह तउ सुगना आदमी, लहउ विराणी सार ।।१६।।

मालिन की विरह व्यथा--

पहिली बोली मालनी, मुझं कूं दुख अनंत ।
बालइ योवन छंडि कइ, चल्यु दिसाउरि कंत ।।१७।।

निस दिन बहइ पवालज्यु, नयनह नीर अपार ।
विरहउ माली दुक्ख का, सूभर भरचा किनार ।।१८।।

कमल वदन कुमलाईया, सूकी सूख वनराइ ।
वाझू पीया रइ एक षिन, वरस बरावरि जाइ ।।१९।।

तन तरवर फल लग्गीया, दुइ नारिंग रस पूरि ।
सूकन लागा विरह फल, सींचन हारा दूरि ।।२०।।

मन बाडी गुण फूलडा, प्रीय नित लेता बास ।
अब इह थानकि रात दिन, पीडइ विरह उदास ।।२१।।

चंपा केरी पंखडी, गूंथ्या नव सर हार ।
जइ इहु पहिरउ पीव विन, लागइ अंग अगार ।।२२।।

मालनि अपना दु:ख का, विवरा कह्या विचार ।
अब तूं वेदन आपनी, आखि तंबोलन नार ।।२३।।

तम्बोलिन की विरह व्यथा—

दूजी कहइ तंबोलनी, सुनि चतुराई बात ।
विरहइ मार्‌या पीव विन, चोली भीतरि गात ।।२४।।

हाथ मरोरउ सिर धन्यु, किस सउं कहु पोकार ।
जउती राता बालहा, करइ न हम दिस भार ।।२५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पान झडे सब रूंख के, वेल गई तनि सुक्कि ।
दूभरि रति बसंत की, गया पीयरा मुक्कि ॥२६॥

हीयरा भीतरि पइसि करि, विरह लगाई आगि ।
प्रीय पानी विनि नां वूझवइ, वलीसि सबली लागी ॥२७॥

तन बाली विरहउ दहइ, परीया दुक्ख असेसि ।
ए दिन दुभरि कउं भरइ, छाया प्रीय परदेसि ॥२८॥

जब थी बालम वीछुड्या, नाठा सरिवरि सुख ।
छीहल मो तन विरह का, नित्त नवेला दुख ॥२९॥

कहउ तंबोलनि आप दुक्ख, अब कहि छीपन एह ।
पीव चलंतइ तुझसउं, विरहइ कीया छेह ॥३०॥

छीपन का विरह वर्णन—

त्रीजी छीपनि आखीया, भरि दुइ लोचन नीर ।
दूजा कोइ न जानही, मेरइ जीय की पीर ॥३१॥

तन कपडा दुक्ख कतरनी, दरजी विरहा एह ।
पूरा व्योत न व्योतइ, दिन दिन काटइ देह ॥३१॥

दुक्ख का तागा वाटीया, सार सुई कर लेइ ।
चीनजि बंधइ अवि काम करि, नान्हा वखीया देइ ॥३३॥

विइहइ गोरी अतिदही, देह मजीठ सुरंग ।
रस लीया अवटाइ कइ, बाकस कीया अंग ॥३४॥

माड मरोरी निचोरि कइ, खार दिया दुख अंति ।
इहु हमारे जीव कहुं, मइ न करी इहु भ्रंति ॥३५॥

सुख नाठा दुख संचरचा, देही करि दहि छार ।
विरहइ कीया कंत वनि, इम अम्ह सु उपगार ॥३६॥

कलालिन का विरह—

छीपनि कहया विचार करि, अपना सुख दुख रोइ ।
अबहि कलालनि आखि तुं, विरहइ याई सोइ ॥३७॥

चउथी दुख सरीर का, लागी कहन कलालि ।
हीयरह प्रीयका प्रेम की, नित्त खटूकइ भालि ॥३८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोतन भाठी ज्युं तपइ, नयन चुवइ मद वारि।
विनही अवगुन मुझ सुं, कस कर रह्या भरतार ॥३९॥

देखिइ केली तइ दई, विरह लगाई घाइ।
वालंभ उलटा हुइ रह्या, परउप छारी खाइ ॥४०॥

इस विहरइ के कारणइ, धन बहु दारू कीय।
चित्त का चेतन ट्टाहस्या, गया पीयरा लेय जीय ॥४१॥

माता योवन फाग रिति, परम पीयारा दूरि।
रली न पूरी जीयकी, मरउ विसूरि विसूरि ॥४२॥

हीयरा भीतरि झूर रहुं, करूं घणेरा सोस।
बइरी हुआ वालहा, विहरइ किसका दोस ॥४३॥

मोसउं व्युरा विरह का, कह्या कलालन नारि।
इहु कुछ्छ दुख सरीर महि, सो तु आखि सुनारि ॥४४॥

सुनारिन की व्यथा—

कहइ सुनारी पंचमी, अंग उपना दाह।
हूं तउ बूडी विरह मइ, पाउं नाही थाह ॥४५॥

हीया अंगीठ्ठी मूसि जिय, मदन सुनार अभंग।
कोयला कीया देह का, मिल्या सवेइ सुहाग ॥४६॥

टंका कलिया दुख का, रेती न देइ धीर।
मासा मांसा न मूकीया, सोध्या सब सरीर ॥४७॥

विहरह रूप बुराइया, सूना हुआ मुझ जीव।
किस हइ पुकारूं जाइ कइ, अब घरि नाही पीव ॥४८॥

तन तोले कंटउ घरी, देखी किस किस जाइ।
विरहा कुंड सुनार ज्युउं, घडी फिराय पिराइ ॥४९॥

खोटी वेदन विरह की, मेरो हीयरो माहि।
निसि दिन काया कलमलइ, नां सुख धूपनि छांह ॥५०॥

छीहल वयरी विरह की, घडी न पाया सुख।
हम पंचइ तुम्ह सउं कह्या, अपना अपना दुख ॥५१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहि करि पंचउ चलीयां, अपने दुख का छेह।
बाहुरि वइ दूजी मिली, जवह धड़ूक्या मेह ॥५२॥

मुइं नीली धन पूंवरि, गुनिहि चमकी वीज।
बहुत सखी के झूड मई, खेलन आइ तीज ॥५३॥

विहसी गावइ हि रहिससुं, कीया सह संगार।
तब उन पंच सहेलीयां, पूछी दूजी वार ॥५४॥

छीहल का पांचों स्त्रियों से पुर्नमिलन—

मइं तुम्ह आमन दूमनी, देखी थी उतवार।
अब हुं देखुं विहसती, मोसउं कहउ विचार ॥५५॥

छीहल हम तउ तुम्ह सउं, कहती हइ सतभाइ।
सांई आया रहससुं, ए दिन सुख माहि जाइ ॥५६॥

गया वसंत वियोग मइ, अर धुप काला मास।
पावस रिति पीय आवीया, पूगी मन की आस ॥५७॥

मालनि का मुख फूल ज्यउं, बहुत विगास करेइ।
प्रेम सहित गुंजार करि, पीय मधुकर सलेइ ॥५८॥

चोली खोल तंबोलनी, काढ्या गात्र अपार।
रंग कीया बहु प्रीयसुं, नयन मिलाई तार ॥५९॥

छीपनि करइ वधाईयां, जउ सब आए दिट्ठ।
अति रंगिराती प्रीयसु, ज्यउं कापडइ मजीठ ॥६०॥

योवन बालइ लटकती, रसि कसि भरी कलालि।
हसि हसि लागइ प्रीय गलि, करि करि बहुती आलि ॥६१॥

मालनि तिलक दीपाईया, कीया सिंगार अनूप।
आया पीय सुनारि का, चढ्या चवगणा रूप ॥६२॥

पी आया सुख संपज्या, पूगी सबइ जगीस।
तब वह पंचइ कांमिनी, लागी दयन असीस ॥६३॥

हुंउ वारी तेरे बोलकुं, जहि वरणवी सुट्ठाइ।
छीहल हम जग मांहि रही, रह्या हमारा नाव ॥६४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धनिस मंदिर धन्न दिन, धनस पावस एह ।
धन्न वल्लभ घरि आईया, धनस वुट्ठा मेह ॥६५॥

निस दिन जाइ आनंद मइ, विलसइ बहु विध भोग ।
छीहल्ल पंचइ कामिनी, आई पीय संजोग ॥६६॥

मीठे मन के भावते, कीया सरस वखाण ।
अण जाण्या मूरिख हसइ, रीझइ चतुर सुजांण ॥६७॥

संवत् पनर पचहुत्तरइ, पूंनिम फागुण मास ।
पंच सहेली वरणवी, कवि छीहल्ल परगास ॥६८॥

॥ इति पंच सहेली गीत सम्पूर्ण ॥

लिख्यतं परोपकाराय ॥ श्री रस्तु ॥

□ □ □

गुटका संख्या ६६ । पत्र संख्या ११–१२ । शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर लूणकरणजी पांडे, जयपुर ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२. बावनी

ओंकार आकार, रहित अविगति अपरम्पर ।
अलख अजोनी संभ, सृष्टिकरता विश्वम्भर ।
घट घट अन्तर वसइ, तासु चीन्हइ नहि कोई ।
जल थलि सुरगि पयालि, जिहां देखो तिहँ सोई ।
जोगिन्द सिद्ध मुनिवर जिके, प्रबल महातप सद्धयो ।
छीहल्ल कहइ अस पुरुष को, किण ही अन्त न लद्धयो ।।१।।

नाद श्रवण ध्यावन्त, तजइ मृग प्राण ततष्षिण ।
इन्द्री परस गयन्द, वास अलि मरइ विचष्षण ।
रसना स्वाद विलग्गि, मीन बज्झइ देषन्ता ।
लोयण लुबुध पतंग, पडइ पावक पेषन्ता ।
मृग मीन भंवर कुंजर पतंग, ए सब विणसइ इक्क रसि ।
छीहल कहइ रे लोइया, इन्दी राषउ अप्प वसि ।।२।।

मृग वन मज्झि चंरति, डरिउ पारधी पिक्खि तिहि ।
जब पाछिउ पुनि चल्यो, वधिक रोपियउ फंद तिहि ।
दिसि दाहिणी सु स्वान, सिंह ज्युं सनमुष धावै ।
वाम अगिनि परजलिय, तासु भय जाण न पावै ।
छीहल्ल गमण चहुं दिसि नहीं, चित चिंता चिंतउ हरण ।
हा हा देव संकट परयो, तुझ बिन अवर न को सरण ।।३।।

सबल पवन उतपन्न, अगिनि उडि फंद दहे सब ।
ततषिण धन बरसंत, तेज दावानल गो तब ।
दिसि दाहिणी जु स्वान, पेषि जंवुक को धायउ ।
जब जान्यो मृत जात, चित्त पारधी रिसायउ ।
ताणंत[1] धनुष[2] गुण तुट्टिगो, दिसि च्यारउ मुगती भई ।
छीहल न को मारवि सकै, जिहि रष्षण हारा दई ।।४।।

---

१. अमचिन्त
२. बाण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धन्य ति नर सलहिजै, जे हि परकज्जु संवारण ।
भीर सहै तन आपु, सामि संकट्ट उवारण ।
कंधो धर कुल मज्झि, सभा सिंगार सुलक्खण ।
विनयवंत बड़-चित्त, अवनि उपगार विचष्षण ।
आचार[1] सहित अति हित्त सौ, धरम नेम पालै घणौ ।
पर तरुणि पेष्षि छीहल कहै, सील न षंडइ आपणौ ।।५।।

अवनि अमर नहिं कोई, सिद्ध साधक अरु मुनिवर ।
गण गंधर्व मनुष्य, जिष्ष किन्नर असुरासुर ।
पन्नग पावक उदधि, भार तरुवर अष्टादस ।
ध्रुव[2] नषित्र ससि सुर, अन्त सब षपै काल बस ।
प्रस्ताव पिष्षि रे नर चतुर, तां लगि कीजइ ऊंच कर ।
तिहुं भुवन मज्झि छीहल कहइ, सदा एक कीरति अमर ।।६।।

आवति जाचक[3] पेखि, द्वार सम देहु मूढ नर ।
मिष्ट वयण बुल्लियइ, विनय कीजइ बहु आदर ।
दिन दस अवसर पेखि, वित्त विलसियै सुजस लगि ।
षिण रीती षिण भरी, रहिटी घटी सारिस लगि ।
चिरकाल दसा निहचल नहीं, जिमि ऊगई तिमि आथमण ।
पलटियैं दसा छीहल कहइ, बहुरी बात पुच्छै[4] कवण ।।७।।

इन्दी पंचिय अथ्थि, सकति जब लगि घट निर्मल ।
जरा जंजीरी दूरि, षीण न हुवै आयुबल ।
तब लगि भल पण, दान-पुण्य करि लेहु विचष्षण ।
जब जम पहुंचइ आइ, सबै भूलिहइ ततष्षिण ।
छीहल कहइ पावक प्रबल, जिमि घर पुर पट्टण दहइ ।
तिणि काल कूप जो सुद्दियइ, सो उद्यम किमि निरवहइ ।।८।।

ईस ललाटहं मज्झि, गेह कीयौ सु निरन्तर ।
चहुं दिसि सुरसरि सहित, वास तसु कीजइ अन्तर ।

---

१. आधार
२. ध्रू नव ग्रह
३. संपति बार बार
४. बूझइ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पावक प्रवल समीपि, रहइ रखवाल रयणि दिन ।
प्रतिहार विसहर बलिष्ट, सोवइ नहि इकु छिन ।
अति जतन्न छीहल कहै, हर मस्तक हिमकर रहइ ।
पूर्व लेख चूकै नहीं, तऊ राहु ससि को ग्रहइ ॥६॥

उदरि मज्झि दस मासु, पिंड पाइयै[1] बहुत दुख ।
उर्ध होइ दुइ चरण, रयणि दिन रहइ अधोमुख ।
गरभ अवस्था अधिक जाणि. चिंता चितै चित्त ।
जो छूटो इहि बार, बहुरि करहौं निज सुकृत ।
बोलइ जु बोल संकट पडइ, बहुरि जन्म जग महि भयो ।
लागी जु वाउ छीहल कहइ, सवै मूढ बीसरि गयो ॥१०॥

ऊसरि फागुण मास, मेह बरसइ घोरंकरि ।
विधवा पतिव्रत तणो, रूप जोवण आनन परि ।
कवियण गुण विस्तार, नृपति अविवेकी आगे ।
सुपनन्तर की लच्छि, हाथ आवइ नहि जागे ।
करवाल कृपण कायर करहं, सुन्न[2] गेह दीपक्क ज्युं ।
कवि छीहल अकारण एह सव, विनय जु कीज्यै नीच स्युं ॥११॥

रितु ग्रीषम रवि किरण, प्रबल आंगइ निरन्तर ।
पावक सलिल समूह, अधर झिल्लउ धारा धर ।
सीतकाल सीतल तुषार, दूरन्तर टाल्यउ ।
पत्त सही दुखत्थ, अधिक मित्तप्पण पाल्यउ ।
रे रे पलास छीहल कहै, धिक धिक जीवन तुझ तणो ।
फुल्लयो पत्त अब मूढ तजि, ए अजुत्त कीधो घणो ॥१२॥

रीति होइ सो भरै, भरी खिण इक वै ढालै ।
राई मेर समाणि, मेर जड सहित उषाले ।
उदधि सोषि थल करै, थलहिं जल पूरि रहै अति ।
नृपति मंगावइ भीख, रंक कूं थपै छत्रपति ।
सब विधि समर्थ भजन घडन, कवि छीहल इमि उच्चरै ।
इक निमिष मांहि करता, पुरुष करण चहै सोई करै ॥१३॥

---

१. देखियै
२. सुनि मेह दीपक ज्युं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिषा तणइ परमाणि, राम लष्षण वनवासी ।
सीय निसाचर हरी, भई द्रोपदि पुनि दासी ।
कुंती सुन वैराट गेह, सेवक होइ रहिया ।
नीर भर्यो हरिचंद, नीच घर बहु दुख सहिया ।
आपदा पडी परिग्रह तजि, भ्रमे[1] इकेलउ नृपति नल ।
छीहल कहइ सुर नर असुर, कर्म रेष व्यापइ सकल ।।१४।।

लीन्ह कुदाली हत्थ प्रथम, षोदियउ रोस करि ।
करि रासभ आरूढ, घालि आणियउ गूण भरि ।
देकरि लत्त प्रहार, मूढ गहि चक्क चढायौ ।
पुनरपि हत्थहिं कूटि, धूप धरि अधिक सुकायौ ।
दीन्हीं जु अगिनि छीहल कहइ, कुंभ कहइ हउं सहिउं सब ।
पर तरुणि आइ टकराहणौ, ए दुख सालइ मोहि अब ।।१५।।

ए जु पयोहर जुगल, अबल उरि मज्झि उपन्ना ।
अति उन्नत अति कठिन, कनक घट जेम रवन्ना ।
कहि छीहल षिण इक्क, दृष्टि देषतां चतुर नर ।
धरणि पडइ मुरझाइ, पीर उपजत चित अन्तर ।
विधना विचित्र विधि चित्त करि, ता लगि कीन्हउ कृष्णमुख ।
होय श्याम वदन तिह नर तणौ, जो पर हृदय देइ दुख ।।१६।।

ए ए तूं द्रुमराइ, न्याइ गरुवत्तण तेरो ।
प्रथम विहंगम लच्छ, आइ तहं लीयो बसेरो ।
फल भुंजै रस पिये, अद्र संतोषइ काया ।
दुष्ष सहै तन अप्प, करइ अवरन कूं छाया ।
उपकार लगै छीहल कहइ, धनि धनि तू तरुवर सुयण ।
संचइ जिमि संपइ उदधि पर, कज्जि न आवै ते कृपण ।।१७।।

अमृत जिमि सुरसाल, चवति धुनि वदन सुहाई ।
पंषिन मंहि परसिद्ध, लहैं सो अधिक बडाई ।
अब वृक्ष मंहि बसइ, ग्रसइ निर्मल फल सोई ।
ये गुण कोकिल अंग, पेषि बंदहि नहिं कोई ।

१. भग्यो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पापिष्ठ नीच पंजन सुतो, करम सदा क्रमि मल भुगति ।
छीहल्ल ताहि पूजइ जगत, करम तणी विपरीत गति ।।१८।।

अहनिस मज्जै मच्छ, कच्छ जल मज्झि रहै नित ।
मौन सहित बक ध्यान, रहै लवलीन इक्क चित ।
ऊदर गुफा निवास, भसम गादहो चढावइ ।
पवन अहारी सर्प, अंग गाडरी मुडावइ ।
इनि मांहि कहउ किण पद लह्यौ, कहा जोग साँचै जुगति ।
छीहल कहै निष्फल सबै, भाव बिना न हुवै मुगति ।।१९।।

कबहूं सिर धरि छत्र, चढवि सुष्षासन धावइ ।
कबहूं इकेलौ भ्रमै, पाइ पाणही न पावइ ।
कबहिं अठारह भष्ष, करइ भोजन मन बंछित ।
कबहिं न षलु संपजइ, षुधा पीडत कलपै चित्त ।
लभैं न कबहूं तृण सथ्थरौ, कबहि रमइ तिय भाव रसि ।
बहु भाइ छंद छीहल कहइ, नर चित नच्चइ देव बसी ।।२०।।

खत्तिय रणि भंज्जनो, विप्प आचार विहीणौ ।
तपीयै जीति कइ अंगि, रहै चित लालच क्षीणौ ।
तीय जु अति निर्लज्ज, लज्ज तजि घरि घरि डोलइ ।
सभा मांहि मुषि देखि, साषि जउ कूडी बोलइ ।
सेवक स्वामी द्रोह करि, संग रहइ न इक्क षिण ।
छीहल कहइ सो परिहरि, नृपति होइ विवेक बिण ।।२१।।

गरब न कर गुणहीन, अरे कंचन के गिरवर ।
तो समीपि पाषाण, अथ्थि तरुवर ते तरुवर ।
किये न अप्प अमांन, वृथा गुरुवत्तण तेरउ ।
मलयाचल सलहिजै, सुजस तस संगति केरउ ।
कटु तिक्त कुटिल परिमल रहित, तरू अनंत जे वन थया ।
श्री षंड संगि छीहल कहइ, ते समस्त चंदन भया ।।२२।।

घरी घरी नृप द्वार[1], एह घडियालउ बज्जै ।
कहै पुकारि पुकारि, आउ षिणही षिण छीज्जै ।

---

१. गेहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संपति सांस सरीर, सदा नर नाहीं निसचल ।
पुरइणि पत्र पंतत वूंद जल लव जिमि चंचल ।
इमि जानि जगत जातौ, सकल चित चेतौ रे मूढ नर ।
ऊवरै जु तौ छीहल कहइ, दीजिइ दाहिण उच्चकर ।।२३।।

ग्यान वंत सुकुलीरण, पुरुष जो हो धनहीनां ।
विषम अवस्था पडइ, वयरण नहीं भाषै दीनां ।
नीच करम नहि करइ, रोरु जो अधिक सतावइ ।
वरि मरिबौ अंग वै, निमिष सो नाक न नावइ ।
छीहल कहै मृगपति सदा, मृग आमिष्ष भष्षन करै ।
जो वहुत दिवस लंघण परै, तऊ न केहरि तृरण चरै ।।२४।।

चैत मास बनराइ, फलहि फुल्लहि तरुवर सहि ।
तो[1] क्यों दोस बसन्त, पत्त होवइ करीर नहु ।
दिवस उलूक ज्युं अंध, ततौ रवि को नहि अवगुण ।
चातक नीर न लहइ, नत्थि दूषरण बरसत घण ।
दुष सुष दईव जो निर्मयौ, लिषि ललाटा सोइ लहइ ।
विषमाद न करि रे मूढ नर, कर्म दोष छीहल कहइ ।।२५।।

छाया तरुवर पिष्षि, आइ वहु बसैं विहंगम ।
जब लगि फल सम्पन्न, रहैं तब लगि इक संगम ।
विहवसि परि अवथ्थ, पत्त फल झरै निरन्तर ।
षिरण इक तथ्थ न रहइ, जांहि उडि दूर दिसंतर ।
छीहल कहै द्रुम पंषि जिम, महि मित्त तरगु दब्ब लगि ।
पर कज्ज न कोऊ वल्ल हौ, अप्प सुवारथ सयल जगि ।।२६।।

जलज बीज जल मज्झि, तरुणि[2] रूप्पसि किहि कारण ।
मो मन इच्छा एह, अमरवल्ली विस्तारण ।
सुंदरि इहि संसार, किया कोइ किरत न जाणइ ।
जे गुण लषउ करोरि, सुतौ अवगुण करि मानइ ।
अवला अयानि इक सिष्ष सुनि, जौ फुल्लै उल्लास भरी ।
छीहल कहै एइ कमल, तब करि हैं तूम्र वदन सरि ।।२७।।

---

१. ता किम
२. वरणतरपिसि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

झीण लंक पदमिणी, सेजि नहीं रमी सुरति रस।
अरियण असिवर धार, त्रास कीन्हैं न अप्प वस।
सुज्जस कज्ज संसार, दब्ब दीनौं न सुपत्तह।
बोरे अपणइ चहुत, चाव पिष्पियो न चित्तह।
कर्‌यौ न सुकृत के करम मन, कलि अवतरि छीहल्ल भनि।
उद्यान मज्झि जिमि मालती, तिमि नर जनम अकियथि गिनि ॥२८॥

निरमल चित्त पवित्त, सदा अच्छै उत्तम मति।
जो उह बसइ कुठांइ, तासु नहि भिदै कुसंगति।
तिह समीपि सठ बहुत, मिलिब जो करइ कुलच्छण।
सुभ सुभाव आपणी, तऊ मुक्कइ न विचच्छण।
श्रीषंड संग जिम रयणि दिन, अहि असंपि बेठ्यौ रहै।
तद्वपि सुबास सीतल मलय, विष न होय छीहल कहै ॥२९॥

टलै न पुब्व निबद्ध, मित्त मत दीनो भाषे।
जब आयुर्बल घटै, षिनक तब कोइ न राषै।
विनय न करि अनकाज, मूढ जन जन के आगै।
गुरूवत्तन मम हारि, लोभ लिषमी कै लागै।
आवै अवसर अनपार थी, जेम मीचु तिम जानि धन।
छीहल्ल कहै द्रिढ संग्रहौ, मान न मुक्कौ निज रतन ॥३०॥

ठाकुर मित्त जु जाणि, मूढ हरषइ जे चित्तह।
निज तिय तणउ विसास, करइ जिय महि जे मित्तह।
सरप सुनार रू पारस रस, जे प्रीति लगावहि।
वेस्या अपणी जाणि, छयल जे छन्द उछावहि।
बिरचंत बार इन कहुं नहीं, मूरिख नर जे रूचिया।
छीहल्ल कहइ संसार मंहि, ते नर अति विगूचिया ॥३१॥

डरपइ दादुर सद्द, बांह घालै केहरि गलि।
बूडइ कूंडइ नीर, तिरै नद जाइ अथगि जल।
मरइ फूल कै भार, सीस धरि पर्वत टालइ।
कंपई ऊंदरि देखि, पकरि धरि कुंजर रालइ।
सींदरी देखि संकै सदा, विषहर को बल वट ग्रहइ।
छीहल सुकवि जंपइ वयण, तिरिय चरित्र को नवि लहइ ॥३२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ढोलि कुंभ जे अमी, सोइ पूरंति सुरा जलि।
कसतूरी परिहरइ, नीच संग्रहइ कथू षलि।
कंचरण पीतलि तणौ, जहाँ कोइ भेद न जाएँ।
तरूवर अंब उपारि, अरंड रोपे तिहि थाएँ।
गुण छांडि निगुरण जड मानियै, जस तजि अपजस संचियै।
सो थान सुकवि छीहल कहै, दूरन्तर ही बंचियै ।।३३।।

णिसि वासर जिय आस, बसै उन बूंदन केरी।
चंचु न बोरइ अवर, ठांउ नदि तिथ्थ घनेरी।
आदर विण घर सलिल, पिष्षि परिहरइ ततच्छण।
सरवर निर्झर कूअ, सीस नावइ न विचच्छण।
छीहल्ल कहइ गल गज्जि करि, जो जल उल्हरि देइ घन।
चातक्क नीर ते परि पियै, न तो पियासौ तजै तन ।।३४।।

तरू कदली कुहकंत, कीर ऊंचौ द्रुम दिठ्ठौ।
कोमल फल तजि मूढ, जाइ नालेर बइठ्ठौ।
छुधा प्रबल तनि भइ, ग्रसन कंह ठुंकज दिन्नी।
आसा भइ निरास, चंचु विधना हर लिन्नी।
मति हीरण पंषि छीहल कहइ, सिर धुनि रोवइ भरि नयण।
सुक जेम सु नर पछिताइ हैं, जे होईहि संतोष विण ।।३५।।

थौरो थौरो मांहि, समय कछु सुकृति कीजइ।
विनय सहित करि हित्त, वित्त सारै दिन दीजइ।
जब लगि सांस सरीर, मूढ विलसहु निज हत्थहिं।
मुवा पछै लंपटी, लच्छि लग्गै नहिं सत्थहिं।
छीहल कहइ बीसल नृपति, संचि कोडि उगणीस दव्वु।
लाहो न लियौ भोगब्बि करि, अंतकाल गो छांडि सव्वु ।।३६।।

दरबु गाडि जिन घरहिं, धरो किछु काम न आवइ।
विलसि न लाहो लेइ, सु तो पाछै पछतावइ।
नर नरिंद नर मुवनि, संचि संपइ जे मूवा।
तैं वसुधा मैं बहुरि, जनमि सूकर कै हूवा।
धनकाज अधोमुष दसन सिउं, धरणि विदारहि रयणि दिन।
छीहल्ल कहइ सोचत फिरै, कहूं न पावहिं पुण्य बिण ।।३७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धन ज्युं ललाटहिं लिष्यौ, तुच्छ बहुतौ विधि अच्छर।
सो न मिटैं सुनि मूढ झंप दीजइ रयणायर ।
रचि करि कोडि उपाय, सकल संसारहिं धावइ।
पौरुष जाणि विनाणि कियै कछु अधिक न पावइ।
छीहल्ल कहै जहं जहं फिरइ कर्म बंध तहं तहं लहै।
पिष्षौ यह कूअ समुद्र महं घट प्रमाणि जल संग्रहै ।।३८।।

नीच सरिस नहीं प्रीति, बैर कीजइ न अवस करि।
मध्य भाइ आछियै, संग छांडिय दूरंतरि ।
हित अथवा अनहित, चित चितवै बुरि मति ।
निसचय सुख की हानि, दुष उपजै दहूं गति।
छीहल कहै पिषहु प्रगट, कर अंगारहिं कोउ धरै।
दाझै निबद्ध तातौ लियै, सीरौ कारौ कर करै ।।३९।।

पत्त सुतौ अति तुच्छ काज नहिं आवै कत्थह ।
फल वाकस रसहीण, छांह निंदीअ कियथ्यह ।
साषा कंटक कोटि, लेइ पंषी न बसेरउ ।
छीहल गुणियन कहइ, कौन गुण वरणौ तेरउ ।
र रे बवुलनि लच्छण निलज, पापी परहु न उपगरै।
जो देहि फूल फल अवर तरू, तिनहुं की रष्षा करै ।।४०।।

फिर चउरासी लष्ष, जोणि लद्धो मानुष जम।
सो निसफल न गंवाइ, मूढ कीजइ सुकृत क्रम।
कनक कचोली मज्झि. मूढ भरि छारिन नाखिसि।
कल्पवृक्ष उष्षेलि, मूढ एण्डम रष्षिसि ।
वायस्सि उडावण कारणौ, चिंतामणि क्यों रालियै।
छीहल कहै पीयूष सौं, नाऊ पांव पषालियै ।।४१।।

बसुधा विश्वामित्र, सरिस जे तपिय गरिट्ठा।
संपति ते भोगवै, रहै वनषंडहि बैठा ।
लोभ मोह परिहरै, किया इन्द्री पंचे बस।
तरुणि वदन निरषंत, तेइ पुनि परइ काम रस।
आहार करहिं षटरस सहित, पंचामृत जुगति सिम।
छीहल्ल कहै तिहि पुरुष कौ, इन्द्री निग्रह होइ किम ।।४२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भ्रमर इक्क निसि भ्रमै, परौ पंकज के संपुटि ।
मन मंहि मंडै ग्रास, रयणि षिण मांहि जाइ घटि ।
करि हैं जलज विकास, सूर परभाति उदय जव ।
मधुकर मन चितवै, मुक्त ह्वं हैं बन्धन तव ।
छीहल द्विरद ताही समय, सर संपत्तउ दइव ब्रसि ।
ग्रलि कमल पत्र पुडइणि सहित, निमिष मांहि सौ गयौ ग्रसि ।।४३।।

मग्गि चलहु कुलवहि, जेणि विकसै मुख[1] सज्जन ।
होइ न जस की हांणि, पिष्षि करि हंसइ न दुज्जन ।
जप तप संजम नेम, धर्म ग्राचार न मुक्कइ ।
परमष्षर निज एह, क्रिया ग्रापनी न चुक्कइ ।
पर तरुणि पाप ग्रपवाद परि दूरन्तर ही परिहरउ ।
मन वचन काय छीहल कहैं, पर उपकारहि चित धरउ ।।४४।।

जब लगि तरुवर राइ, फुल्लि करि फलिय विवह परि ।
तब लगि कंटक कोटि, रहै चहु दिसा वेढि करि ।
पंषी ग्रासा लुद्ध, त्रिष्ष तक्कवि जो ग्रावइ ।
फल पुनि हथ्थ न चढै, छांह विश्राम न पावइ ।
छीहल्ल कहै हो ग्रंब सुणि, यह ग्रवगुण संपति थियै ।
तो सदा काल निरफल फलौ, जिहि सुख छांह बिलंबियै ।।४५।।

रे रे दीपक नीच, लष्ष ग्रवगुण तुग्र ग्रंगह ।
पत्तहि करइ कुपत्त, प्रकृति सुभाव मलिन रंगह ।
वत्तिय गुण निरदहण, तैल सनेह घटावन ।
जिहि थानक तू होइ, तिहां कालिमा लगावन ।
छीहल्ल कहै वासर समय, मान न लम्मै इक्क चुष ।
जौ सहस किरण रवि ग्रथ्थवइ, तौ जग जोवै तुज्झ मुष ।।४६।।

लछण ससि कहं दीन्ह, कीन्ह ग्रति षार उदधि जल ।
सफल एरण्ड धतूर नागवल्ली सो नीफल ।
परिमल विणु सोवन्न, बास कस्तूरी विविध परि ।
गुणियन संपत्ति हीण, बहुत लच्छीय कृपण घरि ।

---

१. मन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिय तरुण वयस[1] विधवा पणउ, सज्जन सरिस वियोग दुष ।
इत्तनै ठाम छीहल्ल कहइ, कियां विवेक न विधि पुरुष ।।४७।।

ओछो सज्जन प्रीति, अवर पुनि छाया बद्दल ।
दासी सरिष सनेह, अवर वरषइ जु ओस जल ।
सरवरि छीलरि पानि, अगिनि तृण केरउ तप्पन ।
विडंह सरिस भड वाउ, पिष्षि[2] गब्बहु जिनि अप्पन ।
का पुरुष बोल वेस्याविसन, एता अंत न निरवहै ।
विस्वास करइ ते हीण मति, सांचि वयण छीहल कहै ।।४८।।

ससि उगवनि जो कंवल मज्झि मकरंद पियो जिहि ।
विकसित चित्त उल्हास, वास केतकी लई तिहि ।
कुंभस्थल गय मय प्रवाह, ग्रस्यो कदली वन ।
सरस सुगन्ध जु पुहुप, विहसि[3] पुज्जइय रली मन ।
छीहल्ल विविह वणराइ, जिहि रितु मानी अप्पन समै ।
सो भ्रमर अबहि विधि पुरुष बसि, अक्क करीरहि दिन गमै ।।४९।।

षल दुज्जन मुष विवर, मज्झि निवसहि जे कुवचन ।
तेई सरप समान, होइ लागहिं घटि सज्जन ।
सोषइ सकल सरीर, लहरि आवइ जोवंतहं ।
मूली गद गारूडी, गिनै नहिं तंत न मंतहं ।
उपचार इक्क छीहल कहै, सुणिय विचष्षण उत्तमा ।
विष दोष निवारण कारणै, निज ओषध साधउ षिमा ।।५०।।

समय जु सीत वितीत, वृथा वस्तर बहु पाए ।
षीण षुधा घटि गई, वृथा पंचामृत षाए ।
वृथा सुरति संभोग, रयणि के अंत जु कीजइ ।
वृथा सलिल सीतल सु तासु, बिण तृषा जु पीजइ ।
चातक कपोत जलचर मुए, वृथा मेघ बहु जल दए ।
सो दान वृथा छीहल कहै, जो दीजइ अवसर गए ।।५१।।

---

१. बेस
२. जन जे ज्ञापन
३. विलसि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हइ धनवंत आलसी, ताहि उद्यमी पयम्पइ ।
क्रोधवंत अति चपल, तऊ थिरता जग जम्पइ ।
पत्त कुपत्त न लखइ, कहइ तसु इच्छाचारी ।
होइ बोलण असमथ्थ, ताहि गुरु वत्तन भारी ।
श्रीवन्त लच्छ अवगुण सहित, ताहि लोग करि गुण ठंवइ ।
छीहल्ल कहै संसार महि, संपति को सहु को नंवइ ।।५२।।

चउरासी अग्गला, सइ जु पनरह संवच्छर ।
सुकुल पष्ष अष्टमी, मास कातिग गुरुवासर ।
हृदय उपन्नी बुद्धि, नाम श्री गुरु को लीन्हो ।
सारद तरणइ पसाइ, कवित संपूरण कीन्हो ।
नाल्हिग बंस सिनाथू सुतन, अगरवाल कुल प्रगट रवि ।
बावन्नी वसुधा विस्तरी, कवि कंकरण छीहल्ल कवि ।।५३।।

इति छीहल कृत बावनी संपूर्णं समाप्त । संवत १७१६ लिखितं पांडे वीरू लिख्यापितं व्यास हरिराम महला मध्ये । राज श्री स्योवसिंघ जी राज्ये संवत १७१६ का वर्षे मिती वैसाख सुदी ५ शनिसरवार ।। शुभं भवतु ।।[1]

□□□

१. शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर लूणकरण जी पांडे जयपुर गुटका संख्या १४० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. पंथी गीत

इक पंथी पंथ चलंतौ, बन सिंहनि माहि पहुंतौ ।
भूलौ ऊबट दह दिसि धावै, वह मारग कहियन पावै ।
पावै न मारग विषम वन मैं, फिरै भ्रमि भटकंत ह्वो ।
देखियौ तहा सांमहौं आवत, गरुव गज मयमंत हो ।
सो रौद्र रूप प्रचंड सुंडा, दंड फैरे रिस भर्‌यौ ।
भयभीत होइ कंपिया लागो, पथिक चित्त अंतरि डर्‌यौ ।।१।।

ता देखि सु पंथी भागो, वाकी पूठिहिं कुंजर लागो ।
जीव कैं डरि आतुर धायो, आगैं कूप हुतौ त्रिण छायौ ।
त्रिण छयौ कूप जुहु तौ आगैं, बिचि वेलि छवि रह्यौ ।
तिहि मांहि पथिक पड्यौ अजानत, भेद भौंदू ना लह्यौ ।
वंहि गही अवलंबि बाकारणि, और कछु न पाइयौ ।
कूचडो एक सरकनो केरो, पड्त हाथें आइयौ ।।२।।

तब सरकन दिढ करि गहियौ, भूलत दारण दुख सहियौ ।
सिर ऊपरि गदौ गयंदा, दिसि च्यार्‌यौ चारि फुणिंदो ।
चहुं दिसि हि चारि फुणिंद न्यौली, बंधे करि बैंठे जहां ।
तलि मुख पसारि विरह्यौ अजिगर, ग्रसन कैं कारणि तहां ।
सित असित द्वै देखिया मूषक, जड खणैं सरकन तणी ।
संकट पड्यौ अब नंहि उबरण, करै चिंता चिते घणी ।।३।।

कुवा ढिग इक विरख बडे रौ, तहां छातौ लग्यौ महुके रौ ।
नंहि हसती हलाई डाली, मोखी अगनित उडी विसाली ।
मोखी विसाली उडिवि अगनित, लगि उडी वैंहि नर तणैं ।
उपसर्ग अंगि करै घणैंरी, तास को संख्या गिणैं ।
वंहि समै मधुकण अहर ऊपरि, पडत रस रसना लियौ ।
वा बिन्दु कै सुखि लागी लोभी, सबै दुख वीसरि गयौ ।।४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मधु विन्दु जु सुख संसारो, दुख वरणत लहुं वनयारौ ।
जीव जाणों पथिक समानो, अग्यांन निवड उद्यानो ।
उद्यान घन अग्यान गिनिजै, जम भयानक कुंजरो ।
भव अंध कूपरु चारो गति, अहि मखिक व्याधि निरंतरो ।
अजिगर सु एहु निगोद वोयम, भखत जगत न धापये ।
द्वै पक्ष उज्जजल किसन मूषक, आयु खिण खिण का पये ।।५।।

संसार कौ यहु व्यवहारो, चित चेत हुं क्यों न गवारौ ।
मोह निद्रा में जे सूता, ते प्राणी अंति विगूता ।
प्राणी विगूता बहुत ते जिनि, परम ब्रह्म विसारीयौ ।
भ्रमि भूलि इंद्री तणै रसिनर, जनम वृथा गंवाइयौ ।
बहुकाल जानां जोनि दुख, दीरघ सह्या छीहल कहै ।
करि धर्म जिन भाषित जुगति स्यौ, त्यौं मुकति पदवी लहै ।।६।।

।। इति पंथी गीत समाप्ता ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४. वेलि गीत

रे मन काहे कूं भूलि रहे विषया वन भारी।
इह ममता मैं भूलि रहे मति कुंण[1] तुहारी।
मति कुंण तुहारी देखी विचारी, अंति अधिक दुख पावो।
विण[2] इक मृग तिसना जल देखत, वहुडि न प्यास बुझावो।
गृह सरीर संपति सुत बंधौ, एतै थिरि किरि जाण्या।
श्री जिणवर की सेव न कीधी, रे मन मूरिख अयाणा ।।१।।

बहु जूणी मैं भ्रमता माणस जन्म जु पायो।
है[3] देवन कूं दुर्लभ सो कत वादि गवायो।
कत वादि गवायो मुढ सुढाले, काहै पाव परवालै।
काग उडावणि कारिणि कर थे, च्यंतामणि कांइ रालै।
इक्कु जिनवर सेव बिना सब झूठा, ज्यो सुपना की माया।
वृथा[4] जन्म खोय मांणस को, बहु जूंणी भ्रमि आया ।।२।।

उतिम धर्म्मं है जीव दया, सो दिढु करि गहिए।
अरहंत ध्यानु धरिज्यो सत, संजमस्यो रहिये।
रहिये संजमस्यो परधन पर रमणी पर निंदा पर हरिये।
पर उपगार सार है प्राणी, बहुत जतन स्यौं करिये।
जब लग हंस अभित काया मैं, कुछ सुकृत उपावो भाइ।
अंति कालि तुहि मरती बेला, हो हो धर्म्मं सहाइ ।।३।।

कलि विष कोट विणासै. जिनवर नाम जु लीया।
जै घट निर्मल नाही, का तपु तीरथ कीया।
का तप तीरथ कीया, जै पर दोह न छांडै।
लंपट इंद्री लघु मिथ्या भ्रमु, जनमु आपणो भांडै।
छीहल कहै सुणो मन बौरे, सीख सीयाणी करिये।
चितवत परम ब्रह्म कै[5] ताई, भव सायर कूं तिरिये ।।४।।

।। इति वेलि गीत समाप्त ।।

□□□

१. कवण (ख प्रति) २. खिजु सुख (ख प्रति)
३. हय (ख प्रति) ४. वृथा न खोइ जनम माणस कउ (ख प्रति)
५. वह्म स्यो रहिये जिव भव दुतर तिरिये (ख प्रति)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५. वैराग्य गीत

ऊदर उदक मैं दश मास रह्यौ, पडिवि घोमुखि बहु संकटु सह्यौ ।
कहु सहिउ संकटु उदर अंतरि, चितवै चिंता घणी ।
ऊवरो अबकी बार जेहौ, भगति करिस्यों जिण तणी ।
ए बोल संकट पडै बोलै, बहुडी जगि जामण भयो ।
संसार का जम भूवालि लागी, मूढ तव वीसरि गयौ ।।१।।

बालक विकह अचेत.........भक्षि अभक्षि ण कछु अंतरु लहै ।
लहै ना भक्षि अभक्षि अंतरु, लाल मुखि अरिल चुवै ।
पडइ लोटै धरणि उपरु, रोइ करि अमृत पिवइ ।
तनु मूत विष्टा रहै वोद्यौ, सुकृत ना कायौ कियौ ।
वीसरयो जिन भक्ति प्राणी, बाल पणौ ह्यौ हा गयो ।।२।।

जोवनि मातो नर वहु दिशि भवै, परधन परतीय ऊपरि मनु रचै ।
रचै परधनु देखि परतीय, चित्तु ठाइण राखए ।
छांडै ग्रनीफल सेव जिनकी. विषय विष फल भाखए ।
काम माया मोह व्याप्यो प्रमत हम विसार ।
पूजइ न जिणवर स्वामि ववरो, अविरथा जोबन गालए ।।३।।

जरा बुढापा वैरी आइयौं सुधि बुधि नाढी तब पछिताइयो ।
पछिताइयो तव सुद्धि नाढी, सयण[1] जगतु न बूझए ।
जियन कारणि करै लालच नयन जगत्तु न सूझए ।
मनु[2] कहइ छीहल सुणहि रे मन भरमि भूलौ कांइ फिरै ।
करि सेव जिणवर मंति सेती, जो भव समुद दूतरु तिरै ।।४।।

गुटका संख्या ६५, पाटोदी का मन्दिर जयपुर ।

---

१. श्रवण सबद न बूझए ।
२. जन कहइ छीहल सुणो रे नर भ्रमि भूलि काई फिरै ।
करि भगति जिनकी जुगति स्यौ त्यौ मुकति लीलइ वदौ ।।४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६. गीत

राग सोरठा

संसार छार विकार परहरि, सुमरि श्री जिण आण ।
रै जीव जगत सुपनो जाणि ।।१।।

एक रंक सारो सहर जाच्यो, सुतौ द्रुम तलि आणि ।
जाणिक वड भूपाल पोढ्यो, छत्र धारी सोक ।
खवासी विजणा वहालि ढोले, सेक रही कहि जोडि ।
एक आणि रंभा पाव चुवै, वहो विधि आवै भेंट ।
ए ताही मैं जागि तौ ठीकरो सिर हेठि ।
रे जीव जगत सुपनो जाण ।।२।।

एक बांझ कै घरि तुवर वागा, जाणिक जनम्यो बाल ।
बुलाइ पण्डित बुझै जोशी होसी वह भूपाल ।
मेरो पुत्र कुमाइसी त्रिया बहुत बंधी आस ।
ए ताही मैं जाणि देखे तौ नाखिया रानिसास ।
रे जीव जगत सुपनो जाण ।।३।।

एक निरधन जानै हुवो धनवंत सो भी गमी पूरि ।
अर्थ दर्व बहुभर्या भण्डा वधु निधि बांधी आस ।
एता में ही जागि देखे नहीं कोडी पासि ।
रे जीव जगत सुपनो जाण ।।४।।

एक मूरिख जानै हूवो पण्डित मुखा चारचौ वेद ।
नाग आगम सवही सूझ्यो तीन भवन तन मोखि ।
एता में ही जागि देखे तो नहीं आखिर रेव ।
रे जीव जगत सुपनो जाण ।।५।।

संसार सुपनो सवै जाण्यो जाण्या कछु न होइ ।
कहै छीहल सुमरि जीवडा जिण भज्या चलो होइ ।[1]
रे जीव जगत सुपनो जाण ।।६।।

□□□

---

१. गुटका संख्या ८, शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर गोधान जयपुर ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३

चतुरुमल

१६ वीं शताब्दि के अन्तिम चरण में होने वाले जितने हिन्दी जैन कवि अल्प ज्ञात हैं उनमें चतुरुमल अथवा चतुरु कवि भी है। राजस्थान के जैन ग्रंथागारों में अभी तक ऐसे सैकड़ों कवि पोथियों में बन्द हैं जिन्होंने हिन्दी भाषा में कितनी ही सुन्दर रचनाएं लिखी थी और अपने युग में प्रसिद्धि प्राप्त की थी। लेकिन समय के अन्तराल ने ऐसे कवियों को पर्दे के पीछे धकेल दिया और फिर वे सामने आ ही नहीं सके।

कुछ बड़े कवि तो फिर भी प्रकाश में आ गये और उनका अध्ययन होने लगा लेकिन कितने ही कवि जिन्होंने लघु रचनाएं लिखी, पद एवं सुभाषित लिखे तथा पुराणों के आधार पर चरित व रास लिखे, बावनी व बारहमासा लिखे, ऐसे पचासों कवि अभी तक भी गुटकों में बन्द हैं और उन्होंने हिन्दी की जो अमूल्य सेवाएं की थीं वे अभी तक हमारे से ओझल हैं।

जैन कवियों के हिन्दी में केवल चरित एवं रास संज्ञक प्रबन्ध काव्य ही नहीं लिखे किन्तु साहित्य के विविध रूपों में अपनी कृतियों को प्रस्तुत करके हिन्दी के प्रचार प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने स्तोत्र, पाठ, संग्रह, कथा, रासो, रास, पूजा, मंगल, जयमाल, प्रश्नोत्तरी, मंत्र, अष्टक, सार, समुच्चय, वर्णन, सुभाषित, चौपई, शुभमालिका, निशाणी, जकड़ी, व्याहलो, बधावा, विनती, पत्री, आरती, बोल, चरचा, विचार, बात, गीत, लीला, चरित्र, छंद, छप्पय, भावना, विनोद, काव्य, नाटक, प्रशस्ति, धमाल, चौढालिया, चौमासिया, बारामासा, बटोई, वेलि, हिंडोलणा, चूनडी, सज्झाय, बाराखडी, भक्ति, वन्दना, पच्चीसी, बत्तीसी, पचासा, बावनी, सतसई, सामायिक, सहस्रनाम, नामावली, गुरुवावली, स्तवन, संबोधन, एवं मोडवो संज्ञक रचनायें निबद्ध करके अपने विशाल ज्ञान का परिचय दिया। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में इन विविध साहित्य रूपों में से किसका कब प्रारम्भ हुआ और किस प्रकार विकास और विस्तार हुआ यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शोध के लिए रोचक विषय है। इन सब की बहुमूल्य सामग्री देश के जैन ग्रन्थागारों में उपलब्ध होती हैं।[1]

लेकिन साहित्य के उक्त विविध रूपों के अतिरिक्त अभी तक और भी बीसों रूप हैं जिनकी खोज एवं शोध आवश्यक है। अभी हमें साहित्य का एक रूप "उरगानो" प्राप्त हुआ है। जिसके रचयिता हैं कविवर चतुरुमल अथवा चतुरु।

कवि परिचय

चतुरुमल १६ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण के कवि थे। यद्यपि इनकी अभी तक अधिक रचनाएं उपलब्ध नहीं हो सकी हैं लेकिन फिर भी उपलब्ध कृतियों के आधार पर कवि श्रीमाल जाति के श्रावक थे। दि० जैन धर्मानुयायी थे तथा गोपाचल ग्वालियर के रहने वाले थे।[2] कवि के पिता का नाम जसवंत था।[3] अपने पिता के वे इकलौते पुत्र थे। कवि ने अपने परिचय में लिखा है कि जन्म लेते ही उसका नाम चतुरु रख दिया गया। कवि की शिक्षा दीक्षा कहां तक हुई इसकी तो विशेष सूचना प्राप्त नहीं है किन्तु नेमिपुराण सबसे अधिक प्रिय था और उसी के आधार पर उसने 'नेमीश्वर का उरगानो' काव्य की रचना की थी। क्योंकि उसने अनेक पुराणों को सुना था तथा स्वाध्याय की थी लेकिन हरिवंश पुराण में उसका सबसे अधिक आकर्षण हुआ। उस समय वहां धवल पण्डित रहते थे। वे साहसी एवं धैर्यवान थे।[4] उन्हीं के पास कवि ने पुराणों का अध्ययन किया था। और उसी अध्ययन के आधार पर प्रस्तुत कृति की रचना की थी।

रचनाएँ

कवि ने हिन्दी में कब से लिखना प्रारम्भ किया इसकी तो अभी खोज होना शेष है लेकिन संवत् १५६९ में उसने गोपाचल गढ में आकर के गीतों की रचना

---

१. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची—भाग चतुर्थ पृ० ४।
२. मधि देसु सुख सयल निधान, गढु गोपाचलु उत्तिम थानु ॥४४॥
३. श्रावगु सिरमलु अरु जसवंत निहचै जिय धर्म धरंत।
चरु चल नभवि वंदतौ, पुत्र एकु ताके घर भयौ।
जनमत नाम चतुरु तिनी लियो, जैनधर्म दिढु जीवह धरौ ॥४३॥
४. सुनि पुरानु हरिवंस गम्हीर, पंडित धवलु जु साहस धरि।
तिनिसु तरया निजु रचि कियौ, कलि केवलि जो त्रिभुवन सारु ॥२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रारम्भ की थी।[1] अभी तक हमें कवि के चार गीत उपलब्ध हो सके हैं और चारों ही एक गुटके में संग्रहीत हैं।

कवि की सबसे बडी रचना "नेमीश्वर कौ उरगनौ" है। इस को कवि ने ग्वालियर में संवत् १५७१ में भादवा बुदी पंचमी सोमवार को समाप्त की थी। उस दिन रेवती नक्षत्र था।[2] इसमें ४५ पद्य हैं। तथा नेमिनाथ एवं राजुल के विवाह की घटना का प्रमुखतः वर्णन है।

उक्त रचनाओं के अतिरिक्त कवि ने और कौन कौनसी कृतियां निबद्ध की इसका अभी पता नहीं चल पाया है लेकिन यदि मध्य प्रदेश के शास्त्र भण्डारों में खोज की जावे तो संभवतः कवि की और भी रचनायें उपलब्ध हो सकती हैं।

कवि ने ग्वालियर के तोमर शासक महाराजा मानसिंह के शासन का अवश्य उल्लेख किया है तथा ग्वालियर को स्वर्ण लंका जैसा बतलाया है। महाराजा मानसिंह की उस समय चारों ओर कीर्ति फैली हुई थी तथा अपनी भुजाओं के बल से वह जग विख्यात हो चुका था। ग्वालियर में उस समय जैन धर्म का प्रभाव चारों ओर व्याप्त था। श्रावकगण अपने षट्कर्मों का पालन करते थे तथा उनमें धर्म के प्रति अपार श्रद्धा थी।

कवि के कुछ समय पूर्व ही अपभ्रंश के महाकवि रइधू हो चुके थे जिन्होंने अपभ्रंश में कितने ही विशालकाय काव्यों की रचना की थी। रइधू ने जिस प्रकार ग्वालियर का, वहां के श्रावकों का, तोमर वंशी राजाओं का वर्णन किया है लगता है ग्वालियर दुर्ग का वही ठाट बाट कवि चतुरुमल के समय में भी व्याप्त था। लेकिन चतुरु ने न रइधू का नामोल्लेख किया और न नगर के साहित्यिक वातावरण का ही परिचय दिया।

कवि के जिन रचनाओं की अब तक उपलब्धि हुई है उनका परिचय निम्न प्रकार है—

१. गीत—(ना जानो हो को को पैरे ढीलरीया कत जाई)

---

१. चतुरु श्रीमाल वासुदेव वंगी। गति गारि की आइ कीयो गढ नर संवत् १५६९ को। गुटका – शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर बडा तेरहपंथियों का, जयपुर। वेष्टन संख्या २४८७।

२. संवतु पन्द्रहसै दो गनै, गुन गुनुहत्तरि ता उपरि भवे।
भादौ वदि तिथि पंचमी वारु, सोम न षित्तु रेवती मास।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह लघु गीत है जो पद रूप में है। जिसमें मानव को भगवान की पूजा आदि करके निर्वाण मार्ग पर बढते जाने को कहा गया है। पद की अन्तिम पंक्ति में "संसारह श्रावग कुलि सारु भमई चत्रुश्रावगु श्रीमारु" कह कर अपना परिचय दिया है।

दूसरा गीत—इस गीत का शीर्षक है 'गाडी के गडवार की'। यह भी आध्यात्मिक पद है जिसमें दशधर्म को जीवन में उतारने तथा सातों व्यसनों को त्यागने की प्रेरणा दी गई है। पद का अन्तिम चरण इस प्रकार है—

"श्रावग सुणहु विचारु, चतुरु यो गावहिगें"

तीसरा गीत—इस गीत का शीर्षक है "आईति वावा वारी के जईयो" यह भी उपदेशात्मक पद है जिसमें श्रावक को मानव जीवन को सफल बनाने का अनुरोध किया गया है। कवि ने पद के अन्त में "भनई चतुरु श्रीमारु" से अपने नाम का उल्लेख किया है।

४. क्रोध गीत—यह भी लघु गीत है जिसमें क्रोध, मान, माया और लोभ की निन्दा करके उन्हें छोड़ने का उपदेश दिया गया है। इसमें चार अन्तरे हैं। मान कषाय का पद निम्न प्रकार है—

मानु न कीजै जोईवरा, तिसु मानहि हो मानहि जीयरा दुख सहे।
अप्पु सराहे हो भलो, पुणि परु की हो परु की णित करई।
परु करैई निद्रा नित प्रानी, इसोइ मन गरवै खरौ।
हउ रूप चतुरु सुजानु सुंदरु, ईसोप भनौ मद भरै।
अहमेव करि करि कर्म्म बंधौ, लाख चौरासी महि फिरै।
ईम जानि जियरा मानु परिहरि, मानु बहु दुखह करौ॥२॥

५. नेमीश्वर का उरगानो—प्रस्तुत कृति कवि की सबसे बड़ी कृति है। अब तक काव्य के जितने भी नाम आये हैं उनमें 'उरगानो' संज्ञक रचना प्रथम बार प्राप्त हुई है। 'उरगानो' का अर्थ स्वयं कवि ने 'गुन विस्तरौ' अर्थात् गुणों को विस्तार से कहने वाले काव्य को उरगानो कहा है। इसमें नेमिनाथ के जीवन की विवाह के लिए तोरण द्वार को छोड़कर वैराग्य धारण करने की घटना का वर्णन किया गया है। उरगानौ की कथा का सक्षिप्त सार निम्न प्रकार है—

मंगलाचरण के पश्चात् उरगानो नारायण श्रीकृष्ण के पराक्रम की प्रशंसा से प्रारम्भ होता है जिसमें कहा गया है कि द्वारिका में ५६ कोटि यादव निवास करते थे जो सब प्रकार से सुखी एवं सम्पन्न थे। नारायण श्रीकृष्ण ने जरासंध पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विजय प्राप्त करके शंखनाद के साथ द्वारिका पहुंचे। एक दिन पूरी राज्य सभा जुड़ी हुई थी। विविध खेल हो रहे थे। राजा एवं रानी दोनों ही प्रसन्न थे। उसी समय नेमिकुमार आए। सभी ने उनका आरती उतार कर स्वागत किया। नारायण श्रीकृष्ण ने सभी सभासदों को नेमिनाथ का परिचय दिया तथा कहा कि वर्तमान समय में नेमिनाथ से बढ़कर कोई साहसी एवं धैर्यवान है। बलभद्र ने नेमिनाथ के बारे में और भी जानना चाहा। श्रीकृष्ण जी ने नेमिनाथ का चित्र लिया तथा राजा उग्रसेन के पास गये और उनसे नेमिनाथ के लिये राजुल को मांग लिया। उन्होंने कहा कि हम सब यादव नेमिनाथ की बारत में आयेंगे। उग्रसेन ने अत्यधिक प्रसन्न होकर राजुल से नेमिनाथ के विवाह की स्वीकृति दे दी। लेकिन साथ में उन्होंने चुपचाप ही कुछ पशुओं को एकत्रित करने के लिए कह दिया।

कुछ समय के पश्चात् नेमिनाथ बारात लेकर वहां पहुंचे। उन्होंने वहां चारों ओर देखा और पशुओं को एकत्रित करने का कारण जानना चाहा। लेकिन जब उन्हें मालूम पड़ा कि ये सब बरातियों के लिए आये हैं तो उन्हें एकदम वैराग्य हो गया और विवाह कंकण तोड़कर तथा रथ को छोड़कर गिरनार पर्वत पर जा चढ़े। नेमिनाथ के वैराग्य से राजुल के माता पिता एवं परिजनों सबको दुःख हुआ और वे विलाप करने लगे। जब राजुल को उनके वैराग्य लेने का पता चला तो वह मूर्छित हो गई। वह कभी उठती कभी बैठती और कभी चिल्लाती। वह अपने पिता के पास जाकर रुदन करने लगी। पिता ने सारा दोष श्रीकृष्ण जी पर डाल दिया। लेकिन उसने राजुल से यह भी कहा कि उसका विवाह किसी दूसरे राजकुमार से कर दिया जावेगा जो नेमि के समान ही रूपवान एवं धैर्यवान होगा। तथा विद्याओं का आगार होगा। राजुल को पिता के शब्द सुनकर अत्यधिक दुःख हुआ। और नेमिनाथ के अतिरिक्त दूसरे किसी से भी बात नहीं करने के लिए कहा।

राजुल भी नेमि के पीछे-पीछे शिखर पर जा चढ़ी और नेमि से ही उसे छोड़कर चले आने का कारण जानना चाहा। नेमिनाथ ने स्वयं के लिए संयम लेने की बात कही तथा राज्य, हाथी, घोड़ा एवं अन्य सभी परिग्रह छोडने की बात कही। लेकिन उन्होंने राजुल से वापिस घर जाकर विवाह करने के लिए कहा क्योंकि तपस्वी जीवन अत्यधिक कठिन जीवन है। इसमें साथ-साथ रहना परित्याज्य है। राजुल ने नेमि को छोड़कर घर लौटने से इन्कार कर दिया और कहा कि चाहे उसके प्राण ही क्यों न चले जायें वह तो उन्हीं के चरणों में रहेगी। घर जाकर क्या करेगी। इसके बाद राजुल ने दो-दो महिनों को लेकर बारह महिनों में होने वाले ऋतु जन्य संकट का वर्णन किया तथा कहा कि ऐसे दिन में उनको छोड़कर कैसे जा सकती हैं। वह तो उनही की सेवा करेगी। राजुल ने कहा सावन भादों में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो घनघोर वर्षा होगी। बिजली चमकेगी तथा मयूर एवं पपीहा की रट लगेगी। ऐसे दिनों में वह नेमि को छोड़कर कैसे जावेगी। आसोज एवं कार्तिक मास में शरद ऋतु होगी। सरोवर एवं नदियों में स्वच्छ जल भरा होगा। आकाश में चन्द्रमा भी निर्मल हो जावेगा। चारों ओर गीत एवं नृत्य होंगे ऐसी ऋतु में नेमि बिना वह कैसे रह सकेगी।

मंगसिर एवं पोष में खूब सर्दी पड़ेगी। शरीर में काम रूपी अग्नि जलेगी। घर घर में सभी मस्ती में रहेंगे लेकिन नेमि के बिना वह किस घर में रहेगी और उसका हृदय पत्ते के समान कंपित होता रहेगा। एक ओर काली रात्रि फिर बर्फ का गिरना। लेकिन उसका मन तो पिया के बिना ही तरसता रहेगा।

अघन पुषु अति सीत अपारु, जादौ विषु व्यापे संसारु।
काम अगिनि वहु पर जलु, घर घर सुख करै सब कोई।
तुम विनु हमहि कहा घर होई, हिरदौ कंपे पात ज्यो।
निसि अंध्यारी परतु तुसारु, काम लहरि अति होइ अपार।
यहु मनु तरसै पीउ विना, सवु संसार करै अति भोग।
राजल रटै करै पीय सोगु, नेमि कुंवर जिन वन्दिहो ॥३०॥

माघ और फाल्गुण ऋतु में तो बसन्त की बहार रहेगी। सभी बसन्त का आनन्द लेंगे। कामनियां अपने प्रियतम के साथ विलास करेंगी। वे अपने अंगों में चन्दन का लेप करेंगी तथा माथे पर तिलक भी करेंगी। घर घर वन्दनवार होंगी। राजुल भी ऐसी ऋतु में अपने पिया के साथ परिहास करना चाहती है तथा दिन में अपने कंत की सेवा करना चाहेगी।

चैत्र और वैशाख में सभी वनस्पतियां खिल जावेंगी। नन्दन वन के सभी पुष्प भी खिले होंगे। भौंरे फलों का रस पीते होंगे। वन में कोयल कुहु कुहु के प्रिय शब्द सुनाई देगी। विरहिणी स्त्रियां अपने प्रिय के बिना तड़फती रहेंगी लेकिन वह स्वयं बिना नेमि के क्या करेगी।

इसी तरह जेठ और आषाढ में गर्मी खूब पड़ेगी। सूर्य भी तपेगा। कुछ लोग चन्दन लगा कर शरीर को शीतल करेंगे। लू चलेगी। लेकिन उसे तो प्रिय के बिना और भी ऊष्णता सतावेगी। इसलिए वह रात्रि दिन नेमि पिया नाम की माला जप कर उनके शीतल वचनों को सुनती रहेगी।

इस प्रकार राजुल बारह महिनों के विरह दुःख को नेमि के सामने रखती है और चाहती है कि विवाह न किया तो न सही किन्तु वह उनके चरणों में रहकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही उनकी सेवा करती रहे । यह कह कर वह रोने लगी और उसकी आंखों से अश्रुधारा बह चली ।

नेमि ने राजुल की बात सुनी । उन्होंने कहा कि वे तो वैरागी हो गये हैं संयम धारण कर लिया है इसलिए अब राजुल की सेवा कैसे स्वीकार कर सकते हैं । इसके अतिरिक्त उन्होंने राजुल से वापिन अपने परिजनों में लौटने की सलाह दी । जिससे वह राज्य सुख भोग सके । लेकिन राजुल कब मानने वाली थी । उसने फिर अनुनय विनय किया । रोयी और नेमि से उसे भी व्रत देने की प्रार्थना की । अन्त में नेमिनाथ को उसकी प्रार्थना को स्वीकार करना पडा और उसे आर्यिका की दीक्षा दे दी । इसके साथ ही नेमिनाथ ने आवश्यक व्रतों को पालने का उपदेश दिया ।

इस प्रकार 'नेमीश्वर का उरगानो' एक शान्त रस प्रधान काव्य है जिसमें विरह मिलन की अद्‌भुत संरचना है । नेमि द्वारा तोरणद्वार पर आकर वैराग्य धारण कर लेने की इतिहास में अकेली घटना है । फिर उनसे राजुल का घर वापिस लौटने के लिए अनुनय विनय, पति के विरह में होने वाले कष्टों का वर्णन और वह भी आमने सामने । जहां एक वैरागी हो और एक नयी नवेली बनी हुई उसी की दुल्हिन । भगवान शिव को तो पार्वती की तपस्या के सामने झुकना पड़ा लेकिन नेमिनाथ के वैराग्य को राजुल नहीं डिगा सकी । उसने भी नेमि से अधिक से अधिक आग्रह किया, रोई विलाप किया, लेकिन वे कब अपने वैराग्य से वापिस लौटने वाले थे । अन्त में राजुल का ही संयम धारण करना पड़ा ।

भाषा

प्रस्तुत कृति व्रज भाषा की कृति हैं जिस पर राजस्थानी का प्रभाव है । अखारे (६), कोरि (४), औतरे (७), कन्हरु (६), जोवहि (११), मोरि (१३), तोरि (१३), होइ है (१६), तिहारे (२२) आदि शब्दों का पर्याप्त प्रयोग हुआ है । ड और ट के स्थान पर र का प्रयोग किया गया है ।

रचना काल

प्रस्तुत कृति संवत् १५७१ की रचना है । रचना समाप्ति के दिन भादवा बुदी पंचमी सोमवार था । रेवती नक्षत्र एवं लगन में चन्द्रमा था ।[1]

---

१. संवतु पन्द्रहसै दो गनौ, गुन गुनहत्तरि ता उपरि चंन ।
भादौ वदि तिथि पंचमी वारु, सोम नषितु रेवती सारु ।
लगुन भली सुभ उपजी मति, चन्द्र जन्म वलु पाइयौ ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रचना स्थान

'नेमीश्वर का उरगानौं' का रचना स्थान गोपाचल दुर्ग (ग्वालियर) रहा। उस समय वहां के शासक महाराजा मानसिंह थे जिनके सुशासन की कवि ने प्रशस्ति में प्रशंसा की है। महाराजा मानसिंह तोमर वंशी शासक थे। वहां जैन धर्म का पूरा प्रभाव व्याप्त था तथा उसके अनुयायी देव पूजा, गुरु सेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और दान जैसे कार्यों का प्रति दिन पालन करते थे।

पाण्डुलिपि

उरगानौ की एकमात्र पाण्डुलिपि शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर तेरह पंथियान् के एक गुटके में संग्रहीत है। पांडुलिपि संवत् १८२""माह बुदी १४ गुरुवार के दिन समाप्त हुई थी। संवतोलेख वाला अन्तिम अंक नहीं है इसलिए यह पाण्डुलिपि संवत् १८२० से १८२९ के मध्य किसी समय लिखी गयी थी। प्रतिलिपि करने वाले थे आचार्य देवेन्द्रकीर्ति थे जिन्होंने इसे अपने शिष्य के लिए लिखा था।

□ □ □

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१. नेमीश्वर को उरगानो

अथ उरगानो लिखितं नेमी कुंवर को ।

मंगलाचरण—

प्रथम चलन जिन स्वामी जुहारु, ज्यौं भवसायरु पावाहि पारु ।
लहइ मुकति दुति दुति तिरौ, पंच परम गुर त्रिभुवन सारु ।
सुमिरत उपजै वुधि अपारु, सारद मनाविऊं तोहि ।
गुरु गोतमु मो देउ पसाउ, जौ गुन गाउ जादु राइ ।
उरगानौ गुन विस्तरौ, समद विजै सिव देवी कुवार ।
जाके नाम तिरै संसारु, चतुर गति गमनु निवारियौ ।
राजमति तजि जीव मिलाई, चढि गिरनैरि लियौ तपु जाई
नेमि कुवरु जिन वंदि हौ ।।१।।

सुनि पुरानु हरिवंस गम्हीरु, पंडित धवलु जु साहस धीरु ।
तिनि सुत रयनि जु रचि कियो, कलि केवलि जो त्रिभुवन सारु ।
सुनि भाविय भव उतरै पारु, नेमि कुंवर जिन वंदि हौ ।।२।।

नारायण श्रीकृष्ण का वर्णन—

वरनौ आदि जु होइ पसारु, जादौ कुल इतनौ व्यौहारु ।
जौ नाराइनु औतरे, अरु जी जानौ नेमि कुंमारु ।
जाके नाम तिरै संसारु, नेमि कुंवरु जिन वंदि हौ ।।३।।

छप्पन कौरि सु जादौ वीरु, रहइ द्वारिका सायर तीरु ।
भोग भाइ वहु विधि रहै, राजु करै हित सौ पारवारु ।
वाढै हय गय अर्थु मंडारु, नेमि कुंवर जिन वंदि हौ ।।४।।

जीति जुरासिंधु संषु वजाई, पुनि द्वारिका पऊचे जाइ ।
चक्र नाराइन कर चढै, करहि वीप्रा ए मंगलचार ।
पंच सवद वाजहि अनिवार, नेमि कुंवरु जिन वंदि हौ ।।५।।

सभा पूरि वैंठे हरि राउ, चऊंधा सयनु न सुझै ठाउ ।
होइ अषारे पेषनै, रानी राइ भइ मनोहारी ।
नाराइन आरते उतारी, नेमि कुंवर जिन वंदि हौ ।।६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नेमीश्वर का परिचय—

तव वसुदेव कहे सतभाव, यहु नेमीसुरु त्रिभुवन राउ।
समद विजै घर औतरे, छत्रु देहु यौं ज्यौं नर नाहा।
वांदि चरन आरते कराउ, नेमि कुंवर जिन वंदि हो ।।७।।

तव हरि भनै सुनै वंसदेउ, नेमि तिनौ तुम जानौ भेउ।
सो कारन हम सौ कहौ, विद्या वलु या पासन आहि।
जीत्यौ कहै जुरासिंधु ताहि, मैं वारौ करि जानियौ।
तव हि कहै वलिभद्र कुमारु, मो पहि सुनौ याको व्यौहार।
गुपित रूप गुन आगरौ, नेमि कुवरु यहु गरुवो वीरु।
या समान नहि साहस धीरु, नेमि कुंवर जिन वंदि हो ।।८।।

दूत का उग्रसेन के पास जाकर राजुल के विवाह का प्रस्ताव—

सुनत अचंभौ हरि मन भयौ, पटतरौ नेमी कुंवर कौलियौ।
तव वलु आउत देखियौ, बिलख वदन माहरी मन जाम।
कर ही उपाउ त्रिसो ताम, दूतु तव हि तिन पाठयौ।
उग्रसेनि धिया राजकुमारि, राजुल देवी रूप कि आरि।
देहु राइ कन्हरु भनौ, नेमि कुंवरु या व्याहै आइ।
जादौ सयल साथ समुहाइ, नेमि कुंवर जिन वंदि हो ।।९।।

उग्रसेनि तब हरखिय गात, परियन वोलि कही तिनि वात।
सौंज करौ वहु अति धनि, जादौं आवहि स्यौ परिवार।
कला हमारी रहै अपार, मनु नाराइन रंजियौ।
वधिक बुलाइ राइ यौ कह्यौ, वन मा जीउन एकूं रहै।
तौ निग्रहु तुम सौ करौ, हिरन रोझ वह जीव अपार।
आनहु घेरि न लावो वार, नेमि कुंवर जिन वंदि हो ।।१०।।

बारात—

छपन कोरि जो जादौ असमान, पहुंचे उग्रसेन के थान।
पंच सवद वाजैहि घनै, छायहु सुर गगन आकासु।
सुरपति सेसु डरौहि काविलास, तीनि भुवन मन कंपियौ।
नेमि कुंवर जोवहि चहु पास, जीव देखि चितु कियो उदास।
नेमि कुंवर जिन वंदि हो ।।११।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नेमिकुमार का प्रश्न—

नैमी भनै हरि सुनहु विरारु, जीव कहाए वहुत अपार।
कौन काज ए घेरियौ, कारनु कवनु सुनो वडवीर।
वहुत चिंता मो भईय सरीर, सांचउ वयनु प्रगासियौ।

नारायण का उत्तर—

भनहि नाराइनु सुनहु कुवार, जो नर सोइ होइ संधार।
वहु ज्योंनार रचाइवीयौ, वधिए जीउ सह लईहि काज।
भोजन करहि तुम्हारे काज, नेमि कुंवर जिन वंदि हो ।।१२।।

नेमिकुमार का वैराग्य—

भयौ विरागी सुनत हरि वयनु, अैसो व्योह करै अब कवनु।
कंकन मुकट जु परिहरे, छाडो अर्थ भंडारु जु राजु।
जीव सइल मुकराऊ आजु, व्याहु छोंडि तपु सुंगह्यौ।
रथ तै उतरि चले बन मोरि, कर कंकन सव डारे टोरि।
नेमि कुंवर जिन वंदि हौ ।।१३।।

जानिउ सयल ससार आसारु, छांडि चाले सवु राजु भंडारु।
चित वैरागु जु दिढ धरो, गौ गिरनैरि सिषिरि नर वीरु।
चौघा जोवै साहस धीरु, भुवनु खानु देखियौ।
उत्तिम ठाऊं जु आसनु देहि, लोभु मानु जे दुरि करेहि।
निहचल मनु करि सोइ रहै, पंचम महाव्रत संजमु धरै।
कष्ट सरीर वहुत विधि करै. सील सुमति जिहि जिय वसो।
नेमि कुंवर जिन वंदि हौं ।।१४।।

जोग जुगति सौं ध्यानु कराइ, चौ गै गमनु कि वारियौ।
मनु इन्द्र पंचौ निगंहे, कर्म तारासु परम पदु लहै।
नेमि कुंवर जिन वंदि हौं ।।१५।।

नेमि कुंवर गिरनयरिहि, जादौ सयल विलखित भए।
कन्हर मनु आनंद भए, उग्रसेनि दुख करहि अपारु।
कियो हमारो सुवु भयो आसरु, नेमिकुंवर जिन वंदि हो ।।१६।।

राजुल का विलाप—

राजुल देवी तवि सुधि लही, दासी वात जाइ तव कही।
नेमि सुनो गिरि खो गए. सुनत वासु मुछिय जाइ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कौन पाप हम कीनै माइ, खिन खिन मुरछि भौ परिजाइ।
षिन षिन उठि जोवइ चहुं पास, षरीय विलपी लेइ उसार।
को मनु मेरौ धीरवै, कोनु वहोरै नेमि कुंवारु।
कोयहु जाइ करै उपगारु, नेमि कुंवर जिन वंदि हौं ।।१७।।

राजुल का अपने पिता के पास जाना—

तव उठि कुंवरि पिता पहि जाहि, वात करत वे षरीय लजाइ।
नेमि सुने गिरि षौ गये, कहउ पिता तुम जानउ भेउ।
कौनु वहौरे जादौ देव, गवहु भरि चिरु न संहारौ।
सुनत वात सो मुरही जाइ, व्याहु छांडि संजम लिया।
उनि वैराग कियौ किहि काज, छांडिउ छत्र संघानु राजु।
नेमि कुंवर जिन वंदि हौं ।।१८।।

उग्रसेन का उत्तर—

उग्रसेनि यौ कहि विचार, यहु सवु जानै कन्ह मुरारि।
जिन ए जीउ धिराईयो, देखि तिन्हहि मनु भौ वैरागी।
वोछउ कुंवरि तुम्हारो भाग, कंन्हर कुरम कमाइयो।
लेन गये हम करि मनोहारि, जादौ सयल रहे पचिहारि।

दूसरे राजकुमार के साथ विवाह का प्रस्ताव—

वे दिढु संजमु लै रहे, अवहि कवरि हम करिहै काजु।
व्याहु तुम्हारा होइ है आजु, वरु चोखो ले आइ हैं।
अति सरूप सो राजकुंवारु, चौदह विद्या गुनहनि धानु।
नेमि कुंवर जिन वंदि हौं ।।१९।।

राजुल का उत्तर—

यह सुनि राजुल उठी रिसाइ, ऐसौ वोलु कहै कतराइ।
व्याहु जनम औरै करो, एही जनम मो नेमि भरतारु।
उग्रसेनि सौ सवु संसारु, चढि गिरिनयरिहि जासीउ।
उनहि साथ हौं संजमु धरी, सहऊ परीसहि सेवा करो।
कर्म कुचित सव टारिहै, अरु नित रहहुं पिया के साथ।
नेमि कुंवर जिन वंदि हौं ।।२०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजुल की पुनः चिंता करना—

मारगु जोवै करै संदेहऊ, नेन भरै जनु भादौ मेह ।
कंत कवन गुन परिहरी, गढी होइ सो चलति तुरन्त ।
दुद्धरु दुषु दियो मो कंत, तुम विनु को मनु धीरवै ।
जगु अध्यारौ मेरे जान, और न देषौ तुमहि समान ।
नेमि कुंवर जिन वंदि हौं ।।२१।।

झुरवै कारन करै वहुतु, वर्नन जाइ तासु गुन रूपु ।
रुदनु करत मारगु गहै, तुम विनु जन्मु जु वाहायो ।
पुर्व्व जन्म विछोही नारि, पाप पराचित हम किए ।
पंथ अकेली चलति अनाह, अैसो तुमहि न वुभिए नाह ।
हमहि छांडि गिरि तुम गये, पिय विनु सुंदरि करवि कांइ ।
रहै समीप तिहारै नाह, नेमि कुंवर जिन वंदि हौं ।।२२।।

गिरिनार पर राजुल का पहुंचना—

करति विषादु गई सो नारि, पहुंजी जाइ सिषिरि गिरनैरि ।
चरन लागि सो वीनवै, कर जोरै सो वात कहाइ ।
दासी वर मो जानो राइ, सेवा वहु दिन दिन करौं ।

नेमिकुमार से निवेदन—

हम परिय कवन तुम काज, छांडो व्याहु भाई मो लाज ।
तुम गिरनैरिहि आइयौ, दोसु कवन पीय लागो मोहि ।
सो कहि स्वामी पुछु तोहि, नेमि कुंवर जिन वंदि हों ।।२३।।

नेमिनाथ का उत्तर—

नेमि भनै सुनि राज कुंवारि, हमि संजम लियौ चढि गिरनारि ।
राज रीति सव परिहरि, हय गय विभव छत्र धन राजु ।
परियन व्याहु नही मो काजु, जीव दया प्रतिपालिहौ ।
यहु संसारु जु साइरु भव भवनु, वहुरिउ भ्रमि भ्रमि वूडै कौनु ।
नेमि कुंवर जिन वंदि हौं ।।२४।।

अब तुम कुंवरि वहु घर जाहु, कंकन वंधौ करहु विवाह ।
हम गौंहि नु करि वावरी, राजधिया तु अति सुकुमाल ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भोग विलास करौ तुम बाल, तपु न करि सकै सुन्दरि।
हम जोगी दि जोगु धराइ, ध्यान जुगति सौं कष्ट सहाइ।
हम तुम साथु न बुझिय, जाऊ कवरि हम छाडी म्राय।
करहु बहु विधि भोग विलास, नेमि कुंवरु जिन वंदि हौं।

राजुल एवं नेमिकुमार का उत्तर प्रत्युत्तर—

राजुल भनै सुनौहु जदु राइ, तुम षौं छांडि घरं हम जाइ।
पापु कौन हम कौं परै, तुम जु कहौ हम सौं घर जान।
जीव कह तु हौं तजौ परान, चरन कमल दिन सेई है।
धरु करि हौ तुम नामु अधार, जिहि चढि भव जल उतरै पारु।
नेमि कुंवर जिन वंदि हौं ।।२६।।

तव हि कुंवर तै उतरु दयौ, घर कौ भरु तुम्हारै लेइ।
वन ह अकेली तपु करौ, हम वहु कष्ट सहै चितु लाइ।
तुम हि कुंवरि सहौ कत आइ, नेमि कुंवर जिन वंदि हौं ।।२६।।

उग्रसेनि धिय चतुर सुजान, कुंवर सुनहु यौ उत्तर ठानि।
पास रहौ सेवा करौ, जाउ घरें हो कैसे रहौ।
गरुवो दुख वहु तू क्यों सहौं, खंडर तु मान को हाषि है।

बारह महिनों का विरह वर्णन, सावन भादों—

सावन भादौ वर्षा काल, नीरु अपवलु वहुत असराल।
मेघ घटा अति नऊ नई, लह लह वीजुरी चमकंति राति।
तव घर रयनि सह्यारे कंति, परदेसी चितु वह भरै।
दादुर मोर रढे दिन रैनि, पपीहा पिउ पिउ करै।
को झील करौउ महै नेत्र, तुम विन को जिउ राषिहे कंत।
नेमि कुंवर जिन वदिहौं ।।२८।।

आसोज कार्तिक—

कातिक क्वार सरद रितु होइ, नरि हुलासु करै सवु कोई।
निर्मल नीर सुहावनो, एिसि निर्मल ससि अति सोहंति।
भरि जलि नैन सम्हारै कंति, विरह व्यथा अति ऊपजै।
गीत नाद सुनि अै चहुं पास, हम तुम विनु पिय षरी अनास।
नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।२६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंगसिर पोष—

अघन पुषु अति सीत अपारु, जादौ विषु व्याप संसार ।
काम अगिनि वहु पर जलु, घर घर सुख करै सव कोई ।
तुम विनु हमहि कहा घर होइ, हिरदौ कंपै पात ज्यौं ।
निसि अंध्यारी परतु तुषारु, काम लहरि अति होइ अपार ।
यहु मनु तरसै पीउ विना, सवु संसार करै अति भोग ।
राजुल रटै करै पीय सोगु. नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।३०।।

माघ फाल्गुन—

माघ पवनु फागुन रितु होइ, रितु वसंत खेलै सब कोई ।
कंत सतवर कामिनी, दिन दिन रागु करै अनसरै ।
संजोग सिंगारु वहुत विधि करे, फागुए फागु सुहावनी ।
सोहै सरिसु करै दिनु खेलु, गावहि गीत करे पिय मेलु ।
परि मेघुरि उडाइसी, ह्वंज, सवनि सिर उडई सीहु ।
चोवा चन्दन अगर कपूरु, तिलकु करै कर सुन्दरी ।
घर घर बांधे बन्धन वार, पंच सबद वाजही अनि आर ।
पिय परिहसु राजुल करै, दिन दिन तुम्ह ही सह्मारै कंत ।
राखि सकै को हंस उडात, नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।३१।।

चैत्र वैशाख—

चैतु सुहावो अरु वैशाख, वनसपती सब भई हुलासु ।
भार आठारह मौरियौ, सव फुलै नन्दन वन फूल ।
वासु सुगंध भौर रस मुलि, फलहिते अमृत फल घनै ।
वन कोयल कुहु कुहु सुर करहि, गह गह मोर सुहावनै ।
विरहिनि त्रस म्हारै कंत, पिय विनु जनमु अकारथ जंत ।
रइनि निरासी क्या गमै, हमहि पिया जनि करहु निराए ।
वीसर रैनि सु म्हारी आस, नेमि कुंवर जिन वंदि हौं ।।३२।।

जेठ आषाढ—

जेठु अषाढु गरम रितु होइ, घाम षरे व्यापै सव कोइ ।
तपा तपै तनु अति तपै, पेम अगिनि तन डहै सरीरु ।
लुवल वहि झर सघन परही, सीतल जतन ते सयल करही ।
श्रीखंड घसि तनु मंडहि, अरु वीच गरम पसी जैं देह ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होइ विथा अति पिय के नेह, वाउ सरीरु सुहावानौ ।
तपती अधिक पिय तुम विनु होय, हंस उडत न राखे कोई ।
निसि वासर गुन तुम्हेरौ, सीतल वचन तुम्हारैं कंत ।
सुनत हमहि सुखु होइ तुरन्त, नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।३३।।

ए षट् रितु को सकै सह्यारि, उपजै दुपु तुमहि सम्हारि ।
क्यौं करियहु मनु राषि है, रहि है पास तुम्हारे देव ।
करिहैं चरन कमल नित सेव, नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।३४।।

जादौ राइ भनै सुनि वैन, रुदनु करहु कंत भरि जल नैन ।
हम मनु संजमु दिढु धरै, तुम अति गाढु कत करौ बहूत ।
राजु करहु धर सखिनि संजुत्त, नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।३५।।

तव सुनि राजुल विलखी होई, तुम विनु स्वामी गैहै कोइ ।
साथ सहित संजमु धरौ, अरु श्रावक व्रत कर उगवास ।
और सवैं छाडौ हम आस, कष्ट बहु विधि हौं सहौ ।
करहु दया मो दे उपदेसु, ज्यो तिरिए संसारु असेसु ।
नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।३६।।

यह सुनि वौलै त्रिभुवन नाथ, धर्म सनेह रहै हम पास ।
मनु निहचलु करि रायौ, सुनहु कुंवरि संसारु असारु ।
भव सायरु जलु गहीर अपारु, चतुर्गति गमनु निवारियौ ।
जीव छी चौरासी जाति, सहइ वहुत दुपु अंन अन भाति ।
भ्रमतनि अंतु न पाइऐं, रहट माल ज्यौं यहु जीव फिरै ।
रूप अनेक वहुत विधि करै, नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।३७।।

अब समिकितु धारियौ दिढ चितु, मोख मुगति जो लहइ तुरन्त ।
परु परिहरि सुनि सुन्दरी, चेतनि सुन्दरी सम करह गुन जासु ।
ध्यानु धरुह जानौ दीनौ तासु, मिथ्या मोहवि परिहरौ ।
पंच परम गुरु जपु पाहु, जीव दया जीवहु तय राहु ।
नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।३८।।

पालउ आठ मूल गुन सारु, सात विसन तजि तिरि संसारु ।
वर अनोव्रत दिन करहु, अरु ग्यारह प्रतिमा जिय धरौ ।
त्रेपन क्रिया करि भव तिरी, गुन अस्थान चौदह चढौ ।
ए श्रावक व्रत कीजहि सारु, जिहि तैं कुंवरि तिरौ संसारु ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंच मंगल घुपाइये, यहु तजि कुंवरि निवारौ मोहु ।
दीक्षा घरऊ मोहि व्रत देउ, नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।३९।।

लै संजमु व्रत घ्यानु धराहि, जो परुजानि ते हारि कराइ ।
अग्य गुनु गहि निर्मलौ, इहि विधि कर्म दसन सौ करे ।
राजल नेमी चलत नित घरै । नेलि कुंवर जिन वंदिहौं ।।४०।।

नेमि कुंवरु राजमती नारि, दुहु संजमु लियौ चढि गिरनैरि ।
तीनि भुवन जसु मंडियौ, अरु तिन उपजौ केवल ग्यानु ।
सुरनि सहित सुरपति अकुल्यानु, करन महोछो आयौ इन्द्रु ।
पूजा नित सेवा कराइ, पंच सवद तल रसी वजाइ ।
कलस अठोतर घरियौ आई, करि आरतौ अर धुज वंदियौ ।
समोसरनु स्वामी कौ कियौ, सुर नर केतिक आईयौ ।
गन गंधर्व वीद्याधर जछि, जादौ सयलति राइ संषि ।
नेमि कुंवर वंदिहौं ।।४१।।

वनी इन्द्रु तवही तिनि कियौ, सुनतई नु जग मन भयौ ।
शीव निदा नदि ते भाऐ, जै जैस वदु तिहु लोकह भए ।
जै जै सवउ तिहु लोकह भए, पंचम गति सीद्धंत सुभयौ ।
नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।४२।।

प्रशस्ति—

श्रावगु सिरीमलु अरु जसवंत, निहचै जिय धर्म धरंत ।
चरु चलन भवि वंदतौ, पुत्र एकु ताके घर भयौ ।
जनमत नाउ चतुरु तिनि लियौ, जैन धर्म दिढु जीयह धरौ ।
नेमि चरितु ताके मन रहै, सुनि पुरानु उरगानौ कहै ।
नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।४३।।

मधि देसु सुख सयल निधान, गढु गोपाचलु उतिम ठानु ।
एक सोवन की लंका जिसि, तौंवरु राउ सवल वर वीर ।
भुववल आप जु साहस धीरु, मान सिंधु जग जानियै ।
ताके राजु सुखी सव लोगु, राज समान करहिं सव भोगु ।
जैन धर्म वहु विधि चलै, श्रावग दिन जु करे षट् कर्म ।
निहचै चितु लावैहि जिन धर्म, नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।४४ ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संवतु पन्द्रहसै दो गनै, गुन गनुहतरि ता उपरि भने।
भादो वदि तिथि पंचमी वारु, सोम नषितु रेवती मास।
लगुन भली सुभ उपजी मती, चन्द्र जन्म वलु पाइयौ।
चतुरु भनै भखी सयलनि दासु, गुनिय सुनत जिय करहि न हासु।
लछि उपसमै वुधि हीनु, मै स्वामी को कियो वखानु।
पढत सुनत जां उपज्यै ग्यानु, मन निहचल करि जिय धरऊ।
राजमती जिन संजमु लियौ, नेमि कुंवर नेमि सयल वीनयौ।
नेमि कुंवर नेमि जिन वंदिहीं ।।४५।।

।। इति नेमिसुर कौ उरगानौ समाप्त ।।

संवत् १८२....वर्ष सव माह वदी १४ व सेरो गुरु। लीखीतं श्री देवेन्द्रकीर्ति आचरज सीसज के पंह।

□□□

२. गीत (गारि)

[१]

ना जानो हो को को चेरै ढीलरीया कत जाई ।।
मन चेतहु हो अमुका सघई सुणहु विचारु ।। मन ।।
चनु गति भवकत भ्रमहु, संसारु, घरु परविणु सवु प्रयो है जारु।
जगतारनु जिन नामु अधारु, जीवदया विनु धरम्मु ण सारु ।। मन ।।
जिनवर पूजा रचहु करि भाउ, आठ दव्व लेई पूजा साहु ।। मन ।।
पर परम गुरु जाय जपाहु, समिकतु निहचलु चितह धराहु ।। मन ।।
भवति जिलथु पंचम गति जाहु, संसारह श्रावग कुलि सारु ।। मन ।।
भनई चनु श्रावगु श्रीमारु, मन चेतहु हो अमुका सघई सुणहु विचार ।।

[२]

गाडी के गडवार की पइया घर कहिगै ।। इहि आयति ।।
गनधर गोतम स्वामी, सुमिरि जिणु वंदहुगै।
भव संसारु अपारु, भविक गण ऊतरहिगै।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चौगैं गवरणु निवारि, मुकति सिरी सी जैगी ।
तुम्ह लईय भविक जन लेहु, कहा भव की जैगी ।
श्रावग कुलि अवतारु, वहुरि णर लीजैगै ।
धर्म्म दया जग सारु, सुनिह यैकौ जैगे ।
दस लखरिण जिन धम्मु, दिनह किन कीजैगे ।
सातो विसन नीवारि, कर्म्म क्यो की जैगै ।
तिजि मिथ्यातु अपारु, सुमति जी घरि जैगी ।
क्रोधु मान मदु लोभु न मया को जैगी ।
परु परिहरि भव दूरि कवन सुखु पावहिगै ।
परमात्मा मन ध्यानु परिवि चितु लावहिगो ।
जा ते तिरिह तुरंत संसारु मोख पद पावहिगै ।
श्रावग सुणहु विचारु, चतुरु यों गावहिगै ।।

[३]

आइ तिवा वावारी कै जईयौ ।।
वावा वारी क्यो जइयो, भवियण वंदहु करि जोरि ।
जिनवर चलन जुहारी, चै गै गमनु निवारि ।
भव संसारह तारैं, संभलि जीव अजाणा ।
माया मोह भुलाना, बहु मिथ्यातु भरीई ।
श्रावग कुलि कत आयो, अहलै जन्मु गवायो ।
ऊतिम कुलि कत अवतरीया, सात विसन मद भरिया ।
मोह महा मद राच्यो, मूलगुना नरु जाणै ।
ईन्द्री पाचो सुखु मानो, आई तिवा वावारी कै जइयौ ।।
भवीयहु लाख चौरासी, बंध्यो मोह की पखि ।
जिणवर चलन जुहारी, आवागमनु निवारी ।
यह त्रीय लोकु भमाई, सवै देय जुहारे ।
को भव पार उतारो, जीव दया नरु पारै ।
सिवपुरि गमनु निवारैं, आई तिवा वावारी के जईयौ ।
भोजनु राति कराई, वहु संसारु भमाही ।
चौविधि दानु न दीणै, सुधो भाउ न कीणे ।
मिथ्या मोह भुलाणा, जिनवर धम्मु न जाण्यो ।
लहियो श्रावग कुलि जन्मु. करि दिन जिणवर धम्मु ।
ज्यो जीय लहे सुख ठाऊ, तो घरि निहचलु भाऊ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आतमा ध्यानु करीजैं, सहि पंचम गति लीजैं।
श्रावग सुणहु विचारु, भनई चतुरु श्रीमारु ॥

क्रोध गीत [४]

क्रोध—

क्रोध न कीजै जीवरा, कछु उपसमु हो।
उपसमुहि पराकिए घरहि, क्रोध अगिनि जब पर जोरै।
तव अप्पो हो अप्पो तापई परुतवै।
परुतवै अप्पा गुननि जारैई, क्रोध हीयरा जब धरै।
सुमति करनए वीसरई, ईही सील संजमु सवु अविरया।
जव सुरिस मन संचरैई, इम जानि जिवडा गहहि उपसमु।
क्रोधु खिणमत कोई करै, क्रोध न कीजै जीवरा ॥१॥

(२)

मान—

मानु न कीजै जोईवरा।
तिसु मानहि हो मानहि जीयरा दुखु सहै।
अप्पु सराहै हो भलो, पुणि परु की हो परु की णित करई।
परु करैइ निंद्रा नित प्रानी, इसोइ मन गरवै खरौ।
हउ रूप चतुरु सुजानु संदरु ईसोप भनै मद भरै।
अहमेव करि करि कम्मं बंधौ, लाख चौरासी महि फिरै।
इम जानि जियरा मानु परिहरि, मानु वहु दुखह करौ ॥२॥

(३)

माया—

माया परिहरि जीवडा, जीऊ सुग्गहि हो सुहि पावइ सुख घनौ।
माया कपटै जे चलहि ते पावहि हो पावहि दुख दालिदु घनो।
दुख तनोऊ दालिदु भग्ङिऊ जीबरा, कम्मं फेरै ऊडो लई।
घर घरह भीतरि आनु प्रानी वयन अैरै बोलए।
परपंचु करि करि तवई परु कहु कपटु सवु माया तनौ।
इम जानि जीवडा तिजहि माया, जीऊ सुपावई सुख घनौ ॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४)

लोभ—

लोभु न कीजई जीवरा, तिसु लोभहि हो लोभहि लाग्यौ पापु घनौ ।
तिसु पापहि हो पापहि जीयडा दुखु सहेई ।
दुखु सहइ जीउयरा लोभ काह्न लोभ कहुडीउ तरफरई ।
ईहु लोभ कारन जीऊ पतिगा, देखत इंदियडा परई ।
संकलप विकलप भर्योऊ जियडा, लोभु इंछइ चित धरई ।
इम भनई वूँ मनि निसुनि भवियन, लोभु खिन मत कोई करै ।।४।।

।। इति क्रोध गीत समाप्त ।।

ये सभी चारों पद शास्त्र भण्डार दि० जैन बड़ा मन्दिर तेरहपंथियान् जयपुर के गुटके में संग्रहीत हैं ।

□ □ □

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४

गारवदास

गारवदास विक्रमीय १६ वीं शताब्दि के चतुर्थ पाद के कवि थे। उनके सम्बन्ध में सर्वप्रथम मिश्रबन्धु विनोद में एक उल्लेख मिलता है जिसमें एक पंक्ति में कवि का नाम, ग्रन्थ नाम, रचना काल एवं रचना स्थान का नाम दिया हुआ है। लेकिन उसमें गारवदास के स्थान पर गौरवदास तथा रचना संवत् १५८१ के स्थान पर संवत् १५८० दिया हुआ है। मिश्रबन्धु के परिचय के पश्चात् भी हिन्दी विद्वानों के लिए गारवदास अज्ञात एवं उपेक्षित से रहे। सन् १९४८–४९ में जब मैंने राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ-सूची बनाने का कार्य प्रारम्भ किया तो जयपुर के ही दि० जैन बड़ा मन्दिर तेरह पंथियान् में इसकी एक पाण्डुलिपि प्राप्त हुई जिसका उल्लेख ग्रन्थ-सूची के चतुर्थ भाग में पृष्ठ संख्या १९१ के २३१३ संख्या पर किया गया। लेकिन उस समय भी कवि के महत्व को प्रकाश में नहीं लाया जा सका और इसके पश्चात् भी कवि एवं उनका काव्य विद्वानों से ओझल ही बने रहे।

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाश्य दूसरे पुष्प के संवत् १५६० से १६०० तक होने वाले कवियों के सम्बन्ध में जब निर्णय लेने से पूर्व गारवदास एवं उनकी रचना यशोधर चरित को देखा गया तो हिन्दी की महत्वपूर्ण कृति होने के कारण कविवर बूचराज के साथ गारवदास को भी सम्मिलित किया गया।

गारवदास हिन्दी कवि थे लेकिन वे प्राकृत एवं संस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे। यद्यपि अभी तक उनकी एक ही काव्य कृति यशोधर चरित्र उपलब्ध हो सकी है लेकिन वही एक कृति उनकी विद्वता की परख के लिए पर्याप्त है। वैसे कवि की और भी रचनायें हो सकती हैं लेकिन जब तक उत्तर प्रदेश के प्रमुख भण्डारों की खोज पूर्ण न हो जावे तब तक इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता।

कवि परिचय

कविवर गारवदास उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे। उनका ग्राम था फफोतूपुर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(फफोंदु) जिसमें श्रावकों की अच्छी वस्ती थी। वे प्रति दिन अष्ट द्रव्य से जिन पूजा करते थे। उनके पिता का नाम राम था। कवि पर सरस्वती की पूर्ण कृपा थी। इसलिए उनका वाक्य ही काव्य बन जाता था।[1] पुराणों को सुनने में कवि को विशेष रुचि थी। एक बार कवि को नगकैलई के निवासी साह थेघु के पास जाने का काम पड़ा। जब थेघु श्रावग ने गारवदास के वचनामृत का पान किया तो वह प्रसन्न हो गये और हाथ जोड़कर कहने लगे कि यदि यशोधर कथा को काव्य बद्ध कर सको तो उसका जीवन सफल माना जावेगा। थेघु श्रीमन्त ने यह भी कहा कि जिस प्रकार कवि ने इस कथा को अपने गुरु से सुनी है उससे भी अधिक सुन्दर रूप से उसको वह चाहता हैं। कथा कवित्त बंध चौपई छन्द में होनी चाहिए। इस प्रकार प्रस्तुत काव्य रचने की प्रेरणा कवि को फफोंदु निवासी थेघु से प्राप्त हुई थी।[2]

कवि ने यशोधर चरित्र की रचना संवत् १५८१ भादवा शुक्ला १२ बृहस्पतिवार को समाप्त की थी।[3] रचना समाप्ति के सयय कवि सम्भवतः अपने आश्रयदाता के पास ही थे।

आश्रयदाता

उत्तर प्रदेश में गंगा और यमुना के बीच में कैलई नाम की नगरी थी। उसको देवतागण भी सुख और शान्ति की नगरी मानते थे। वहाँ ३६ जातियाँ थी

---

१. राम सुतनु कवि गारवदासु, सरसुति भई प्रसन्नी जासु।
वसत फफोतपुर सुभ ठोर, श्रावग वहुत गुणी जहि ओर ।।५३२।।
वसुविह पूज जिनेस्वर एहानु, लै अभारु दिन सुनहि पुरानु ।।५३३।।

२. थेघु सनै कवि गारवदासु, निसुनि वचनु चित भयो हुलासु।
द्वै कर जोरि भएँ गुन गेहु, सफल जनम मेरौ करि लेहु ।।१८।।
सलिल कथा जसहर की भासि, जिम गुरु पास सुनी तुम रासि।
जो वहु आदिकविसुर भए, अरथ कठोर वरित रचनए ।।१९।।

३. संवत् पन्द्रह सै इकअसी, भादौ सुकिल श्रवण द्वादसि ।।५३३।।
सुर गुरुवारु करगु तिथि भली, पूरी कथा भई निरमली।
जसहर कथा कही सव भासि, सिरवलौ भाव परम गुर पासि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो सभी सम्पन्न थी।[1] अभयचन्द[2] वहां का शासक था जो अतीव सुन्दर एवं पूर्ण चन्द्रमा के समान था। प्रजा में सुख एवं शान्ति व्याप्त थी तथा किसी को कोई भी दुःख नहीं था। उस नगरी में श्रावकों की घनी बस्ती थी। उसी में पद्मावती पुरवाल जाति थी जो जैन धर्मानुयायी थी। उसी में साह कान्हर थे और उनके सुपुत्र थे भारग साहु। वे यशस्वी श्रावक थे। उन्होंने चार गांव बसाये थे जिनके नाम थे जसरानौ, गौछ, अैतपुरु और सोहारु।[3] इनके बसाने से उसकी कीर्ति चारों ओर फैल गयी। सुलतान भी उसके कार्य से प्रसन्न था। उसकी धर्म पत्नि का नाम था देवलदे।[4] उसके उदर से तीन सन्तान हुई जिनके नाम थे मेघु, जनकु एवं थेघु साह। थेघु साह बहुत ही स्वाध्यायी श्रावक थे। एक बार थेघु साह ने संघ सहित पार्श्वनाथ की यात्रा भी की थी और वापिस आने पर उसने नगर में सबको भोजन कराया। कुछ समय पश्चात् उसको पुत्र रत्न की प्राप्ति भी हुई। थेघु सेठ दानशील भी थे और लोगों को भक्तिपूर्वक दान देते थे।[5] वे रात्रि को जागरण करवाते थें जिससे श्रावकों में जिनेन्द्र भक्ति का प्रचार हो।

---

१. गंग जमुन विच अंतर वेलि, सुख समूह सुरमानहि केलि।
नयरी कैलई जनु सुरपुरी, निवसै धनी छतीसौ कुरी ॥५२२॥

२. अभयचन्दु जह राउ निसंकु, जनु कुलु षोडस कला मयंकु।
परजा दुखी न दीसै कोइ, धर घर वधि वधाऊ होइ ॥५२३॥

३ श्रावग बहुत वसहि जहि गाम, जनु आसिकौ दीनौ सियराम।
पोमावे पुरवर सुखसील, सुर समान घर मानहि कील ॥५२४॥
सा कन्हर सुतु भारग साहु, जिनि धनुष रंचि लियो जसलाहु।
जस रानौ परनु सुभ ठोरु, गौछ महापुरु दूजो औरु ॥५२५॥
अनगरु अैतपुरु अरु सौहारु, चारचौ गांव बसावन हारु।
जासु नामु पडुवा मुरितान, राज काज जान्यौ सुरिताण ॥५२६॥

४. तासु नारि देवलदे नाम, जिम ससिहर रौहिनि रतिकाम।
सोलु महातहि लीनौ पोषि, नंदन तीनि अवतरे कोषि ॥५२७॥
मेघु मेघु परसूजस रासि, जनुकु सु सूरु ससि सुक्र अकासि।
जेठौ थेघ साहु सुपहाणु, जासु नाम में ठयो पुराणु ॥५२८॥

५. पुन्न हेतु जानै उपगारु, जिनवर जगिन करावण हारु।
बहुत गोठि लै चाल्यो साथ, करी जात सिरी पारसनाथ ॥५२९॥
खरचि बहुतु धनु रावन थान, घर आयौ रियो भोपण दाण।
ताकौ पुत्र रत्नु अवतरचौ, रयनायरु गुण दीसै भरचौ ॥५३०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यशोधर चरित की कथा को समस्त जैन समाज में पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त है। यही कारण है कि इस कथा पर आधारित चरित्र, चरित, रास एवं चौपई आदि संज्ञक काव्य कितने ही जैन कवियों ने निबद्ध किये हैं तथा हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा में ही नहीं किन्तु प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत में भी यशोधर के जीवन पर कितने ही काव्य मिलते हैं।

यशोधर के जीवन से सम्बन्धित स्वतन्त्र रचना का उल्लेख सर्वप्रथम आचार्य उद्योतन सूरि (७७९ ई०) ने अपनी कुवलय माला कहा में प्रभंजन कवि के किसी यशोधर चरित का उल्लेख किया है। लेकिन उक्त कृति अभी तक अनुपलब्ध है। इसके पश्चात् महाकवि हरिषेण ने अपने वृहत्कथाकोष (९३२ ई०) में यशोधर के जीवन से सम्बन्धित एक स्वतन्त्र आख्यान लिखा है इसलिए अभी तक उपलब्ध रचनाओं में हम इसे यशोधर के जीवन पर आधारित प्रथम आख्यान मान सकते हैं। लेकिन १० वीं ११ वीं शताब्दि के साथ ही यशोधर के आख्यान ने जैन समाज में बहुत ही लोकप्रियता प्राप्त की और एक के पश्चात् दूसरे कवि ने इस पर अपनी लेखनी चलाकर उसे और भी लोकप्रिय बनाने में पूर्ण योग दिया।

राजस्थान के जैन भण्डारों में यशोधर के जीवन पर आधारित निबद्ध कितने ही काव्य उपलब्ध होते हैं। इन काव्यों के नाम निम्न प्रकार हैं—

अपभ्रंश

१.	जसहरचरिउ	महाकवि पुष्पदन्त	१० वीं शताब्दि
२.	,,	,, रइधू	१५ वीं शताब्दि

संस्कृत

३.	यशस्तिलक चम्पू	आ० सोमदेव सूरि	संवत् १०१६
४.	यशोधर चरित्र	वादिराज	११ वीं शताब्दि
५.	यशोधर चरित्र	भट्टारक सकलकीर्ति	१५ वीं शताब्दि
६.	,,	आचार्य सोमकीर्ति	सवत् १५३६
७.	यशोधर कथा	भट्टारक विजयकीर्ति	१५ वीं शताब्दि
८.	यशोधर चरित्र	वासवसेन	—
९.	,,	पद्मनाभ कायस्थ	—
१०.	,,	पद्मराज	—
११.	,,	पूर्णदेव	—
१२.	,,	ज्ञानकीर्ति	सं० १६५६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१३.	यशोधर चरित्र	श्रुतसागर	१५ वीं शताब्दि
१४.	,,	क्षमाकल्याण	सं० १८३६

हिन्दी राजस्थानी

१५.	यशोधर रास	ब्रह्म जिनदास	१६वीं श० (प्रथम चरण)
१६.	,,	भट्टारक सोमकीर्ति	,, (चतुर्थ चरण)
१७.	यशोधर चरित	देवेन्द्र	सं० १६८३
१८.	,,	परिहानन्द	सं० १६७०
१९.	यशोधर रास	जिनहर्ष	सं० १७४७
२०.	यशोधर चौपई	खुशालचन्द	सं० १७८१
२१.	,,	अजयराज	सं० १७९२
२२.	यशोधर रास	लोहट	१८ वीं शताब्दि
२३.	यशोधर चरित्र	मनसुखसागर	सं० १८७८
२४.	यशोधर रास	सोमदत्त सूरि	—
२५.	,,	पन्नालाल	सं० १९३२

इस प्रकार यशोधर के जीवन से सम्बन्धित राजस्थान के जैन ग्रन्थागारों में २५ कृतियां प्राप्त हो चुकी हैं और अभी और भी कृतियां मिलने की सम्भावना है।

उक्त सूची के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गारवदास द्वारा यशोधर की कथा को काव्य रूप देने के पूर्व महाकवि पुष्पदन्त एवं रइधू ने अपभ्रंश में, आचार्य सोमदेव सूरि, वादिराज, भट्टारक सकलकीर्ति, भट्टारक सोमकीर्ति एवं विजयकीर्ति ने संस्कृत में तथा ब्रह्म जिनदास, भट्टारक सोमकीर्ति ने राजस्थानी भाषा में यशोधर के जीवन पर काव्य कृतियां निबद्ध की हैं। यद्यपि कवि गारवदास ने वादिराज के यशोधर चरित्र को अपने काव्य का मुख्य आधार बनाया था लेकिन उसने यशोधर से सम्बन्धित रचनाओं को भी अवश्य देखा होगा लेकिन स्वयं कवि ने इसका कोई उल्लेख नहीं किया है।

गारवदास का यशोधर चरित ५३७ छन्दों का काव्य है। वह न सर्गों में विभक्त है और न सन्धियों में। प्रारम्भ से अन्त तक कथा बिना किसी विराम के धारा प्रवाह चलती है और समाप्त होने पर ही विराम लेती है। इससे पता चलता है कि अधिकांश जैन कवियों ने काव्य रचना की जो शैली अपनायी थी उसका गारवदास ने भी अनुसरण किया प्रस्तुत कृति यद्यपि हिन्दी भाषा की कृति है लेकिन कवि ने उसमें बीच-बीच में संस्कृत के श्लोकों एवं प्राकृत गाथाओं का प्रयोग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करके न केवल अपनी भाषा विद्वता का परिचय दिया है लेकिन काव्य अध्ययन में थकने वाले पाठकों के लिए विराम तथा संस्कृत प्राकृत भाषा भाषी पाठकों के लिए नयी सामग्री उपस्थित की है। १६ वीं शताब्दि में यह भी एक काव्य रचना की पद्धति थी। भट्टारक ज्ञानभूषण (संवत् १५६०) ने भी 'आदीश्वर फाग' में इसी शैली की रचना की है जो गारवदास के ही समकालीन कवि थे।

यशोधर चरित की कथा का सार निम्न प्रकार है—

जम्बू द्वीप के भरतक्षेत्र में राजगृही नगरी थी। जो सुन्दरता तथा वन उपवन एवं महलों की दृष्टि से प्रसिद्ध थी। वहां के राजा का नाम मारिदत्त था। राजा मारिदत्त की युवावस्था थी इसलिए उसकी सुन्दरता देखती ही बनती थी। कला एवं संगीत का वह प्रेमी था। एक दिन एक भस्म लगाया हुए योगी उसके नगर में आया। योगी के वड़ी-वड़ी जटायें थी तथा वह भग के नशे में धुत्त हो रहा था। गौरवर्ण था। उसका नाम था भैरवानन्द। नगर में जब भैरवानन्द की तान्त्रिक एवं मान्त्रिक की दृष्टि से चारों ओर प्रशंसा होने लगी तो राजा ने भी उसे अपने महल में मिलने के लिए बुला लिया। भैरवानन्द के महल में आने पर राजा ने उसका विनय पूर्वक सम्मान किया। राजा की भक्ति से वह बहुत प्रसन्न हुआ और कोई भी इष्ट वस्तु मांगने के लिए कहा। राजा ने अमर होने, एक छत्र राज्य चलाने तथा विमान में चलने की इच्छा प्रकट की। भैरवानन्द ने राजा की प्रार्थना को पूर्ण करने का आश्वासन दिया लेकिन उसने चंडमारि देवी के मन्दिर में बलिदान के लिए सभी प्रकार के जीवों को लाने तथा एक मानव युगल का भी बलिदान करने के लिए कहा। राजा तो विद्या के लिए अन्धा हो चुका था इसलिए उसने तत्काल अपने अनुचरों को आदेश पालने के लिए कहा। उसके सेवक चारों ओर दौड़ गये तथा सभी प्रकार के पशु पक्षियों को लाकर उपस्थित कर दिया। लेकिन मानव युगल खोजने पर भी नहीं मिला।

कुछ ही समय पश्चात् वन में अनेक मुनियों के साथ सुदत्त मुनि का आगमन हुआ। वह वन खिल उठा। चारों ओर पुष्पों पर भ्रमर गुञ्जार करने लगे एव कोयल कुहु कुहु करने लगी। मुनि ने उसी वन में ठहरने का विचार कर लिया। लेकिन वह वन गंधर्वों का भी निवास स्थान था जहां वे केलि किया करते थे इसलिए सुदत्ताचार्य को वह वन समाधि के उपयुक्त नहीं लगा। वह अपने संघ सहित श्मशान भूमि पर चले गये। आचार्य ने एक युवा मुनि एवं साध्वी को नगर में आहार के लिए जाने को कहा। वे दोनों भाई बहिन थे। दोनों अत्यधिक कमनीय शरीर के थे तथा बत्तीस लक्षणों वाले थे। इतने में ही राजा के सेवकों की दृष्टि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन दोनों पर पड़ी। उनकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा और वे दोनों को चडामारि देवी के मन्दिर में ले गये।

मन्दिर का दृश्य विकराल था। चारों ओर पशु पक्षियों की मुंडियां, अस्थियां एवं उनका रक्त बिखरा हुआ था। भयंकर दुर्गन्ध से वातावरण अत्यधिक भयानक था। भाई ने बहिन को शरीर से मोह छोड़ने तथा आत्म स्थित होने के लिए समझाया। साथ ही में साधु संस्था के महत्व को भी समझाया। जब राजा ने अत्यधिक सुन्दर उस मानव युगल को देखा तो वह भी उनके रूप लावण्य को देखकर आश्चर्य करने लगा। उसने उन दोनों से दीक्षा लेने का कारण जानना चाहा तथा बाल्यावस्था में ही तपस्वी बनने का कारण पूछा। राजा का वचन सुनकर अभयकुमार ने हँसकर निम्न प्रकार अपनी जीवन गाथा कही—

अवन्ती देश की उज्जयिनी राजधानी थी। वह नगर स्वर्ग के समान सुन्दर था। चारों ओर फलों से लदे वृक्ष तथा मन्दिर एवं महलों से युक्त थी। वहां के नागरिक भी देवता के समान थे। नगर में सभी जातियां रहती थीं। वहां के राजा का नाम यशोधु था तथा चन्द्रमती उसकी रानी थी। वह शरीर से कोमल तथा गजगामिनि थी। न्यायपूर्वक शासन करते हुए जब उन्हें बहुत दिन बीत गए तो उन्हें एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम यशोधर रखा गया। बालक बड़ा सुन्दर एवं होनहार लगता था। आठ वर्ष का होने पर उसे चटशाला में पढने भेजा गया। विद्यालय जाने के उपलक्ष में लड्डू बांटे गये तथा गणेश एवं सरस्वती की पूजा की गयी। यशोधर ने थोड़े ही दिनों में तर्कशास्त्र, व्याकरण शास्त्र, पुराण आदि ग्रन्थ तथा अश्व, हाथी आदि वाहनों की सवारी सीख ली। पढ़ लिखकर वह पुनः माता-पिता के पास गया। इससे दोनों बड़े आनन्दित हुए। यशोधर का विवाह कर दिया गया। एक दिन राजा यशोधु सभा में विराजमान थे कि उन्होने अपने सिर में एक श्वेत केश देख लिया इससे उन्हें वैराग्य हो गया और अपना राज्य कार्य यशोधर को सौंपकर स्वयं तपस्वी बनने के लिए वन में चल दिये।

यशोधर बड़ी कुशलता पूर्वक राज्य कार्य करने लगा। उसकी महारानी का नाम अमृता था जो देवी के समान थी। कुछ काल उपरान्त एक कुमार उत्पन्न हुआ जिसका नाम यशोमती रखा गया। यशोधर ने अपने राजकुमार को शासन का भार सौंप स्वयं अपनी रानी अमृता के साथ आनन्द से रहने लगा। यशोधर को अमृता के बिना कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। अमृता के महल के नीचे ही एक कुबड़ा रहता था जो दुर्गन्धयुक्त शरीर वाला, अत्यधिक विरूप था लेकिन वह संगीत का बहुत ही जानकार था। रानी ने जब उसका संगीत सुना तो वह उस पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आसक्त हो गयी और उसके बिना अपना जीवन व्यर्थ समझने लगी। अर्ध रात्रि को जब राजा यशोधर उसके पास सो रहा था तो वह उसको सोता हुआ छोड़कर अपनी एक सेविका के साथ उस कुबड़े के पास चल दी। कवि ने रानी अमृता एवं दासी की बहुत ही सुन्दर वार्ता प्रस्तुत की है साथ में संगीत विद्या का भी राग रागनियों के साथ अच्छा वर्णन किया है।

जाती हुई रानी के नुपुर की आवाज सुनकर राजा को चेत हो गया। जब उसने रानी को अर्ध रात्रि में कहीं जाते हुए देखा तो एक बार तो उसे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। लेकिन उसे पलंग पर नहीं पाकर वह भी हाथ में तलवार लेकर रानी के पीछे-पीछे दवे पांव से चल दिया। रानी ने कुबड़े को जाकर जगाया और उसके चरणों को छुआ। कुबड़े ने उसे गारी निकाली फिर भी रानी एवं उसकी दासी हँसती रही और उसकी मनुहार करती रही। रानी ने उस कुबड़े के गले लग कर कहा कि वह उसके बिना नहीं रह सकती। लेकिन वे दोनों ऐसे लगे जैसे हंस के साथ कौवा। रानी ने कूबड़े के पांव दबाये तथा सभी तरह से उसकी सेवा की। यह देखकर राजा से नहीं रहा गया और उसने तलवार निकाल ली। लेकिन उसने विचार किया कि स्त्रियों पर तलवार चलाना कायरता कहलाती है तथा कुबड़ा जो दिन भर झूंठन खाकर पेट भरता रहता है उसे मारने से तो उल्टा उसे अपयश ही हाथ लगेगा। यह सोचकर राजा ने तलवार वापिस रख ली।

वहां से राजा यशोधर अपने हृदय को बज्र के समान करके पालकी में बैठ कर चित्रशाला चला गया। रानी तो काम विह्वला थी इसलिये कुबड़े के साथ काम क्रीड़ा करके वापिस महलों में आ गयी। अब वह राजा को जहरीली नागिन के समान लगने लगी। जिसके साथ क्रीड़ा करने में राजा आनन्द की अनुभूति करता था वह अब विषवेलि लगने लगी। राजा को रानी की लीला देखकर जगत् से उदासीनता हो गयी। प्रातःकाल हुआ। उसकी माता चन्द्रमती भगवान की पूजा करके हाथ में आसिका लेकर राजा के पास आयी। राजा द्वारा माता के चरण छूने पर उसने आशीर्वाद दिया। राजा ने अपनी माता से कहा कि उसने आज रात्रि को जैसा सपना देखा है उससे लगता हैं उसके राज्य का शीघ्र विनाश होने वाला है। इसलिए उसके वैराग्य धारण करने का भाव है। लेकिन माता ने कहा कि तपस्वी बनना कायरता है। जो राजा स्वप्न से ही डरता है वह युद्ध भूमि में कैसे जा सकता है। इसलिए राजकाज करते हुए ही देवी देवताओं को बलि चढ़ा कर उनको प्रसन्न कर लेना चाहिए जिससे सारे विघ्न दूर हो सकें। नगर के बाहर कंचाइण देवी है उसको बलि चढ़ाने से सब विघ्न दूर हो सकते हैं। लेकिन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा ने ऐसे किसी भी कार्य को करने का प्रतिवाद किया और हिंसा से कभी शान्ति नहीं मिल सकती, ऐसा अपना मन्तव्य प्रकट किया।

जीव घात जो उपजै धम्मु, तौ को अवरु पाप को कम्मु।
जे ते लख चौरासी खाणि, ते सब कुटमु माइ तू जाणि॥

रानी चन्द्रमती के विशेष आग्रह पर राजा यशोधर देवी के मन्दिर में गया और यह भाव रखते हुए कि वह मानों जीवित कुकुट है, आटे के कुकुट की रचना करवाकर उसी का देवी के आगे बलिदान कर दिया। इससे राजा को जीव हिंसा का दोष तो लग ही गया। देवी के मन्दिर में से राजा अपने महल में आया और अपना सम्पूर्ण राजपाट अपने लड़के को देकर स्वयं वन में तपस्या करने के लिए जाने का निश्चय किया। राजा मारदत्त ने जब यह कथा सुनी तो उसने भी कर्मगति की विचित्रता पर आश्चर्य प्रकट किया।

जब रानी अमृता ने यशोधर के तप लेने की बात सुनी तो वह भविष्य की आशंका के भय से डरने लगी। इसलिए वह भी राजा के पास गयी और उसी के साथ दीक्षा लेने की बात कही। राजा ने पहले तो उसके वचनों पर विश्वास ही नहीं किया लेकिन रानी राजा को मनाने में सफल हो गयी और उसने साथ-साथ तप लेने की स्वीकृति प्रदान कर दी।

बालम बिनु किम भामिनी, किम भामिनी बिनु गेहु।
दान विहीनो जेम घरु, सील विहीनो देहु॥२८८॥

राजा की स्वीकृति पाकर रानी वापिस अपने महल में चली गई। वहां वह अपने भोजनशाला में गयी। उसने बहुत से विषयुक्त लड्डू बनाये और उनमें से कुछ लड्डू लेकर वह वन में गयी जहां राजा यशोधर एवं चन्द्रमती बैठे हुए थे। अमृता ने दोनों को विषयुक्त लड्डू खिला दिये। लड्डू खाने के बाद पहिले चन्द्रमती मर गयी और थोड़ी देर बाद राजा भी वैद्य-वैद्य करता हुआ तड़फने लगा। रानी अमृता को इससे बहुत डर लगा और उसने केश मुंडाकर साध्वी का भेष धारण कर लिया और अपने पति को घसीट कर मार दिया। फिर वह जोर-जोर से रोने लगी। रानी का रोना सुनकर उसका लड़का वहां आया और पिता को मरा हुआ देखकर मुंह फाड़कर चिल्लाने लगा, साथ ही में दूसरे लोग भी रोने लगे तथा रानी को सान्त्वना देने लगे। उन्होंने संसार का विविध स्वरूप बताया और सन्तोष धारण करने की प्रार्थना की। सब लोग राजा यशोधर एवं चन्द्रमती को श्मशान ले गये और उनका दाह संस्कार किया। यहीं से यशोधर एव रानी चन्द्रमती के भवों का वर्णन प्रारम्भ होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा यशोधर मर कर उज्जैनी में ही मोर हुआ और चन्द्रमती श्वान हुई। श्वान का अन्य जीवों के साथ स्नेह हो गया और वह मन्दिर के बाहर रहने लगा। एक दिन एक शिकारी बहुत से पक्षियों को पकड़ कर वहां लाया। उनमें एक मोर बहुत ही सुन्दर था। शिकारी ने उसको मन्दिर में छोड़ दिया। वहां वह बहुत ही कौतुक दिखाने लगा। वह कभी कभी वहां नाचता रहता था। एक दिन घनघोर पावस का दिन था। मोर मन्दिर के शिखर पर चढ़ गया उसको वहां पूर्व भव का स्मरण हो आया। वह सब लोगों को जान गया। उसने अपनी चित्रशालाएँ देखी। अपनी नीली गर्दन को देखकर दुःख हुआ तो अपने आप अपनी चोंच से घाव करके मर गया। चन्द्रमती मर कर कुत्ता हुई जिसको शिकारी ने महाराज को भेंट में दिया। वह कुत्ता जो माता का जीव था, उसने मोर की गर्दन पकड़ कर मार डाला। उस समय राजा जो चौपड़ खेल रहा था, उसे छुड़ाने के लिए दौड़ा लेकिन कुत्ते ने उसे नहीं छोड़ा। राजा ने कुत्ते को मार डाला। इस प्रकार दोनों ने साथ ही प्राण त्यागे। श्वान मर कर फिर मोर हो गया और वह कुत्ता मर कर कृष्ण सर्प हुआ। मयूर एवं सर्प में स्वाभाविक बैर होता है इसलिए उसने देखते ही सर्प का काम तमाम कर दिया। इनके पश्चात् मोर मर कर बड़ी मछली हुआ तथा उस सर्प ने मगर की योनि प्राप्त की। उज्जैनी में एक दिन एक सुन्दरी स्नान के लिए आयी, जब वह स्नान में तल्लीन थी उस मगर ने उसे निगल लिया। तत्काल धीवर को बुलाया गया और उसने जाल डालकर उस मगर को पकड़ लिया तथा उसे लाठियों, घूसों एवं लातों से मार दिया। उसके बाद वह मर कर बकरी हो गयी। कुछ दिनों बाद मछली भी पकड़ में आ गयी। मरने के बाद वह भी पुनः बकरा बन गयी।

एक दिन जब बकरा एवं बकरी स्नेहासिक्त थे तब उनके मालिक द्वारा वह बकरा लाठियों से मार दिया गया। लेकिन उसने पुनः बकरे के रूप में जन्म लिया। कुछ समय बाद बकरी एक टांग काट दी गयी और धीरे-धीरे वह मृत्यु को प्राप्त हुई। फिर वह मर कर भैंसा हो गयी। और उसके पश्चात् दोनों का जीव मृत्यु को प्राप्त कर मुर्गा मुर्गी के रूप में पैदा हुआ। एक दिन राजा को मुर्गा मुर्गी की लड़ाई देखने की इच्छा हुई लेकिन वह उनकी सुन्दरता से इतना प्रभावित हुआ कि उसने उन्हें वन में छोड़ देने का आदेश दिया। वहीं पर जैन मुनि सुदत्त का आगमन हुआ। रानी ने उनसे धर्म कथा का श्रवण किया। सुदत्ताचार्य ने अहिंसा को जीवन में उतारने पर बल दिया। साथ ही में उसने यशोधर एवं चन्द्रमती की कथा कही जिन्होंने आटे का मुर्गा मारने से सात जन्मों तक अनेक कष्ट सहे। राजा यशोमति ने एक दिन दोनों मुर्गा मुर्गी को मार डाला। लेकिन उन दोनों का जीव ही रानी के गर्भ में कुमार एवं कुमारी के रूप में अवतरित हुए। राजकुमार का नाम अभयरुचि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं राजकुमारी का नाम अभयमति रखा गया। राजा यशोमति ने जब सुदत्त को वन में तपस्या करते हुए देखा तो वह क्रोधित होकर उन्हें मारने को तैयार हुआ। लेकिन गोवर्धन सेठ ने राजा से मुनियों को न मारने की प्रार्थना की तथा उनकी महिमा के सम्बन्ध में राजा को बतलाया।

अभयरुचि एवं अभयमति को अपने पूर्व भव की बात सुन वैराग्य हो गया। और उन दोनों ने सुदत्ताचार्य के पास जाकर मुनि दीक्षा धारण करने की प्रार्थना की लेकिन सुदत्ताचार्य ने दोनों की बाल अवस्था देखकर निम्न प्रकार से कहा—

तुम दोऊ बालक सुकुमाल, कोमल जिसे पऊके नाल।
पंच महाव्रत दूसह खरे, ते तुम पासि जाहि किम धरे।।४६६।।

दोनों ने गुरु के वचन सुनकर अणुव्रत धारण कर लिये तथा कपड़े उतार क्षुल्लक क्षुल्लिका की दीक्षा ले ली। उन दोनों ने राजा मारिदत्त से कहा कि संयोगवश हम तुम्हारी नगरी में आहार के लिए आ रहे थे कि तुम्हारे सेवकों ने हमें पकड़ लिया और यहां ले आए। राजा मारिदत्त यशोधर के पूर्व भवों की कथा को सुनकर भयभीत हो गया तथा दोनों के पांवों में पड़ गया। उधर सुदत्ताचार्य ने अपने ज्ञान से अभयकुमार की बात जानकर तत्काल देवी के मन्दिर में आ गये। राजा मारिदत्त आचार्य श्री को देखकर उनके पांवों में पड़ गया। उसने देवी के मन्दिर को पूर्णतः स्वच्छ करा दिया। उसने विनय पूर्वक अपने तथा दूसरों के पूर्व भवों के बारे में पूछा। राजा मारिदत्त ने जब अपने पूर्व भवों के बारे में जाना तो उसे वैराग्य हो गया। उसने पंच मुष्ठि केश लोंच करके मुनि दीक्षा ले ली। भैरवानन्द जोगी भी उनके पांवों में गिर गया, सब पाखण्ड भाव छोड़ दिये और मुनि दीक्षा देने के लिए निवेदन किया। सुदत्ताचार्य ने कहा कि उसकी आयु केवल २२ दिन है। जोगी ने यह जानकर कठोर तप साधना की और मरकर दूसरे स्वर्ग में जन्म लिया। अभयरुचि एवं अभयमति मर कर प्रथम स्वर्ग में गये। इसी तरह मारिदत्त एवं सेठ भी तपस्या के बाद स्वर्ग में देव हुआ। आचार्य सुदत्त सम्मेद शिखर पर तपस्या करते हुए सातवें स्वर्ग में उत्पन्न हुए।

काव्य की विशेषताएँ

इस प्रकार यशोधर चौपई की कथा पूर्णतः रोचक एवं धाराप्रवाह में निबद्ध है। चौपई हिन्दी साहित्य की एक अनुपम कृति है जिसके सभी वर्णन अत्यधिक सरस एवं सुन्दर हैं। कवि घटनाओं के वर्णन के साथ-साथ व्यक्ति विशेष एवं स्थान विशेष का जब चित्रण करता है तो उनको भी सुन्दर एवं रुचिकर शब्दों में प्रस्तुत करता है। एक ओर वह स्थान विशेष की सुन्दरता के वर्णन करने में सक्षम है तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसी के विकृत वर्णन में भी वह अपनी योग्यता प्रस्तुत करता है। जहां एक ओर वह प्रकृति वर्णन में पाठकों का मन मोहता है तो दूसरी ओर घटना विशेष का वर्णन करके पाठकों के हृदय को द्रवित कर बैठता है।

कथा के एक प्रमुख पात्र हैं भैरवानन्द जिनके कारण ही सारा कथा स्रोत बहता है। उसी भैरवानन्द का जब कवि वर्णन करने लगता है तो वह स्वयं भैरवानन्द बनकर लिखने लगता है। उसकी दीर्घ जटाएँ हैं। शरीर पर भस्म रमा रखी है तथा कानों में मुद्रिका पहिन रखी है। भंग चढ़ा रखी है जिससे आंखें एवं मुख लाल प्रतीत होता है। रंग से वह गोरे हैं और पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुन्दर लगते हैं।

भस्म चढाई मुद्राकान, अनही बूझै कहै कहान।
दीरह जटा चढाए भंग, नयन घुलावै वंदन रंग।
गौर वरण मनो पून्यो चंदु, प्रगट्यो नाम भैरवानन्दु ॥३१॥

कवि श्मशान का वर्णन करने में और भी चतुरता प्रकट करता है। मुनि अपने संघ के साथ श्मशान में जाकर विराजते हैं। एक ओर श्मशान की भयानकता तो दूसरी ओर निर्ग्रन्थ मुनियों का वहीं ध्यानस्थ होना—कितना उत्तम संयोग है—श्मशान का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

संग सहित मुनि गयो मसान, मरे लोग डहिहि जहि थान।
मुंड रुंड दीसहि बहु परो, कृमि कीला लवि गधि घृण भरे ॥६०॥
जंबुक सान गंधि अरु काग, व्यंतर भूत खपरिहा लाग।
डाइनि पिवहि रुधिरु भरि चुरू, सूकै तरु वरि वासै उरू ॥६१॥
चिता बहुत पजलहि वो पास, घूमानलु भमि रह्यो अकास।
नयननु देखत फटै हियो, वैवस भवनु जनकु विहि कियो ॥६२॥

इसी तरह कवि के देवी के वर्णन में वीभत्स रस के दर्शन होते हैं। उसके हाथ में त्रिसूल है तथा वह सिंह पर आरुढ़ है। गले में मुंड माला पहिने हुए है तथा उसकी जीभ बाहर निकले हुए है। आंखें लाल हो रही हैं। ऐसा लगता है मानों अग्नि की ज्वाला उसके शरीर से ही निकल रही हो। उस देवी का पूरा शरीर ही रुधिर से सना हुआ था तथा पूरे शरीर में सर्प डोल रहे थे।

ऐसे भयानक स्थान पर भी जब साधु आते हैं तो उन्हें देखकर सभी नतमस्तक हो जाते हैं। राजा मारिदत्त ने जब अभयरुचि और अभयमति को वहां देखा तो वह उनकी सुन्दरता पर मुग्ध हो गया—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को हरिहरु संकरु धरणेसु, के दीसे विधाधर भेसु।
अरु सरुपका एह्व कुमारि, सुरि नरि किन्नरि को उनहारि ।।६८।।
यह रंभा कि पुरंदरि सची, रौहिनि रूप कवन विह्वि रचि।
सीता तारकि मंदोद्दरी, को दमयन्ती जोवन भरी ।।६६।।

प्रस्तुत काव्य में कितने ही ऐसे प्रसंग हैं जिनसे तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक दशा का भी पता चलता है। उस समय जब बालक आठ वर्ष का हो जाता था तो उसे पढ़ने के लिए चटशाला में भेज दिया करते थे। राजा यशोधर को भी उसी तरह पाठशाला भेजा गया था। गुरु के पास पढ़ने जाने पर घी गुड़ के लड्डू बना कर बांटा करते थे तथा सरस्वती की विनयपूर्वक पूजा की जाती थी—

पढन हेत सौप्यौ चटसार, घिय गुरा लाड़ू किये कसार।
पूजि विनायगु जिन सरस्वती जासु पसाइ होइ बहुमती ।।१३१।।
भाउ भक्ति गुरु तनी पयासि, पाटी लिखलीनी ता पासि।
पढ्यो तरकु व्याकरण पुराण, हय गय वाहन आवध ठान ।।१३२।।

राजा वृद्धावस्था आते ही अपना राज्य अपने पुत्र को देकर स्वयं आत्मा साधना में लीन हो जाते थे। महाराजा यशोधर के पिता ने भी जब अपना एक श्वेत केश देखा तो उन्हें वैराग्य हो गया और राज्य कार्य अपने पुत्र को सौंप कर स्वयं तपस्या करने वन में चले गये।

अवर वहुत बैठे नरनाथ, पेष्यौ मुहु दर्प्पनु लै हाथ।
धवलौ एकु कनेपुता केसु, मन वैराग्यौ ताम नरेसु ।।१४०।।
राउ जसोधर थाप्यो राज, आपनु चल्यो परम तप काज।
लीनो दीक्ष परम गुरु पास, तपु करि मुयो गयो सुर पास ।।१४४।।

पूरी कथा में कितनी बार उतार-चढ़ाव आते हैं। प्रारम्भ में भैरवानन्द के प्रवेश से नगर में हिंसा एवं बलि देने की प्रवृत्ति बढ़ती है तथा देवी देवताओं को प्रसन्न करके उनसे इच्छित वरदान मांगने की प्रवृत्ति की ओर हमारी कहानी आगे बढ़ती है। यह बलि पशु पक्षी तक ही सीमित नहीं रहती किन्तु अपने स्वार्थपूर्ति के लिए मानव युगल की भी बलि देने में तरस नहीं आता।

लेकिन जब अभयरुचि एवं अभयमति के रूप में मानव युगल देवी के मन्दिर में प्रवेश करते हैं तो कथा दूसरी ओर घूमने लगती है। उसका कारण बनता है राजा की उनके पूर्व जीवन को जानने की उत्सुकता। अभयरुचि बड़े शान्त भाव से अपने पूर्व भवों की कहानी कहने लगते हैं। राजा यशोधर के जीवन तक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तुत काव्य की कथा बड़े रोचक ढंग से आगे बढ़ती है। पाठक बड़े धैर्य से उसे सुनते हैं। लेकिन महारानी अमिय देवी एवं कोढी का प्रेमालाप उन्हें उत्सुकता एवं आश्चर्य में डालने वाला सिद्ध होता है। नारी कहां तक गिर सकती है, धोखा दे सकती है और पति तक को विष दे सकती है, जैसी घटनाएँ एक के बाद एक घटती रहती है और पाठक आश्चर्यचकित होकर सुनता रहता है।

यशोधर एवं चन्द्रमती के आगे के भवों की कहानी, उनका परस्पर का वैर विरोध, संसार के स्वरूप के साथ कर्मों की विचित्रता को बतलाने वाला है। यशोधर एवं चन्द्रमती सात भवों तक एक दूसरे के प्राणों को लेने वाले बनते हैं। उनके सात भवों की कहानी को पाठक मानों श्वास रोककर सुनता है और जब उसे अभयरुचि एवं अभयमति के रूप में पाता है तो उसे कुछ आश्वस्त होने का अवसर मिलता है। राजा मारिदत्त कभी भय विह्वल होता है तो कभी भयाक्रान्त होकर सभा स्थल से ही भागने का प्रयास करता है क्योंकि उसे ऐसा लगता है कि मानों वह उसी के जीवन की कहानी हो।

काव्य का अन्त सुखान्त है। सैकड़ों जीवों की बलि करने वाला स्वयं भैरवानन्द अपने पापों का प्रायश्चित करना चाहता है। और जब उसे अपनी आयु के २२ दिन ही शेष जान पड़ते हैं तो वह कठोर साधना में लीन हो जाता है और मर कर स्वर्ग प्राप्त करता है। इसी तरह राजा मारिदत्त भी सब कुछ छोड़कर प्रायश्चित के रूप में साधु मार्ग अपनाता है। यही नहीं स्वयं देवी की भी प्रवृत्ति बदल जाती है और वह हिंसा के स्थान पर अहिंसा का आश्रय लेती है। पहिले उसका मन्दिर जहां रक्त एवं चिल्लाहट से युक्त था वहां अहिंसा का साम्राज्य हो जाता है। अभयरुचि, अभययति एवं आचार्य सुदत्त सभी अपनी-अपनी तप साधना के अनुसार स्वर्ग लक्ष्मी प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार यशोधर चौपई एक अतीव सजीव काव्य है जिसकी प्रत्येक चौपई एवं दोहा रोचकता को लिए हुए है। सचमुच १६ वीं शताब्दि के अन्तिम चरण में ऐसी सरस रचना हिन्दी साहित्य की अनुपम उपलब्धि है। क्योंकि यह वह समय था जब देश में सामान्यजन में भक्ति की ओर तथा अध्यात्म की ओर झुकाव हो रहा था। मुसलिम युग होने के कारण चारों ओर युद्ध एवं मारकाट मची रहती थी इसलिए मनुष्य को ऐसे काव्य पढ़कर कुछ सीखने को मिलता था।

कवि ने काव्य समाप्ति पर निम्न मंगल कामना की है—

सयलु संघु वंदो सुख पूरु, जब लगि गंग जलधि ससि सूरु ॥५३५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेघमाल वरसै असरार, वोध वधाए मंगलचार ।
नि सुनि विवसमन लावहु खोरि, हीनु अधिक सो लीजहु जोरि ।।५३६ ।।

कवि ने अन्तिम पद्य में अपनी रचना के प्रचार प्रसार पर भी जोर दिया है तथा लिखा है कि जो भी उसकी प्रतिलिपि करेगा, करवायेगा तथा उसे औरों को सुनावेगा उसे अपार सुख होगा । पुत्र जन्म एवं सुख सम्पत्ति मिलेगी ।[1]

भाषा

भाषा की दृष्टि से यशोधर चौपई ब्रज भाषा की कृति है । गारवदास फफोदपुर (फफोंदू) के निवासी होने के कारण ब्रज प्रदेश से उनका अधिक सम्बन्ध था । साथ ही में वे ब्रज भाषा की मधुरता एवं कोमलता से भी परिचित थे । इसलिए अपनी रचना में सीधे सादे ब्रज शब्दों का प्रयोग किया हैं । नीचे दो उदाहरण दिये जा रहे हैं—

(१) तोहि कहा एते सौ परी जो हौं कहौ सुन्दरि रावरी ।
विहिना लिख्यो न मेट्यौ जाइ, मन मौ सखी खरी पछिताहि ।।२२२।।
(२) एक नारि कौ नंदनु भयौ, जसहर पास वधैया गयो ।। १४५।।

छन्द

यशोधर चौपई अपने नाम के अनुसार चौपई प्रधान रचना है । कवि के समय चौपई छन्द ब्रज भाषा का लाडला छन्द था तथा जन साधारण भी चौपई छन्द की रचनाओं को ही अधिक पसन्द करता था । चौपई छन्द के अतिरिक्त कवि ने दोहा, दोहरा, वस्तुबन्ध एवं साटकु छन्द का भी प्रयोग किया है । चौपई छन्द के पश्चात् दोहा छन्द का सबसे अधिक प्रयोग हुआ है तथा दो वस्तुबन्ध एवं एक साटकु छन्द का भी प्रयोग करके कवि ने अपने छन्द ज्ञान का परिचय दिया है । इन छन्दों के अतिरिक्त कवि ने अपने पांडित्य प्रदर्शन के लिए संस्कृत के श्लोकों, प्राकृत गाथाओं[2] का भी यत्र तत्र प्रयोग किया है । इससे मालूम पड़ता है कि उस समय जन साधारण की संस्कृत के प्रति भी अभिरुचि थी ।

अलंकार

अलंकारों के प्रयोग की ओर कवि ने विशेष ध्यान नहीं दिया । सीधी-सादी

---

१. पढै गुणै लिखि देई लिखाइ, अरु मूरिख सौ कहौ सिचाइ ।
ता गुण वर्णए बहुतु कवि कहै, पुत्र जनमु सुख सम्पत्ति लहै ।।५३७।।
२. ८६ वीं पद्य प्राकृत गाथा का है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बोलचाल की भाषा में काव्य रचना का मुख्य उद्देश्य होने के कारण उपमा एवं अनुप्रास अलंकारों के अतिरिक्त अन्य अलंकारों का अधिक प्रयोग नहीं हो सका है।

शैली

काव्य की वर्णन शैली बहुत सुन्दर एवं प्रवाहक है। कवि ने कथा की प्रत्येक घटना को बहुत ही सुन्दर शब्दों में निबद्ध किया है। कवि के वर्णन इतने सजीव होते हैं कि पाठक पढ़ता-पढ़ता आश्चर्यचकित होकर कवि के काव्य निर्माण की प्रशंसा करने लगता है। रानी एवं दासी में पर पुरुष के प्रसंग में जब वाद-विवाद होने लगता है तो पढ़ने में बड़ा आनन्द आता है। यहां उसका एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

दासी—

सुंदरि जोवनु राजधनु, पेषिन कीजै गव्वु।
संवरु सीलनु छाडिये, अवसि विनसौ सव्वु ।।२०२।।
सुनि फुल्लार विंद मूख जोति, छाडहि रयनु गहहि किम पोति।
तजहि हंसु किम सेवहि कागु, भूलौ भई खिलावहि नागु ।।

रानी—

परि जब मयनु सतावे वीर, तू न सखी जनहि पर पीर।
मन भावतौ चढै चित आणि, सोई सखी अमर वर जानि ।।२१६।।

इस प्रकार यशोधर चौपई कथानक, भाषा एवं शैली की दृष्टि से १६ वीं शताब्दि का एक महत्वपूर्ण हिन्दी काव्य है। प्रस्तुत काव्य अभी तक अप्रकाशित है और उसका प्रथम बार प्रकाशन किया जा रहा है। राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों में काव्य की एकमात्र पाण्डुलिपि जयपुर के दि० जैन बड़ा तेरहपंथी मन्दिर के शास्त्र भण्डार में सुरक्षित हैं। प्रस्तुत पाण्डुलिपि संवत् १९३० मंगसिर सुदी ११ रविवार के दिन समाप्त हुई थी ऐसा उसकी लेखक-प्रशस्ति में उल्लेख है। पाण्डुलिपि सुन्दर एवं शुद्ध है लेकिन उसमें लिपि संवत् के अतिरिक्त लिपिकार का परिचय नहीं दिया गया है। पाण्डुलिपि के ४३ पृष्ठ हैं जो $१०\times४\frac{1}{2}$ इञ्च ग्रन्थ आकार के हैं।[1]

□□□

२. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची भाग–चतुर्थ–पृ०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यशोधर चौपई

।। ॐ नमः ।। अव यशोघर चौपई लिखते ।।

मंगलाचरण —

जयउ जिनवरु विमलु अरहंतु सुमहंतु सिव कंतवरु।
अमर णयण रणिम्यर वंदिउ।
उवसमिय फलूसरइ तिजय बंधु दहधम्म णंदिउ ।।

दोहा

पणविवि पंच पमेढि गुरु अरकमि पुन्न पवित्तु।
णिसुणहु भव्व विचित्त कह जसहर तनउ चरित्तु ।।१।।

फुनि पणवमि सामिणि भारहि, जासु पसाइ सुवुधि मइ लही।
चंद्रवदणि मृग णयणि विसाल, धवलंवर आरुही मराल ।।२।।

अविरल विमल भास रस खाणि, वीणा दंड सुमंडिय पाणि।
छह दरसनि माणी वहुभाइं, सरसै सामिणि होइ हाइं ।।३।।

पणविवि भाव सम्मु गुरु सूरि, भासमि सुकह सुयण सुषु पूरि।
गुर गूगुर वंदन तिल तेल, जल चंदन चरु पुष्फए एल ।।४।।

पूजमि पडिम जासु के भाल, षेत्रपाल सुमु करहु दयाल।
लाजे दुरिजन ता कहि परछेद, विनु कारए प्रगटहि बहु भेद ।।५।।

जे पर दुषसुखु माणहि आपु, मूढ रयणे दिनु विढवहि पापु।
वगज्यो देनिहुराई रहै, वोलत वुरो पराई कहै ।।६।।

श्लोक

मुहपद्मजलाकारं वाचासोतलसंजुतं।
हृदयं कर्त्तरि संयुक्तं त्रिविधि दुर्ज्जनलक्षणं ।।७।।

न विना परवादेसु दुर्ज्जनो रमतोजसः।
स्वान सर्व्वरसं भोक्ते अमेधं वितृना नप्पते ।।८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिनको नाम न लीजे भोर दान पुण्य की षरे कठोर।
ते सवहीनु दूरि परिहरो, तिन अपतनु कोतातिन करो ॥९॥
भलो ना कछु निपजै तिन पास, करत निहोरो षरे उदास।
तिनके बचन कीजहि कान, अंधं जोवहि दोजहि जान ॥१०॥

श्लोक

नवन्ति सफला वृक्षाः नवन्ति सजनाः जनाः।
सुक्ककाष्टं च मूर्खं च न एवंति भजंतिजः ॥११॥

जिनके वयनु न निकसैं पोचा, निसि दिनु करहि दया पर रोचा।
जे पर को चितवहि उपगारु, निम्मंलु सुजसु भम्यो संसारु ॥१२॥

ते कलिमह पंचानन सीहा, तिन थुति करनि क्रेम इक जीह।
तिन सवहिनु सौ विनौ पयासि, मो पर दया करहु गुण रासि ॥१३॥

दोहा

जे परभीर समुद्धरण, पर घर करण समत्थ।
ते विहि पुरिसा अमरु करि, हरिस्यो जोरि विहत्थ ॥१४॥

पयडु महीयलि उत्तम वंसु, निय कुल मान सरोवर हंसु।
पदमावती वंस धवल जस रासि, तागुण सयल सकै को भासि ॥१५॥

आश्रयदाता का परिचय—

भारग सुतनु थेघु गुनगेहु, जिनवर पय अंवुरुह दुरेहु।
कीनै बहुत संतोष विहान, पिणिभव्व विच सचौदान ॥१६॥
निसि दिनु करै गुणी कौ मानु, धम्मुं छाडि चित धरै न आनु।
नग कैलई निवसे सोइ, जहि श्रावग निवसै बहु लोइ ॥१७॥
थेघु सनै कवि गारवदासु, निसुनि वयनु चित भयौ हुलासु।
द्वै कर जोरि भणै गुणगेहू, सफलु जन्मु मेरो करि लेहू ॥१८॥
सलिल कथा जसहर की भासि, जिम गुरु पास सुनी तुम रासि।
जे वहू आदि कविसुर भए, अरथ कढोर वरित रचे नए ॥१९॥
तासु छाह ले मौसो भासि, कवितु चौपही वंध पयासि।
गारभु भनै निसुनि कुल सूर, परिघन विवस आस रस पूर ॥२०॥

कवि द्वारा अपनी लघुता प्रकट करना—

पढचो न मैं व्याकरण पुराण, छंद भाइ अक्षर को ज्ञाता।
जौ वुधि विनु कछु कीजे जोरि, तौ बुधजन हसि लावहि षोरि ॥२१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तौ कहमि तिनके पालागि, वाढै धम्मु जाइ तमु भागि ।
चार चार पनविवि जिनराउ, सरसै सामि तिसु गुर पसाउ ।।२२।।

गाथा पयडिय श्रागम सुत्त श्रंतिम तित्थयर वीर समसरणं ।
गणि गोयमेण भणियं, णिसुनिय सिरिसेणि एन कह बिमलं ।।२३।।

वीरवानि सुनि गोयम भनी, प्रगटी कथा जसोधर तनी ।
सुनि श्रेणिक प्रगटी कलिमाह, गारवु भने तासु की छाह ।।२४।।

कथा का प्रारम्भ—

जंवूदीपु सुदंसनु मेर, लवनोदधि वेठ्यो चहुफेर ।
भरह षेतु दाहिनि दिसि वसै, पेषत मनु सुर वेको लसै ।।२५।।

रायगेहु पाटन सुभ ठौरु, जा सम महियलि णयरु ण श्रोरु ।
पंच वरण मनि दीसै षच्यौ, सोमहि तनौ तिबहु विहि रच्यौ ।।२६।।

मारिदत्त राजा—

चारि पवरि सतषने श्रवासा, वन उपवन सरवर चौपासा ।
तहि पुर मारिदत्तु महिपालु, सूरज तेजु दुवउ रसालु ।।२७।।

जौवनवंतु राजमद भस्यौ, अति प्रचंडु महियलि श्रवतर्यौ ।
रुपिनि नाम गेह वर णारि, श्रति सरूप रंभा उनहारि ।।२८।।

कोक कला संगीत निवास, षेवहि श्रगरु कुसम रसवास ।
ता समेतु मानै बहु भोगु, निसुनहु श्रवरु कथा को योगु ।।२९।।

भैरवानन्द का आगमन—

योगी एकु तहा श्रवधूतु, राज गेह पुर श्राइ पहूतु ।
भस्म चढाइ मुद्रा कान, श्रनही बूझै कहै कहान ।।३०।।

दीरह जटा चढाए भंग, नयन घुलावै चंदन रंग ।
गौर वरण मनौ पून्यौ चंदु, प्रगट्यौ नाम भैरवानंदु ।।३१।।

काहू जाय राइ सो कह्यौ, जोगी एकु नगर मौ रह्यौ ।
तंत्र मंत्र जानैं बहुभाइ, जोगी गुन गरुवो सुनि राइ ।।३२।।

राजा भनै जाहू ता पासि, ले श्रावहु वहु विनउ पयासि ।
जो किंकर नरवे पठायो, पवन वेग जोपहु गयौ ।।३३।।

पभनै स्वामी करहु पसाउ, बेगै चलहु बुलावै राउ ।
श्राडंवर सो जोगी चल्यौ, कौतिग लोग नगर कौ मिल्यौ ।।३४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योगिहि पेषि राउ गहगह्यौ, ग्रासनु छाडि पाइ परि रह्यौ ।
करु उचाइ तिनि दई ग्रसीसा, हूजौ राजु तुम्हारे सीसा ।।३५।।

श्लोक

पुष्पयंतप्रभालोके ग्रछौं सुरतरंगिनी ।
तावत् मित्रसमं जीव, मरिदत्तो नराधिप: ।।३६।।

ग्राशीर्वाद—

हौं तोकौ सुनि तूठो राइ, मांगि मांगि यो हियैइ समाई ।
भनै अमरुहौ महि ग्रवतर्‌यौ, जानमि सयलु महागुन भन्यौ ।।३७।।

व्यंतर भूत हमारे ईठ, रावनु रामु भिरत मैं दीठ ।
जव भारथु वीत्यौ कुरषेता, पेष्यौ भीमुह कारै देता ।।३८।।

जवहि कंसु नारायन हयौ, पेषत जरासिंघु क्षौ गयौ ।
वरणे भुवनु जिते महि भए, मो आगै च्यारचौ जुग गए ।।३९।।

द्वै कर जोरि मन्यौ तव राइ, पुण्य हमारौ भयौ सहाइ ।
तौ मो तेरो दरसनु भयौ, देषत पापु हमारो गयौ ।।४०।।

जौ तूसौं किमि मंगमि ग्राणा, करहि अमरु ग्ररु चलमि विवाना ।
एक छत्र ज्यौ ग्रविचल राजू, इतनै करमि हमारो काजू ।।४१।।

पाखंडी बोलै वरि घ्यानु, साचौ जाको फुरै न ज्ञानु ।
पुजवमि राय तुमारी ग्रासा, होहि ग्रमरु ग्ररु चलहि ग्रकासा ।।४२।।

चंडमारि देवी का वर्णन—

एकु बचनु करि मेरो एहू, जैतो इन वार्ता नकौ गेहु ।
चडमारि देवी ग्राप पनी, बहु बिधि पूजा करिता तनी ।।४३।।

जे ते जीव जुयल सब ग्रानि, नरवर आधिनि सुनि गुणषाणि ।
दैवलि सब देवी कै थाना, सिह्लवमि कायु निसुनि सिष जाना ।।४४।।

तव सुनि राव मूढ मति भयौ, राजा राजु करत परिहरौ ।
योगी तनी कुमति प्रभु षुह्यौ, कुंजर उवरि राउ ग्रारुह्यौ ।।४५।।

कीयौ वहूतु योगी कौ मान, गयौ तहा देवी को थान ।
योगी देवी भगतु नरेसु, किंकर कौ दीनौ उपदेसु ।।४६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवी के लिए जीवों को पकड़ कर लाना—

इतनौ करहू हमारौ काजू, देविहि बलि अघ वावहू आजु ।
राय वयनु सुनि धाए षरे, वन मौ जीव जाय पाकरे ।।४७।।

हरिण रोझहू सूकर सिवसान, महिस्त मेस छेरे लवकाना ।
कुंजर सीह वाघ फणि नोरचा, लारी आदि गनै को औरा ।।४८।।

जेते जीव पिषे सब अंषि, लए तितर करि पसु पंषि ।
फुनि कर योरि पयासहि सेवा, हस नर युयलु न पायो देवा ।।४६।।

तव नर वे अवरा मिसौ कही, मनुव युवलु विनु पूजा रहो ।
नेरौ कायु सवारहू एहु, मनुव जुवलु गहि देवेहि देहु ।।५०।।

निसु दिनु रहे हिंस मति भई, चंड कम्मं कक्कंश निर्द्ई ।
दस दिसि गए राय उपदेस, मढ विहार वन फिरहि असेस ।।५१।।

सुदत्त मुनि का विहार—

निसुनहु भव्व कहंतरु आनु, दया धम्मं गुणसील पहानु ।
तहि अवसरि सुदत्त मुनि सूर, कम्मं पयडिष्यो कीनी चूरि ।।५२।।

मुद्रा नगन कमंडर हाथ, बहुत रिषीश्वर ताके साथ ।
भवंतु भवतु सो तीरथ तान, पेष्यो तिवनु केवल नान ।।५३।।

तिहि नयरी आयो मुनि नाहु, जा सिवरमनि रमन को गाहु ।
भव्व कुमु पयडिवोहन चंदु, नाय नरिंद पुरंदर वंदु ।।५४।।

श्लोक

ताम मुनिवरु पत्तु तव तत्तु गुण जुत्तु संजमतिलउ ।
कोह-लोह-मय-मोहवत्तउ, बहु मुनिवर परियउ ।
सील जलहि सिवरमनि रत्तउ, तव कंम्मा सव संवरणु ।
भव्व सरोरुह मित्तु, अंबरहीनु अनंग हरु निम्मल सुचरित्तु ।।५५।।

जहि णंदन वनु नरवे तनौ, दल फल पल्लव दीसै घनौ ।
जहि वसंत फूली फुलावाइ, कोइल मधुरौ सादु कराइ ।।५६।।

वुमु चुमु संति पंषी सुक मोर, सुरकामिनि मोहै मुनि घोर ।
चैत्र मासु सुदि णवलु वसंतु, गुंजारै मधुकरु मयमंतु ।।५७।।

भनै रिषीसुर वनु अवलोइ, इहि ठा मुनि थिरु ध्यानु न होइ ।
इहि वण केम जतोसुर वसै, निवसत मयनु भुजंगमु डसै ।।५८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इक सोरण फूली फूल वादि, पेषत होइ महा तपु वादि ।
जहि निवसत मूसै मन चारु, नासै तपो तनौ तप घोर ।।५६।।
जहि वन गन गंधर्व निवासु, विलसहि सुर कामिनि रस वासु ।
निवसत होइ सील की हानि, मुनिवरु छाडि चल्यौ मन जानि ।।६०।।

श्मशान का दृश्य—

संग सहित मुनि गयो मसान, मरे लोग डहिहि जहि थान ।
मुंड रुंड दीसहि वहू परे, कृमि की लालवि गधि घृण भरे ।।६१।।
जंवुकसान गंधि अरु काग, व्यंतर भूत खपरिह्रा लाग ।
डाइनि पिवहि रुधिरु भरि चूरू, सूकै तरु वढि वासै उरु ।।६२।।
विता वहुत पजलहि वी पास, धूमानलु भमि रह्यौ अकास ।
नयननु देषत फटै हियो, वैंवस भवनु जनकु विहि कियो ।।६३।।
तहि ठा पेषि परासगु ठानु, संघ सहित मुनि हान........।
अनुवयध्यर तासु कै सग, चंपक्त् सुम सम कोमल अंग ।।६४।।
तिनहि सकोसल मुनिवरु जानि, पभन्यो सुगुरु सरस रस वानि ।
निसुनि अभयरुचि नाम कुमार, लेहू भोजु तुम नयरि मझार ।।६५।।

बहिन भाई द्वारा नगर में भिक्षा के लिए जाना—

वालक तुम जौ करहू उपासु, आरति उपजि होइ तप नासु ।
सुनि गुरु वयनु वहिनि अरु वीरु, चंद्र वदन सम कनक सरीरु ।।६६।।
लेकर पुत्र चले निरगंथ, कुमरु कुमारि नगर को पंथ ।
तहि अवसर जन राजा तने, ढूढत फिरै जुवल बन घने ।।६७।।
देवी बलि कारण आतुरे, दोऊ दृष्टि तासु की परे ।
पभन्यो कूकि सफलु भयो कायु, ए बलि पूजा दीवे आइ ।।६८।।
लषण बत्तीस कनक सम देह, पकरि चलै देवी कै गेह ।
जनौ रविचंद्र् राह पाकर्यो, जनौ कुरंगु केसरि वसपर्यो ।।६९।।

चिन्तन—

संजम कर शील निरमले, तिनहि पकरि जब किंकर चले ।
ता मन चितै अभैकुमार, जीवनु मरनु जासु एक सारु ।।७०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पेष्यो वहिनि वदनु अवलोइ, जान्यो मत जिय डरपति होइ ।
पभन्यो निसुनि अमैमति बीर, किम सुंदरि संकुचहि सरीर ।।७१।।

मुह भयंक किम होहि मलीन, ए किम करहि हमारो हीन ।
जो जिन सासन आगम कह्यो, हम गुरु पास सुदृढ़करि गह्यो ।।७२।।

जीव हि कोई सकै न मारि, काया थिरु न होइ संसारि ।
ताते मुनिवर करहि न लोहु, काया ऊपरि छाडहि मोहु ।।७३।।

षूटै आवन राषै कोई, तिम अनषूटै मरणु न होइ ।
वहिनु लियह संसारु असारु, एकुइ धर्म्म उतारण हारु ।।७४।।

दोहा

छिज्जउ भिज्झउ रऊ, वहिनु लिएहु सरीरू ।
अप्पा भावहि निम्मलऊ, जे पावहि भवतीरु ।।७५।।

कम्मह केरो भाव मुनि, देहु अवेयनु दव्वु ।
जीव सहावैं भिन्नु इहु, वहिनुलि वुझहि सव्वु ।।७६।।

अप्पा जानहि नानमऊ, अन्नु परायउ भाउ ।
सो छंडेपिनु भोवहि, निसावाहि अप्प सहाउ ।।७७।।

अट्ठह कम्मह वाहि रऊ, सयलह दोसह चित्तु ।
दंसन नान चरित्रमऊ, भावहि वहिणि निरुत्तु ।।७८।।

अप्पैं अप्पु मुनंत्तु जिउ, सम्माइट्ठि हवेइ ।
सम्माइट्ठी जीवु फुडु लहु कम्मे मुच्चेइ ।।७९।।

समिकत रयनु न दीजै छाडि, हम सो सुगुर कह्यो जो टाडि ।
वार वार किम कहिए बीर, सुंदरि होह अडोल शरीर ।।८०।।

भायर वचनु निसुनि सुकुमारि, सारद मयंक वयन उनहारि ।
तुम जानी भयभीत शरीर, तो मो सिष दीनी वर बीर ।।८१।।

ताते बीर तुम्हारो न्याव, तुम जाणो भामनि परजाउ ।
जानमि मरणु पहूच्यो आनि, डरपमि नही वीर गुण खानि ।।८२।।

को काको संसार असारु, हिंडिउ जीव लेतु अवतारु ।
सो कुलि को जा लईन वीर, सो दुषु कोजु न सह्यो सरीर ।।८३।।

जे हम सात भवंतर फिरे, ते किम वीर बेगि बीसरे ।
जिनवर धम्मुं सुगुरु को कह्यो, दई दई करि सो हम लह्यो ।।८४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनवरु जपत मरन जौ होइ, याते भलो न भायर कोइ ।
सो किम भायर दीजे छाडि, हो सन्यासु रही मन माडि ॥८५॥

गाथा

मुणिए भोयणेन दव्वं, जस्स सरीरं पिषीनु तव यरणं ।
सन्नासे गय पानं तन्नगयं कि गयं तस्स ॥८६॥

दाढग्रो षीर सिरावमह्यौ, भायर वहिनि मोनु तव गह्यौ ।
गहि कर किंकर चाले घीढ, मारिदत्त कारज मन इठ ॥८७॥

चंडमारि देवी का वर्णन—

एहु चले देवी कै थान, जीव जुवल जहे वंधे ग्रान ।
वाजहि वाजे समिढो दुनो, नाचहि जोगी अरु जोगिनी ॥८८॥

वाजहि तूर भयान भेरि, जनौ जमु त्रिभुवनु मारे घेरि ।
जह्व देवी वैठी बिगराल, मंड पुछ यो महिष की षाल ॥८९॥

हाथ त्रिसूलु सिंह ग्रारुही, मुंडनु को करि काठो गुही ।
वरडे दंत जीह वाहिरी, वारवार मुखु वावे षरौ ॥९०॥

ग्ररुण नयन सिर सूधे वार, जानहूवरै ग्रगिनिकी ज्वाल ।
रुधिरु उवटनौ जाकै ग्रंग, ग्रास पास बिढि रहे भुजंग ॥९१॥

आमिषु भषे उठ लरकाइ, महू नस केलै षरी जह्याइ ।
करि कटाष जव देवी हसो, पेषतं गर्भु नारि कौ षसे ॥९२॥

जीव भषण कौ अति ग्रातुरी, जनौ जम रूप ग्राणि ग्रवतरी ।
पेषत षरौ भिहावन ठौरु, नीकौ कहा तासु महि ग्रौरु ॥९३॥

श्लोक

भयभीत सदा कूर्यं निर्द्दयोपलभक्षिनी ।
निर्व्विनी जीवघातिश्चेदृशी कस्य भवे प्रिया ॥९४॥

साधु साध्वी की सुन्दरता का वर्णन—

जह योगी राजा नर ओर, गहि किंकर लाए तहि ठौरा ।
कुमरु कुमारि सकोमल ग्रंग, केसरि चंप कुसुम सम रंग ॥९५॥

नर वेमन पेष्यो ग्रवलोइ, मनुव जुवलु इहि रूपन होइ ।
अमरु पुरंदरु की ससि सुरु, किम ग्रनंगु मानिनि मनचूरू ॥९६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को हरि हरु संकरु धरणेसु, के दीसे विद्याधर भेसु।
अतिसुरूप का एह कुमारि, सुरि नरि किन्नरि को उनहारि ॥९७॥

यह रंभा कि पुरंदरि सची, रौहिनि रूप कवन विहि रची।
सीता तारा कि मंदोद्दरी, को दमयंती जोवन भरी ॥९८॥

पोमावेसर सेवन देवि, नाग कुमारि रही तपु लेवि।
कै अनंगु जव संकर डह्यौ, तव हो रति विधवा पनु लह्यौ ॥९९॥

ताकौ विरहू न सक्यो सहारि, तौ वालक तपु लियो विचारि।
कै यह देवी मानौ होइ. मैरी वलि पूजा अवलोइ ॥१००॥

सुप्रसन्न हुइ आइ एह, भेषु फेरि करि निरमल देह।
कुसुमावलि वहिनि मो तनो, कै यह तासु कोषि की जनो ॥१०१॥

पुत्री पुत्रु तासु हो भयो, निसुन्यो तिन वालक तपु लह्यौ।
पेषि रूपु मन वाढ्यो मोहु, राजा तनौ गयो गलि कोहु ॥१०२॥

राजा द्वारा प्रश्न—

तव हसि नरवे वावाभनो, सुंदर पभणि वात आपनी।
देसु नयरु कुलु माता वापु, सुंदरि कवन कौन तु आपु ॥१०३॥

अति सरूप तुम दीसहू कौन, कारण कवन रहे गहि मौन।
किम वैराग भाव मन भयो, वालक वैस केम तपुलयो ॥१०४॥

अभयकुमार का उत्तर—

राय वयनु सुनि अभयकुमार, भासै विहसि दया गुणसार।
आकुरतु वरते असमान, तह किम मेरो धर्म्म कहान ॥१०५॥

संठ पास जिम तरणि कटाय, वायस जेम छुहारि दाष।
सोवत आगै जेम पुरानु, जिमविनु नेहहि कीजै मानु ॥१०६॥

सरस कथा जिम मूरिष पास, कीनी जैसी किरपन आस।
जिम पल को कीनौ उपगास, जिम त्रिनु भूषहि छरस अहारु ॥१०७॥

वहिरै आगै जैसो गीउ, जिम सीतज्जुर दीनो घीउ।
माइ पिता विनु जैसो आरि, जिम सिंगार पिया विनु नारि ॥१०८॥

अंधहि पास निरतु जिम कियो, जिम धनु अनषायो अनदियो।
ऊसर खेत वए जिम धानु, जैसे भाव भक्ति विनु दानु ॥१०९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिम एवि हल जाहि प्रभु जानि, तेम हमारी धर्म्म कहानि ।
जहि आनंदु करत जिय घात, तिहि किम राय हमारी वात ।।११०।।
जीव जुवल जह वधे वराक, देविहि वलि पूजा कताक ।
ताहि ठाकरै धरा हरि कौनु, ताते राय रहे गहि मौनु ।।१११।।
मारिदत्त मति निरमल भई, मानहु उतरि ठगौरी गई ।
राज पुरंवुरु हुंवर सूर, वाजत दरजि रहाए तूर ।।११२।।
जोगी चक्कु जुस्यौ हो घनौ, बरन्यौ लोगु सयलु आपनौ ।
सयल लोक मुनिवर मुहू पेषि, राषे जन कुचित्र के लेषि ।।११३।।
भनै राउ सुनि वाल जईस, जौ परि तेरौ मनह नरोस ।
तौ पयडेहि कथा आपनी, जैसी बीत्ती पैषी सुनो ।।११४।।
सुन्दर जती सयलु महु भासि, जो अनुभई सुनी गुरपासि ।
जोनि सुनौ सौनि सुनौ एह, जो न सुनै तसु कीजै केह ।।११५।।
आसिकु दे बोल्यो रिषि राउ, जान्यो राइ तनौ सुभ भाउ ।
निसुनि देव दिढ मन थिरकान, पभणामि अपनी कथा पहान ।।११६।।

वस्तु बंधु

ता अभयसुरुचि राय वयनेणा ।
आहासइ कुमर गुरु, सु हमवाणि सुकुमाल गत्तउ ।
जो सुह मग्ग पयासयरु, घम्म कहं तरु एहू ।
नि सुनहू सुयज विचित्र कहा चंत्तु सुनं तह देहू ।।११७।।
भासे अपनी कथा कुमारु. जामन तिनु कंचनु एक सारु ।
सुनि महिमा निणि माननहार, भोग पुरंदर राजकुमार ।।११८।।

अवन्ती देश एवं उज्जयिनी नगरी—

देसु अवंती नयरि उजैनि, भोगभूमि सम सुष की सैन ।
वन उपवन सरवर कुव वाइ, पेषत अमर विलंवहि आइ ।।११९।।
दल फल सघन कुसुम रस वास, कलप विरष सम पुजवहि आस ।
मढ मंदिर सतषणै अवास, एक समान वसै चौपास ।।१२०।।
सुरह रस मद्यर सुर समलोगा, धन कन कंचन विलसहि भोगा ।
वरण वयरि छत्तीसो कुरी, जनकु सु धनपति निज रचि धरी ।।१२१।।

जसोहु राजा एवं चन्द्रमती रानी—

तहि पुरि नरवे नाम जसोहू, नियधन इंद्रहि लावै षोहु ।
चंद्रमती राणी ससि वयणि, मद गज गमनि एण समनयणि ।।१२२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोमल तन कुच कठिन उत्तंग, जनु लैकू कुह किये सुरंग ।
वीना हंस वंस सम वानि, अतेवर सयल हमि पहानि ।।१२३।।

राजु करत पालत नय नोति, इहि विधि गये बहूत दिन वीति ।
पुन्न वेलि जिनि लीनी पोषि, नंदनु भयो तासु की कोषि ।।१२४।।

पुत्र का जन्म—

निसुनि राय नंदनु अवतरचौ, वाढ्यो रहसभाव सुष भत्यो ।
कोलाहलु वंदीजन कियो, दीनौ दानु उल्हास्यौ हियो ।।१२५।।

श्लोक

पुत्रयन्मोरन नित्वा विवाहो सुभसंज्ञका ।
इष्ट-सजनमेलापं संसारोक-महासुषं ।।१२६।।

यशोधर नाम रखना—

पाषरु ज्यारै सुजस की खाणि, जसहरु नामु धर्यो इह जानि ।
वाल विनोद नारि मनु हरै, निसु दिनु वाढे कर संचरै ।।१२७।।

आठ वरिष वीते सुष माहि, वालकु माइ पिता की छाहि ।
नयण पेषि रंज्यो परिवारु, सूरतेय सम राजकुमारु ।।१२८।।

अध्ययन—

पढन हेत सौप्यो चटसार, घिय गुरा लाडू किये कसार ।
पूजि विनायगु जिन सरस्वती, जासु पसाइ होइ बहूमती ।।१२९।।

भाउ भक्ति गुर तनी पयासि, पाटी लिषि लीनी ता पासि ।
पढ्यो तरकु व्याकरण पुराण, हय गय वाहन आवघठान ।।१३०।।

पढि गुने सयलु पिता पहु गयो, सिर चुंवनु करि अंकौ लयो ।
पेषि पुत्रु सुषु उपज्यो गात, फुनि माता पहु पठयो तात ।।१३१।।

चंद्रमती भैटो पग परचो, पुत्रहि देषि हियौ सुष भरचौ ।
रूपवंत विद्या गुण खानि, सफलु जनमु माता तहि मानि ।।१३२।।

जेसौ माइपिता कौमाहू, पभनै जननि अमरु चिरु होऊ ।
पेषि तरुनु नंदन नर नाहु, बंस बेलि हित ठयो विवाहु ।।१३३।।

कुमारि पंचसै रायनु तनी, एक एक अछरि समगनी ।
कनकु सुमयन तनौ कट कोधु, चमकत चौकुल गावति चोघु ।।१३४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नयन वयन जोवन सुकमारि, जनौ सोरन फूली फुलवारि ।
भयो विवाहु जसोधर तनौ, सुयन कुटम सुपु उपन्यौ घनौ ।।१३५।।

अमिय महादेवी पटराणि, पेषत रुपु अनग की हानि ।
नयन वयन कुच षरी अनूप, मानहु रची पुरंदरि रूप ।।१३६।।

भूल्यो कुमरु भोगत सुसंग, बिछुरत डाहू परै दुहु अंग ।
एक दिवस जसहर कौ ताउ, सभा सहित सुस्थित महिराउ ।।१३७।।

अवर बहूत बैठे नरनाथ, पेष्यौ मुहु दर्प्पनु लै हाथ ।
धवलौ एकु कनपुता केसु, मन बैराग्यौ ताम नरेसु ।।१३८।।

मानहु कहतु पुकारै कान, एर वुढापे केसहि दान ।
करिहै बुरौ वुढापौ हाल, दृष्टि पतनु अरु हालै खाल ।।१३९।।

श्लोक

जरामुष्टिप्रहारेण कुब्जो भवति मानवः,
गत जोवन मानिक्यां निरीक्षति पदे पदे ।।१४०।।

जब लगि देह न व्यापे व्याधि, तव लगि लेमि परम पदु साधि ।
विरकत भाउ राउ मन भयो, राजु गेहु तिन जौ तजि दयौ ।।१४१।।
विरक्तस्य तृणं राज्यं, सूरस्य मरणं तृणं ।
ब्रह्मचारी तृणं नारी, ब्रह्मज्ञानी जगस्त्रिणं ।।१४२।।

राउ जसोधर थाप्यो राज, आपुनु चल्यो परम तप काज ।
लीनो दीक्ष परम गुरपास, तपु करि मुयो गयो सुरपास ।।१४३।।

महाराजा यशोधर का शासन—

महियलि राजु जसोधरु करे, हरि सम राजनीति व्यौहरै ।
नयरि उजैनी स्वर्ग समान, करै राजु जसहरु तहि थान ।।१४४।।

पुत्र जन्म—

अमिय महादेवी सुरतिरी, बहुत दिवस मानि निवसिरी ।
एक नारिको नंदनु भयो, जसहर पास वधैया गयौ ।।१४५।।

तहि सवु कुटमु महासुख भर्यो, मनो जिन जननि देवु अवतर्यो ।
वाढचो कुमरु रूप गुण सारु, धरचौ जसोमति नाम कुमार ।।१४६।।

कियो जसोमति तनौ विवाहु; सुवन अनंदु दुवंन उर डाहु ।
दै जुगराजु पट्ट वैसारि, मंगल घोष कलस सिर टारि ।।१४७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जन सेवग सव सौंपे वाह, आपनु भोग करै घर माह ।
कवहू सभा वैठे आइ, निसुदिनु पिय भोगवत विहाइ ।।१४८।।

सुनि संपै निवास गुनरासि, नारि चरितुहो कहमि पयासि ।
मारिदत्त सुनि देषिरु कानु, जसहर राजा तनौ कहानु ।।१४६।।

तहि अवसरि सुखमौ दिन एक, जसहर राउ राज की टेक ।
सभा उठी दिनयरु अंथयो, रानी तनौ बुलावो गयो ।।१५०।।

ता महल्यो बोलै सिरु नाइ, राणिहि तुम विनु नू सुहाइ ।
चाहइ बाट तुम्हारी नाह, जिम जलहर विनु वारि साह ।।१५१।।

तिम तुम विनु रानो कलमलौ, जोवनु सफलु देवु जवचलो ।
निसुनि वयनु तव नरवे हसै, रानी पुनि चित ताकै वसै ।।१५२।।

जेसौ भवरु उमाह्यो वास, युग रति रंग रवण की आस ।
चल्यौ राउ रानी के गेह. जेम हंसु हंसिनि कै नेह ।।१५३।।

दोहा

यशोधर एवं अमृता का प्रेम—

एक हिरावै सुख नहीं, जौ न दीवराचंति ।
मालुति मन मधुकर वसै, मधुकर न मालुंति ।।१५४।।

चौपई

चंपक मला अरु शसिरेह, दोऊ सषी कनक सम देह ।
दोऊ छयल चतुर परवीन, जोवन साम कटि षीन ।।१५५।।

अमिय माहादे तनो षवासि, निसु दिनु निवसहि रानी पासि ।
राय तनौक रूप कस्यो आइ, चित्र साल ले गई चढाइ ।।१५६।।

राउ पेषि रानी विहसाइ, पालिक ते उतरि अकुलाई ।
राय विहसि कर षैंचौ चीर, उघर्‌यो रानी तनो शरीर ।।१५७।।

सावै टारि जनकु विहिगढचो, मानहु कनकु अगनि ते कढचो ।
किष्ल करीज्यौं वैनीरुरो, जनुकु गरुड मै नागिनि दुरै ।।१५८।।

विहिसति दंत पंक्ति ऊजरी, जनो घन मौ कौधी वीजुरी ।
चंचल नयन मरोरति अंगु, जनु कुरंगि विछोहै संगु ।।१५६।।

हाव भाव विभ्रम सविलास, रुलु घुलंति मधुकर रस वास ।
रम्यो सुरतु सुषु उपज्यो गात, सोयो राउ भई अध रात ।।१६०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुबड़े द्वारा संगीत प्रदर्शन—

मारिदत्त यहु निसुनहि आन, नादु पर्‌यो रानी कै कान ।
हरित शाल निवसै कूवरौ, व्याध्यो रोग छुवाहू वरौ ।।१६१।।

बरौ सुकंठी गावे गीउ, सो निसि दिनु वहरावे जीउ ।
राग छत्तीस मुनै बहु भेय, भूलहि सुर कामिनि सुनि गेय ।।१६२।।

प्रथम रागु भैरौ परभात, सुंदरि निसुनि उल्हासी गात ।
ललित भैरवी कीनी रागि, जनुकु विरह वन दीनी आगि ।।१६३।।

रामकरी गूजरी सुठान, निसुनत मयन हुई जनोवान ।
आसासैं घूमिलवे भाउ, सुनि गज गामिनि भयौ उमाउ ।।१६४।।

गौरी षरी सुहाई नादु, चन्द्रबदनि मोही सुनि सादु ।
करि गंधारु सुकोमल भाष, भामिनि भूलि गई अभिलाष ।।१६५।।

माला कोश जब निसुन्यो वाल, नियतनं मयन शलाए शाल ।
मारु जैतसिरी की छाह, जो सुभटनु मीठो रण माह ।।१६६।।

टोडि हि वैरारी सौ संगु, कामनि बिरह मरोस्यौ अंगु ।
भोव परासो अवर अडान, महिलहि परचो विरह रसु कान ।।१६७।।

करि कामोद ठकुराई रागु, वनितहि परचो मयन पुर दागु ।
सुनि हि दोल नारि कर मरी, मंक्षिस तुछि अंभ जनौ परी ।।१६८।।

करि कल्यान अवरु कानरौ, गेहिनि कान सुहाई षरौ ।
केदारौ कीनौ अधरात, मृगलोचनी पसीजी गात ।।१६९।।

रागु विभास अवरु वडहंसु, कीनौ जव हरि मारचो कंसु ।
कुविज कठूह राई गूजरी, कीनी राम सिया जब हरी ।।१७०।।

रागु विरावरु अरु वंगाला, तिरियहि तई कुसम की माला ।
दीपकु वडोरागु जव करैं, जासु तेज उठि दीपकु वरे ।।१७१।।

कियो वषार बंधु सरुमेलि, सीचि मयन बिरह की बेलि ।
विहागरौ सूहे सौ जोरि, जनु सुजान रमु लियो निचोरि ।।१७२।।

मेघ रागु जब लियो नवाजि, वरसै रिमिहिमि जलहरु गाजि ।
जवर अलापैं गौड मलार, विनुही वादर परैं फुसार ।।१७३।।

घनासिरी मार ऊह जेज, राणिहि रह्यौ न भावे सेज ।
करी मलाई मघ माघई, पंब मुनि सुनत मूरछि गई ।।१७४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गौरा सारगु सारग नाट, जनकु सुहई मयन को साट।
जौ देसी मिल वेवहु भाइ, सुनत अहेरैं हरिनु मुलाइ ।।१७५।।

रागु वसंतु कुवरौ करै, जनौ मधुमास भवर गुंजरै।
लागी लात सोरठी तनी, सुनि कनकंगि काम मरहनी ।।१७६।।

सिरि रागु सुनि दीनौ कानु, मूरिषु नही होइ जो जानु।
रानी अंगु काम सर हयो, जसहरु राजा विसहरु भयो ।।१७७।।

भुज पंजर तेसो नीसरी, ज्यो घनते निकसी वीजुरी।
सरद पटल ते जनौ ससि रेह, निकरी एम सकुविकरि देह ।।१७८।।

फुणि अरगाइ धरचौ मुइ पाउ, डरपै सो जिनि जाणै राउ।
चंपक माला लीनी वोलि, द्वार कपाट दिये तहि खोलि ।।१७९।।

रानी एवं दासी की वार्ता—

रानी वात कहै अरगाइ, तो ते मेरौ काजु सिराइ।
गंधर्व कला रागु जिनि करचौ, ता बिनु जीव जाइ नीकस्यौ ।।१८०।।

जौ तू सखी सुजानी आपु, तौ खोवहि मेरौ तन तापु।
निसुनत रागु वहुत दिन भए, ते सषि पाछै जुग वरिगए ।।१८१।।

करति निहोरौ तोसौ भाषि, अव लै प्राणु हमारौ राषि।
तासु चरण लै मोहि दिषाइ, सोई सिष भषिमो सिष राइ ।।१८२।।

ऐसौ बचनु भन्यौ तब वाल, तव तन सकुवि चंपक माल।
हा हा भनि वोली धर थूंकि, सुन्दरि बचनु भन्यो किम चूकि ।।१८३।।

कूबड़े का वर्णन—

वहु कूबरौ दईको हयौ, फुटि अंगु सबु वाकौ गयौ।
जैसौ जस्यौ दावा को डूडु, मानहु काटि चहोर्‌यौ मूडु ।।१८४।।

पाइ धिवाई मूहू उरचौ, निसि दिनु रहै लीदि महु परचौ।
कीरा परे विगधि कौमूलु, अनुदिनु माथै व्यापै सूलु ।।१८५।।

उलटि पटल अषिनु के रहे, षरे कुबरणे व्याधि के गहे।
पूठो साइ रहै हर हूषु, महियलि सहे नरक कौ दूषु ।।१८६।।

लाठी लात मुठी का सहै, रानो कवनु वरनि घिन कहे।
माथै कौवा मारहि षोट, सो विहि रच्यो पाप को मोट ।।१८७।।

हसै न कबहू नीको कहै, परचो हढोलै रोवतु रहौ।
षरो अलष निकु वायस दीठि, करिहा सो मिलि आई पीठि ।।१८८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हौ रानी किम वरनौ तासु, मुहू पेषै तिहु परै उपासु ।
जाहि सुनत दुषु उपजै कान, सुंदरि कहहि तासु पहूजान ।।१८९।।

वात नु हासी छूटी मोहि, भमिनि पभनि सदो किम तोहि ।
तो पिउ रमत भई अधरात, तौ न तो रति उपजो गात ।।१९०।।

रानी वचनु—

सुनि वचनु रानी कलमली, पभनै तै सिष दीनी भली ।
वयनु एकु मेरौ निसु नेह, चंपक माला कानु थिरु देह ।।१९१।।

गोत नाद वेधिये सुजानु, निसुनि हरिन फुनि देइ परानु ।
अरु जौ वालकु रोवतु होइ, निसुनत रहै गोद महू सोई ।।१९२।।

होइ कौविजौ डस्यौ भुजंग, निसुनि गीतु विषु रहै न अंग ।
चतुर सुजान जिते नर नारि, जे जानहि सुनि मूढ गवारि ।।१९३।।

श्लोक

सुषणिसुखनिधानं दुखितानां विनोदः ।
श्रवण हृदयहारो मन्मथस्याग्रदूतः ।
अति चतुर सुगम्यो वल्लभो कामिनीनां ।
जयति जगत्ति नादो पंचमो भाति वेदः ।।१९४।।

राग तनै गुण जानहि माइ, मो मूरिष सौ कहा वसाइ ।
जानहि तू न हमारी भीर, पाहनु जिम भेदिये न नीर ।।१९५।।

किमि मुहू मोरि हसै घर वसी, मेरौ मरणु तुहारी हसी ।
जामि सखी तेरी वलिहारु, इतनौ करि मेरौ उपगारु ।।१९६।।

चंपक माला का उत्तर—

चंपक माल कहै विचारि, जानी निजु सत डोली नारि ।
रानी केम भइ बावरी, को सुनि सीतु कि व्यंतर छरी ।।१९७।।

दोहरा

हा सुर सुंदरि सम सरिस, केम पयासहि एहु ।
सतों नः वल्लहु परिहरै, अवरु करै नहि नेहू ।।१९८।।

भामे निम्र सहश पुंरिषवस, केम समप्पहि देह ।
सील नवल्ली वल्लरी, जालि करै किम षेह ।।१९९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुंदरि जोवनु जान दै, अरु जौ जाइत जाउ ।
सीलु महंगौ मति टरौ, आन्नह जनम सहाउ ॥२००॥

सुंदरि जोवनु राजु धनु, पेषिन किज्जै गव्वु ।
संवरु सीलु न छांडिये, अवसि विनस्सै सव्व ॥२०१॥

सुनि फुल्लार-विंद मुख जोति, छाडहि रयनु गहहि किम पोति ।
तजहि हंसु किम सेवहि कागु, भूलौ भई षिलावहि नागु ॥२०२॥

अम्रतु तजि पीवहि विष मूतु, सुरपति छाडि रमहि किम भूतु ।
छाडि ईष किम गोवहि अंडु, रानी केम करइ घरु मंडु ॥२०३॥

सील रयनु तिहुलोक पहानु, सीलु नारिमंडन गुन ठानु ।
सोभू संजम भाव करहि, फोरि दहै डीकागनु देहि ॥२०४॥

माता-पिता ससुरु अरु सासु, पेषि विचारि वंस कुलु वासु ।
राउ भतारु तरुनु घर सूनु, चौक चढो चाटहि किम चूनु ॥२०५॥

अरु तू एक बिचारहि आपु, करत कुकर्म्म न दुरिहै पापु ।
ता वही कान दुवन कै परै, जैसै तेलु नीर बिस्तरै ॥२०६॥

अरु जौ केम केम दुरि रहै, तौ पाछै कर तारुण सहै ।
व्यापै रोग सोग तन रोर, फुनि नरकादि सहै दुष घोर ॥१०७॥

अर तू सामिनि पेषि विचारि, यह अपजसु चलिहै जुग च्यारि ।
मेरे कहत राषि मनु षैंचि, तिय तुस कारण रयनु मन बेचि ॥२०८॥

तू आतुरी करहि किस एह, जाहि रमनप्पो छाडहि गेह ।
काढहि जिया तस सेकी षाल, नारि मरण बुधि भई अकाल ॥२०९॥

णिसुनै पेषै करत कुपाउ, तौ महिषो दिगडावै राउ ।
तौ सुन्दरि मरिये दुष देषि, मै सिष सामिनि दई बिशेषि ॥२१०॥

जिम माषि चंदनु परिहरै, बिगधि अमेध जाइ रति करै ।
रवहि कुवरौ राजा छाडि, तेलु षाइ धो धरियै गाडि ॥२११॥

ताकै जोवन दीजै ऊक, वयण षेह अरु जीवत्त थूक ।
तपत तासु भग दीजै डाहू, सा यो छाडि बरै परनाहु ॥२१२॥

रानी का उत्तर—

सषी बचनु सुनि बिलषी वाल, जरौ रबि किरणि पुप्फकी माल ।
कुंद दसनि बोलै पहू नारि, काज आपनो करि मनुहारि ॥२१३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जान मि वंसु गेहु कुलुठानु, जोवनु रूपु तेजु गुन मानु।
रूपु कुरूपु हेतु अनहेतु, पोवु अपोवु किष्क अरु सेतु ॥२१४॥

परि जब मयनु सतावे वीर, तू नही सषी जानहि पर पीर।
मन भाव तौ चढै चित आणि, सोई सषी अमर वर जानि ॥२१५॥

श्लोक

वयो नवं रूपमती वरम्यं कुलोन्नतिश्चेति सुबुद्धि रेषा।
यस्य प्रसन्नो भगवान्मनोभू, स एव देवो सषि सुन्दरीनां ॥२१६॥

जौ तू मो भावति सुमोह, तौ तू साथ हमारैं होइ।
जब रानी पभनैं कर जोरि, बोलैं सषी बहुरि मुषु मोरि ॥२१७॥

दोहरा

रानी जे अचलन चलहि, जानत अष जुजि खाहि।
दिवस चारि कै पाव मौ, संमूले चलि जाहि ॥२१८॥

जे पर पुरिसहि राचहि घनी, ते गति पति काटहि आपनी।
तू सिष देत न मानहि दापु, षिन सुषु जनम जनम कौ पापु ॥२१९॥

रानी निसुनि भई अनमनी, मोरी वात सषी अवगनी।
मैं तू जानी सषी सुजानि, तौ मै करी तुम्हारी कानि ॥२२०॥

तो हि कहाए ते सौ परी, जोहौं कहौ सु करि रावरी।
विहिना लिष्यौ न मेट्यौ जाइ, मन मौ सषी षरी पछितांहि ॥२२१॥

रानी एवं दासी का कूबड़े के पास प्रस्थान—

बरजै कवनु अमारग जाति, तव उनि चली संग मुसिकाति।
दोऊ जनी चली अरगाइ, मंदे देति सुहाए पाइ ॥२२२॥

चमकति चलीजु मोही राग, जनुकु सुहरिणि विछोही वाग।
चलत पाउ पाहन सो षग्यो, नेवर धुनि सुनि राजा जग्यो ॥२२३॥

अमिय महादे पेषी जात, चिंतयो कहा चली अधरात।
बाढ्यौ कोपु राय कै अंग, हाथ षरगु लै चाल्यो संग ॥२२४॥

ढूकतु लुकतु पाइ धिर देतु, नारी तनौ कनसुवा लेतु।
अमिय महादे चंपक माल, सोह दुसवार पहूती तहि काल ॥२२५॥

दौने जहि कपाट पर दारु, जाग्यो सुनि नेवर झुनकारु।
भनै रिसानौ कौ तुम चली, तारे फिरे अर्द्ध निसि गली ॥२२६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तर दियौ तासु सुंदरि, एक ससि रेषा है दूसरी ।
और मूढ कौ आवे आन, गढ गाढो राजा कै थाण ।।२२७।।

जानि बूझि तू उठहि रिसाइ, मानौ तो लागी वुढवाइ ।
चली नारि यहु उत्तर कीयो, उसह्नी छेव राय पगु दीयो ।।२२८।।

कूवड़े के पास पहुंचना—

जासु रमण की राणि हि आस, गेहिनि गई कूवरा पास ।
जाइ जगायो चरण नु लागि, अति रिस भर्यो उठउ सो जागि ।।२२९।।

तिनि दासी भनि दीनी मारि, सुन्दरि विहसि करी मनुहारि ।
जो जसु भावे सो तसु ईठु, सत्य पाषानो जग महु दीठु ।

जो जाने जस्य गुणे, सो तस्य आयर कुणए ।
फलियो दषह बिडवो, कावो निवाहलि चुणए ।।२३०।।

दोहा

सेजह छडिउ वालहा वा कारण निसि जग्गि ।
कंठ लागि दोऊ रहे भावरि बुरी व जग्गि ।।२३१।।

रानी का विनय—

रहि न सकौ तुझु विनु, सकमि न तोहि वुलाइ ।
पंजरु ग्गहि राजा रह्यो, ज्यो तो उवरि पाइ ।।२३२।।

रानी गई तासु कै संग, मनो स्वान विटारी गंग ।
गरुड नारि मनु मानी नाग, हंसिनि जनुकु भागई काग ।।२३३।।

जुनुकु पुरंदरि सेई भूत, जनु ससि रेह राह ग्रह धूत ।
सोहिनि जनुकु सुडह को सेठ, रानी रही कूवरा हेठ ।।२३४।।

आपुनु पेषि राउ पर जर्यो, जनो घ्योगिभ हुतासन परयो ।
काढि षडग एहु घालै घाउ, फुणि चित चेति चमंक्यो राउ ।।२३५।।

इह तिय निंद दुष्ट गत लाज, णीचऊ ठवुधि करै अकाज ।
अलितरासिणि धिण अविचार, साहसु करतन लागै वार ।।२३६।।

उत्तिमु छाडि नीचु संग्रहो, मनमहु अवरु अवमुह कहै ।
पापिणो के किम हरमि पराण, मारण कही न वेद पुराण ।।२३७।।

कपुरिसु एहु कूवरो राडा, दोवरु वुरो पीठि को हाडु ।
झठो षाइ पेट दिन भरै, पाइन चलहि लीदि मौ परै ।।२३८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्लोक

दालिद्री च रोगिनो मूर्खः दयादान विर्वजितः ।
क्षण ग्राही कलंकी च जीवितोपिमृतोपि च ।।२३९।।

ताक पुरिसहि करमि किम घाउ, रह्यौ बिचारि श्रवणि कौ राउ ।
दोऊ हणत परताकी हाहि, बहूर्‌यो राउ एह मन जाणि ।।२४०।।

राजा यशोधर का वापस जाना—

चित्रसाल पालिक परिगयो, णिवडिउ जनकु वज्र कौ हयो ।
कारणु करै राउ मन क्रूरि, परिहस अगिणि दई तण पूरि ।।२४१।।

राणी काम भूत को गही, रमि कूवरौ चली गुण रही ।
डगमगाति डरपति डर लई, षेदि स्वानस्यारि बन दई ।।२४२।।

जणु गाडर विजुराई मेह, मलिण सडील पसीनी देह ।
फुणि पिय भुज पंजर संचरी, नागिणि जणकु महाविष भरी ।।२४३।।

करतौ राउ सरस रस केलि, सो प्रवभई महाविस वेलि ।
यह दुषु वह सुषु वरणौ कौनु, पापिनि दियो धाइ जनु लौनु ।।२४४।।

श्लोक

नृमतं न विषं किंचित्, एषां मुक्ता वरांगणां ।
सैवामृतमयो रक्ता विरक्ता विषवल्लरी ।।२४५।।

चौपई

मामणि लागी केम णरेस, जनु राषि सिनि भिहा वण भेस ।
अपत निलज्ज पापकी पुरी, डाइणे जणकु गुदी गहि जूरी ।।२४६।।

दोहा

तहि णरवै मन चितवै, पेषिवि नारि चरित्रु ।
देहु महातरु प्रभु तणौ, दुष महाघन सित्तु ।।२४७।।

हाहा एहु अणछु जगि कासु कहि जइ भासि ।
अपंजस लाज पयासणौ पावकु कम्मह रासि ।।२४८।।

ही कोहानलु तिय चरिउ देह वनंतरि लग्गु ।
चित्तु विहंगमु मुद्ध तनो उडिवि दहं दिहि भग्गु ।।२४९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हउं जाणमि मो वाल हिय याहि विवालहु पोउ ।
पंजरु मुझु सम्मप्पि कहू, अण्ण समप्पउ जीउ ॥२५०॥

चौपई

राजा यशोधर द्वारा चिंतन—

तहि अवसर चिंतइ मन राउ, अब फुणि भयो मरण को दाउ ।
छाडिम राजु गेहु धनु भोगु, माणिणि कुटमु सरस रस भोगु ॥२५१॥
तपु करि सहमि परीसह घोर, भवभय भवनु निवारमि भोर ।
विनु तप नही कम्मं को घातु, तारे गणत भयो परभात ॥२५२॥
तंव चूल वासे रवि उयो, अंबर तारागणु लुकि गयो ।
तीरणि चकवा मिले अणंदि, सूर राइ मनौ काटी बंदि ॥२५३॥
पंच सबद वाजे दरबार, बंभण पढहि वेद झुणकार ।
जसहरु सभा वैठ्यौ आइ, णिसि दीठौ वैरा गुण जाइ ॥२५४॥

चन्द्रमती रानी का आगमन—

तहि अवसरि चन्द्रमती राणी, पूजि किशन आसिकु लै पाणि ।
आई जहा जसोधरु राव, मोह कम्मुं सुवऊ परभाउ ॥२५५॥
आसिकु दयो राइ कै हाथ, पभण्यौ विरु जीवहि नरणाथ ।
माता चरण परचौ तव राउ, आई माता कियो पसाउ ॥२५६॥

यशोधर द्वारा स्वप्न वर्णन—

भणै राउ माता णिसुणेह, भासमि सुपिणु कानु थिरु देह ।
जैसो सुषिणु दीठ णिसि आजु, मानहु अवसि बिनासै राजु ॥२५७॥
वितरु एकु महा परचेडु, किस्न अंग कर लीनै दंडु ।
चित्रसाल अंवर ते परयो, सो मैंभीतु पेषि हौ डर्‌यो ॥२५८॥
णिसियरु भणै राइ संघरौ, स्यो परिवारण गरुण्यो करौ ।
जो तपु करहित छाडमि आजु, ना तरु अवसि विनासै राजु ॥२५९॥
मेरौ वचन राइ प्रतिपालि, जीतव ईछु लेह तपु कालि ।
मै भास्यौ तपु करमि विहाण, तब सुरु गयो आपनै थान ॥२६०॥
हौ तपु करमि माइ ससि मती, जासु पसाइ काटमि भवगति ।
कलमलि माइ बचनु तब भन्यौ, जिनवर तनो धम्मुं अवगन्यौ ॥२६१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चन्द्रमती द्वारा शिक्षा—

ऐसो वचनु ण सुव मुह काढि, याहू तेर चवगनो वाढि ।
सपिणु पेषि भैभीतु ण होहि, कुटमु मुयनु सव लाग्यो तोहि ।।२६२।।

जै सुपिणहि डरपै वरवीर, संगर केम सहहि सुव भोर ।
डरपै हीनु दीनु कुवि रंकु, तू कुल मंडनु राउ निसंकु ।।२६३।।

देविनि के दिन भारे पूत, महियलि मैं मदमाते भूत ।
भवहि रैनि जोगिणि के ठाट, मढ मंदिर वण तोरणि घाट ।।२६४।।

जौ सुव वूझहि साची वात, मोहु रयणि जाइ वर रात ।
कंचाइणि देबी तो तनी, ताको वलि पूजा करि घनी ।।२६५।।

महिस मेस अज गंडवराह, देवी की सुव पूज कराह ।
भास्यौ दिय वर तनै पुराण, जिनवर धम्मुं ण णिसुण्यो काण ।।२६६।।

हो इकु सर सुमु राजु अषंड, कंचाइणि राषौ मुव दंड ।
णिसुणि वचनु वोलै महिराउ, हा किमि मूढ भण्यौ जिय घाव ।।२६७।।

राजा द्वारा हिंसा का प्रतिरोध—

जीव घात जो उवजै धम्मुं, तौको अवरु पाप कौ कम्मुं ।
जे ते लष चौरासी षाणि, ते सब कुटमु माइ तू जाणि ।।२६८।।

सो ण भवंतरु गह्योण माइ, सो पसु घातु करण किमि जाइ ।
जीव घातु जो कोइ करै, णिहचै णरक माइ सो परै ।।२६९।।

श्लोक

नास्ति अर्हत्परो देवो, धर्म्मो नास्ति दया विना ।
तपः परम निरग्रन्थो, एतत्सम्यक्त लक्षणं ।।२७०।।

चन्द्रमती द्वारा अनिष्ट निवारण का उपाय—

चन्द्रमती बोली विहंति, हीरा दंतपंति झलकंति ।
एकु बचनु सुव मेरो पारि, देवी तनी ण पूजा टारि ।।२७१।।

जैसे कुसरा आगै हू होइ, दुषु दालिद्र ण व्यापै कोइ ।
बण कुक्कुंट करवां वहि एकु, देवहि देह होइ दुष छेकु ।।२७२।।

फुणि तू तप लीजहि सुकुमार, वलि पूजा करि अबकी वार ।
मान्यौ बचनु चन्द्रमति तनौ, माता भाउ पयास्यौ घनौ ।।२७३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वण कूकुरु कीनौ सुति टारि, पेषि रहसु मान्यौ परिवार ।
करत कुभाउ या राजा डरची, लै करि दीपु कुवामहु पस्यौ ॥२७४॥

जाणि वूझि कीजै जिय घात, कवणु निवारै णर कहि जात ।
गयौ राव देवी कै गेह, परमेसुरी अपनी वलि लेय ॥२७५॥

हयौ अचेतु रहसु मन माणि, जनु कुसु सची महा दुषाणि ।
चन्द्रमती बोली तहि थाणि, थोरै भलौ हमारौ माणि ॥२७६॥

तू कुलदेवी कुल की वारि, रण रावर तू लेह उवारि ।
बहुत भगति करि रहसी देह, फुणि नंदणस्यौ चाली गेह ॥२७७॥

जसहर जस मैं कुमरु हकारि, कलस ढारि आसन वैसारी ।
दीनौ राजु पटु दलु देसु, आपुनु वण तप चल्यौ नरेसु ॥२७८॥

तहि ठा मारदत्त सुवि राइ, कर्म तनी गति कहण न जाइ ।
अमिय महादेबी ससि वयणि, सरस कंजदल दीरह णयणि ॥२७९॥

भूलीही न कुवि जकै हेत, जसहरु राउ सुन्यौ तपु लेतु ।
अकुलानी विह लंघल गई, जिम णव बेलि पवन की हई ॥२८०॥

जो ण होइ थिरु एकौ घरी, दिनु अंथव तप रै कर मरी ।
सुनी न पेषी जो अनववी, कंतहि लैन केम तपु सदी ॥२८१॥

यह फुणि मानौ कछु विचारु, जिहि ते दीक्षा लेइ भतारु ।
जाणमि राजा भया उदास, देषी रयणि कूवरे पास ॥२८२॥

रानी अमृता की प्रार्थना—

पेषत मानु राइ कौ मल्यौ, ताते कंतु लैन तपु चल्यौ ।
जौ राजा फिरि माडै राजु, मेरौ सकल विनासै काजु ॥२८३॥

ऐसौ जानि डिंभ मनभरी, चंचल आइ राइ पग परी ।
नयन कमल भरि छाड्यौ नीरु, विरह वाण घन घुम्यौ सरीर ॥२८४॥

भणै नाह हौ तेरी दासि, साई मोहि तजहि का पासि ।
मो तजि किम तप लेहु भत्तार, तो विनु प्राण जाहि सुवियार ॥२८५॥

दोहरा

वालम जोवनु कुसुम वनु, केम चलै दवलाइ ।
सरस वचन विनु जलह रहि, ता विनु केम वुझाइ ॥२८६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वालम तुव महवाल हउ, तो विनु एह अकछ ।
कै जरि वरि माटी भली, कैर तुमारै सछ ।।२८७।।

वालम तुम विनु रूवरी, लहियलि भारी होइ ।
सोता किझइ जणह जणु धीरी धरै ण कोइ ।।२८८।।

वालम विनु किम भामिनि किम भामिनि विनु गेहु ।
दान विहीनौ जेम घरु, सील विहीनौ देहु ।।२८९।।

चौपई

रानी भनै जोरि द्वे हाथ, हौ तपु करमि तुमारै साथ ।
परि मो वचनु एकु प्रभु देह, भोजनु करहि हमारै गेह ।।२९०।।

दियवर भणहि वेद की आदि, वलि विधानु भोजन विनु वादि ।
ताते एहु बचनु प्रतिपालि, फुणि तुम हम तपु लीवौ कालि ।।२९१।।

रानी वचनु मोहि प्रभु रह्यौ, मानहु मोह निसाचर गह्यौ ।
जनु पडि ढउना मेले सीस, भूली सवै पाछिली रीस ।।२९२।।

रानी चरितु रयणि जो रयौ, भाई मो सुपिनु हो भयो ।
भरम मुलानौ ठगि सौ लयौ, मांग्यौ बचनु नारि कहूं दयौ ।।२९३।।

रूपणि रवण कथा णिसुणेह, मैटै कवनु कर्म की रेह ।
मानी राइ नारि की वात, भामिनि रोम हुलासी गात ।।२९४।।

रानी द्वारा जहर के लड्डू बनाना एवं राजा को खिलाना—

तब राणी अपनै घर गई, बोली सषी रसोइ ठई ।
लडू किये बहुत बिसु घालि, कछूकु तै वन दीनौ चालि ।।२९५।।

हीन वात किम बरणमि और, लौपि सोधि करि दीनौ ठौर ।
जसहरु चन्द्रमती सु पहाणि, दोऊ जैव न वैठे आणि ।।२९६।।

लाडू आनि परोसे चापि, भोजन करत उठौ तनु कापि ।
ताकी उपमा दीजै कौन, भूमि चालु सौ लाग्यौ हौन ।।२९७।।

जुर जाडे जहू धूम्यौ अंगु, भयौ नयन काणनि कौ भंगु ।
नसणी टूटि जीभ लठराण, चन्द्रमती के विकसे प्राण ।।२९८।।

वैदु वैदु करि राजा पर्यौ, अमिय महा दे कौ ज्यौ डस्यो ।
जौ राजा की जीवन होइ, तौ प्रभु मारै मोहि विगोइ ।।२९९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पापिणि भई आपनै भेस, सिर मुकराइ दिये तिनि केस ।
पकरि जरक सी दीनौ दंत, णिघिण हयौ आपनौ कंतु ।।३००।।
जसवै नंदनु आयौ धाइ, पितहि पेषि रह्यौ मुहु वाइ ।
विवस लोग समुझावहि तासु, जाणि राइ जग मौ को कासु ।।३०१।।
आदि अनादि भए अरु गए, जानै कवनु कितिक निरमए ।
पाप पुण्य द्वे चलहि सघात, ऊरण काहू दीसै जात ।।३०२।।
सुपुरिसु किम रोवे मुहु वाइ, लघुता होइ दुवनु विहसाइ ।
लाग्यौ तोहि घरणि घरु बंधु, जस मै राज धुरा धरि कंघु ।।३०३।।
अमिय महादै मौको धाह, मोकाकी करि वाले नाह ।
सो फुणि प्रमु समुझाइ राषि, जस मै राइ स कोयलु भाषि ।।३०४।।
माता जाणि न थिरु संसारु, वरजि रहायौ सवु परिवारु ।
जसहरु राउ चन्द्रमति आए, अरथी करि ले गए मसान ।।३०५।।

श्लोक

अर्थी गृहानिवर्त्तंते, मसानेषु च वांधवः ।
सरीराग्निसंजुक्तं च पुन्न-पापं समं व्रजेत् ।।३०६।।

चौपई

किरिया करि नैन्हाइ सरीर, कुसुलै दियौ चूरु भरि नीरु ।
कीनी सयल मरे की रीति, भासो कथा गई जिम वीति ।।३०७।।

वस्तुबंधु

देस जयवरु अभयरुह णाम, आहासई गुण गहिरु मारिदत्त पहु ।
सुनि भवंतरि कम्माह विचित्र पाव पुन्न फल निसुनि ।
अंतर जानंतहू जसहर णिवइ कूकुरु भयो अचेउ ।
संसारं बुहि हिडियउ आहासमि भव भेउ ।।३०८।।

चौपई

पभणइ कवि पणविवि परमेस मारग सुतण थेघ उपदेस ।
णिसुणहु भव्व सुदिढु करि काणु, जसहर राजा तनौ कहानु ।।३०९।।
जस मै राउ उज्जैनी करै, उपमा आपु इन्द्र की धरै ।
कुसुमावलि कुसम सर बेलि, ता समान मानै सुष केलि ।।३१०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यशोधर का मोर एवं चन्द्रमती का कुत्ता होना—

कूकुरु हयौ अवेयनु आपु, जसहर जानत कीनौ पापु ।
बरणौं कवनु महा ममु घोरु, जसहरु राव भयौ मरि मोरु ।।३११।।

चन्द्रमती मरि कूकरु भइ, षरमति रमति आपुनु रई ।
एक दिवस विहि सर मधुजाणि, जस वैढोंवउ दीनौ आणि ।।३१२।।

रवानु पेषि मन उपज्यौ भाउ, जो लायौ तह्रू कीयौ पसाउ ।
णिसि दिनु बंध्यौ मंदिर रहै, पारधि जात बहूत मृग गहे ।।३१३।।

फुणि जस मैं अवलोयौ मोरु, अति सुरुपु गुणु कहत न ऊरु ।
सोलै मेल्यौ मंदिर माह. कौतिगु वहूत करै सो ताह ।।३१४।।

नेवर धुनि सुनि वित्तं कराइ, राणिनु षेलत यिवसु विहाइ ।
एक दिवस पावस घनघोरु, मंदिर सिषिर गयौ चढि मोरु ।।३१५।।

तहि भव सुमरि नुणि मन जाणि, सयलु लोग पेष्यौ पहिचाणि ।
चित्रसाल पेषी आपनी, अवलोइ कुचिज कस्यौ धनी ।।३१६।।

लो लगीव यन उपज्यौ षोहु, तिनहू परणि वड्यौ करि कोहू ।
कियौ चरण चंचू को धाउ, तहि पापिनि गहि तोस्यौ पाउ ।।३१७।।

मारिदत्त लै भग्यौ परानु गयौ तहां बध्यौहो स्वानु ।
तहि कूकर माता कै जीव, पक्ररि स्वानु मुहु तोरी गीव ।।३१८।।

सारि पास षेलतु हौ राउ, धायी तिनहि छुडावन आउ ।
छाडै नही स्वानु रिस लयौ, राइ स्वान सिरु मंदिर रह्यौ ।।३१९।।

काला सर्प एवं मोर होना—

निकस्यौ साथ दुहू को जीव, मुयौ स्वानु दूजौ हरि गीव ।
सिहिस्यौ बैरु स्वानु करि मर्‍यौ, किश्नु भुनंगु छाइ अवतर्‍यौ ।।३२०।।

जाहौ भयौ सोजि मरि मोरु, पाव कर्म्मभव भव तन ऊरु ।
तिणि फुणि बैरु पुराणौ सरचौ, देषत दीठि नागु संघरचौ ।।३२१।।

दोऊ परे तछ्छ की भेट, ते भषि दोऊ दीनै पेट ।
गौहिन परचौ विधाता रुसि, मरि भुजंगु जल उपनौ सूसि ।।३२२।।

नृत्यांगना—

अधम कर्म सो कोनौ षीनु, सो जाहौ मरि उपज्यौ मीनु ।
णयरे उजैनी जस मै तनी, नाचणि रूर तिलोतम बनी ।।३२३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कणक बरण ससिहर मुष जोति, पेषत मुनि रति पति तण होति ।
चंचल डोल विलोल विसाल, कोमल जनुकु पुष्प की माल ।।३२४।।

कुच कंचुकी वनी कसि ग्रंग, फाटै तर कि भ्रमत बहू भंग ।
कटनि मेषला बंधी तानि, जनकु सुगढी बिघाता आणि ।।३२५।।

बहुत कुसुम लै बैंनी गुही, जनु चंदन नागिनि ग्रारुही ।
ताल पषावज बीना बंस, नेवर धुनि सुनि मुलहि हंस ।।३२६।।

ग्रगनित जानै कला विनाना, ग्रवसरु करि जल ग्राइ न्हान ।
कोला करै सषिनुस्यौ मिली, षिणमौ सुंसुयार सो गिली ।।३२७।।

हाहा वादु नगर मौ भयौ, सुंसुमारु नाचनि गिलि गयौ ।
णिसुनि राउ ग्रायौ नदि तीर, जावि जोग दुहू भयौ सरीर ।।३२८।।

धीवर वोलि घलायौ जारु, पकर्‌यौ सूसि मेलि मुहगारु ।
लाए पकरि वाहिरी सूसि, मारी लात लठा मुह घूसि ।।३२९।।

त्ररणै कवनु महादुष षाणि, दुष दिषराये नरक समानि ।
सहिए सोजि सहावै दई, तिस पुरि सो मरि छेरी भई ।।३३०।।

मारिदत्त सुनि भव भयभीति, कछु दिवस जब गए वितीत ।
जीव न लहै कर्म्म पहू ठालि, मीनु गह्यो मुष णारौ घालि ।।३३१।।

आवघ लात मुठी कनु हन्यौ, सुर गुर पहू दुष जाइ न गन्यौ ।
रोहौ भणि तिनि दीनौ ठोउ, जस मैं ताकौ कियौ विगोउ ।।३३२।।

पिता मरिवि जो उपज्यौ मीनु, सोइ नाइ पिता कै दीनु ।
ग्रैसै दीवर भासहि वेद, मूढण लहहि धर्म्म कौ भेदु ।।३३३।।

जीवण जाइ कर्म वस परयौ, छेरी तनै गर्भु ग्रवतर्‌यौ ।
जव तिरजंच वडेरी भयौ, मातहि रवत ग्रज हण्यौ ।।३३४।।

ग्रापु वाज सो उपन्यौ ग्रापु. मारिदत्त को मेटै पापु ।
पूरे दिवस भए जव पेट, एक दिवस प्रभु गयौ ग्रषेट ।।३३५।।

तिहि दिन राजहि भई न घात, वाण हणी छेरी घरजात ।
पेष्यौ उदर त्रो फरावालु, ताको काढि कियौ प्रतिपालु ।।३३६।।

दिय बाह्मण वर भन्यौ ग्रजौनी जातु, बडो भयौ डोलै षरु षातु ।
तिहि ग्रवसरि णिसुणहु धरि भाउ, गयौ ग्रहेरै जस मै राउ ।।३३७।।

हरिण रोझ सूकर हरि ससे, मारे जीव बहूत वण वसे ।
दियवर भणहि णिसुणि प्रभु साधु, जसहर राजा तनो साधु ।।३३८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आजि पिता तनौ दिनु एहु, तासु नाम बहु भोजनु देहु।
जूठी वहतु अमिष की रासि, सोर सुवा वहू छेरे पासि ।।३३९।।

निरमलु वोकु अजोंनी जातु, लहै सुरगु सुष आजि तात ।
तिनकैं कहत अजाघर आणि, दिठु करि मंदिर वाध्यौ तानि ।।३४०।।

अमिय महादेवी कौ गेह, वोकु क्षुधा तृस व्याप्यौ देह ।
तालू वेल पयासी घनी, तहि अजाभव सुमरी आपनी ।।३४१।।

देष्यौ कुटमु दासि अरु दासु, मारिदत्त दुपु कहिये कासु ।
सवु मंदिरु पेष्यौ अवलोइ, तब पछितानैं कछु न होइ ।।३४२।।

हौ तिरजंचु पुकारौ कासु, कोइ देइ नपान्यौ घासु ।
रूपिनि णाहनि अ ुनिरण घरी, अमीय महादे दीठित परी ।।३४३।।

तहि अवसरि रावर की हासि, पापिनि रानी तनी षवासि ।
जोवन तरुण कनक समगात, कहति चली आपु समहु वात ।।३४४।।

दासि एक पभनैं तनु मेरि, करि कटाषु मुहु नाक सकोरि ।
रावर विगधि कहा रमि रही, अवर भनै तुम बात न लही ।।३४५।।

मरमु न जानहि कछु गवारी, राजा स्याव जलयौ मारि ।
जसहर चन्द्रमती दिनु आजु, होइ बहुत भोजन कौ साजु ।।३४६।।

सरचौ मासु गधि साची एहा, अमिय महादेबी कै गेहा ।
अवर दासी वोली अरगाई, कहमि वात परि कहण न जाइ ।।३४७।।

निसि दिनु सेवा जाकी कीज, सषी तासु किमि वुरी कहीज ।
याछै तुम्ह देहौ मारि, सुनैत सामि निडारै मारि ।।३५८।।

तऊ कहमि जौ कहण न जोगु, अमिय महादे वाढ्यौ रोगु ।
विसु दै भोजण मारचौ णाहु, फुनि कूवरौ रयौ करि गाहु ।।३४९।।

षाइ अमिषु डाइनि अवतरि, पापिनि कुष्ट व्याधि सरि परी ।
दुष्ट कर्म्म सो मारी चूरि, ताकी विगधि रही भरि पूरि ।।३५०।।

दासी तनौ वयनु सुनि कान, मैं घरतन पेष्यौ तहि थान ।
तब बैठी देषी सोनारि, कोढिणी बिधना करी विचारि ।।३५१।।

पायौ वेगि आपनो कियौ, जैसो बयो तिसो नुनि लयौ ।
मो सुषु भयौ नारि अवलोई, जिमि निधंन धनु षाए होइ ।।३५२।।

मारिदत्त निसुनिहि धरि भाव, काटिउ एकु अझाकौ पाउ ।
तीनि पाइसौ वपुरा रह्यौ, छूटै नही कर्म्म दिढु गह्यौ ।।३५३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कथा सुचोंजिल निसुनहु भ्राण, छेरी जो प्रभु मारी वाण ।
सो मरि देस महिषु अवतरयो, अति प्रचंडु बल दीसै भन्यो ।।३५४।।

ता परि वणिकु कठारी घालि, लादि चलायौ मधुरी चालि ।
आयौ सो उजैणि नदि तीर, चलत पंथ की भई उमीर ।।३५५।।

सो तहि महिषु पैठि जल गयो, राजा तनौ तुरंग महणायो ।
तव थन वारणु कीनौ सोरु, पकरयो महिषु घालि गल डोरु ।।३५६।।

राजा आगै विणइ सेव, हण्यौ तुरंग तुमारो देव ।
सुणि रिसाइ बोल्यौ महिराउ, याकौ करहु दुहेलौ घाउ ।।३५७।।

पाइ वांधित रखऊ आगि, तिम मारहु जिम जाइ ण भागि ।
छेरे सहुलै मारहु एहु, खाइ पिता आ जोकै देहु ।।३५८।।

फोरै कारण एहु पग तीनि, देऊ पितर जिम पावहि पाणि ।
छेरो महिषु अगिनि सहि मरो, तंव चूल दोऊ अवतरे ।।३५९।।

तहि अवसरि कर लाठी धारु, जस मैं राय तनौ फुटवारु ।
दोऊ लए अणुपम जाणि, तिणि राजहि दिषराए आणि ।।३६०।।

कुक्कट जुगलु अनुपम पेषि, राच्यौ राव रंग मनु भेषि ।
बहुत मोहू सुष उपनौ दीठि, निज कर तरसी तिनकी पीठि ।।३६१।।

कोटवाल पभणै सुनि राइ, जूझू पेषि मनु षरौ सिहाइ ।
भनै राउ तल वर प्रतिपालि, देह कूरु पंजर लै घालि ।।३६२।।

नंदन वन मेरै घर तीर, लै .चलि तांव चूल वलबीर ।
गज गामिनि भामिनि मो तनी, ता सहू कील करमि वन घनी ।।३६३।।

तहि कोतिगु पेषमि वन माह, सुफल कुसुम तपवर उन छाह ।
निसुनि बचनु तलवरु सिर णाइ, कुक्कुट लैवण पहुच्यौ जाइ ।।३६४।।

साटकु

अंवनि वकयं व चंदनघनं क किलि वल्लीहरं ।
दरकाणलि लवंग पूग कदली सेवि गुजर कामरं ।।
जाती चंपक मालती व कुसुमं भुंकरादि देरं ।
गायंती भुणि वीए किणरिउ लंप भवणं साणरं ।।३६५।।

कोटवालु घनु वनु अवलोइ, मन मोहनु सोहनु फिरि सोइ ।
तहि अवसरि णिव मंदिर पास, जहि असोय तरुवरु घन सा ।।३६६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णगिनु दिगंवर दीनै भनु, सुहड दीठु तरुवरु तरहानु ।
कोटवार मन चितयौ तहा, इह निलज्जु वन आयौ कहा ।।३६७।।

पेषि राउ मन कोपु करेइ, याकी रिस मेरै सिर देइ ।
मुनिवरु वातनु लेमिउ चाटि, यावन ते कडमि निरघाटि ।।३६८।।

डिंभ भरचौ आयौ मुनि तीर, नमसि कालु कीनौ बरवीर ।
मुनिवरु ति जग सरोरुह सूर, धर्म्म बुद्धि दीनी गुण पूर ।।३६९।।

सुनि मुनि वचनु सुहडु भनि कहै, कहिये धम्मुं कवनु को लहौ ।
धर्म्म धनुषु सिव सूधे वाण, यहू भासिउ दीवर परवाण ।।३७०।।

मुनिवरु भनै नि सुनि कुटवार, पभणमि धर्म्म तनै विवहार ।
कहियै मुकति अमर पद थान. सुखु अनंतु को कहण समानु ।।६७१।।

कहियै धम्मुं अहिंसा आदि, जा विनु हिंडिउ आदि अनादि ।
मुनिवर बचन सुह द्रह सि परचौं, मुनिवर वादि धध महू परचौ ।।३७२।।

कवनु जीव को दुखु सहाइ, मूढ देह माटिहि मिलि जाइ ।
पवन हि पवनु मिलै मन जाणि, किम मुनि भासहि भुठु बषाणि ।।३७३।।

कवन काज दुषु सहहि सरीरा; छाह अंगतन पहिरहि चीरा ।
वहूनिण जीव लेइ अवतारू, विनु कण कूटहि काइ पियारु ।।३७४।।

फुणि रिसि वोल्यौ भडणिसु सुणेहा, भिन्न जीव करि जाणहि देहा ।
तातैं तपु करि काटहि पापु, जान्यौ देव जीव गुनु आपु ।।३७५।।

जौ परि पवनु गयौ मिलि यौनु, दुष सुष मूढ सहौ तौ कौनु ।
भलौ बुरौ तौ कीजइ काइ. तलवरही णाव कहि किम वाइ ।।३७६।।

जो गुण मुनि वरु भासी पेषि, सो गुणु तलवरु मेटइ दोषि ।
भणै सुभटु दरसण अंगु, मुनिवरु भासि करै तिण भंगु ।।३७७।।

तलवर भुठु भणै सवु जोरि, सो संसौ मुनि घालै तौरि ।
जितौ वादु मुनि तलवर कीणु, तेतौ किमि भासमि वुधि हीनु ।।३७८।।

तलवर तनौ रह्यौ मनु माणि, पादु नुपरो सु दिढु मुणि जाणि ।
उपमा वहुत केमकरि भनौ, किम षटाइ भुस कौ लीपनो ।।३७९।।

तलवरु भणै निसुनि गुरदेव, दै आइ सुकरमि किम सेव ।
भासै स वनु सुभट करि एह, आठ मूल गुण दिठु करि लेह ।।३८०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जेसा वयवय भासहि वीरा, जासु पसाइ तरहि भव तीरा।
ए प्रतिपालि धर्म्म की रासि, आगम कह्यौ जिनेसुर भासि ।।३८१।।

फुणि भडु भणै जु तुम मुणि दयौ, सो मन बचन काय मै लयौ।
परि मेरै कुल मारग एक, मुनिवर निसुनि धर्म्म की टेक ।।३८२।।

पिता अजायौ जौ पर तातु, आयौ चल्यौ वंस जीय घातु।
जसमै राय तनौ कुटवारु, मार मि चोरु जारु वट पारु ।।३८३।।

भास मि देव वयनु अरिढाडि, पालमि सयलु अहिंसा छाडि।
निसुनि वयनु मुनिवरु हसि परचौ, जान्यौ अजहु मूढमति भरचौ ।।३८४।।

निसुनि मूढ जिम सिर विनु देह, लवन विनु भोजनु नारि बिनु गेह।
जिम मुहु हीण नयण अरु णंक, जिम वहु सून एक विनु अंक ।।३८६।।

धर्म्मु अहिंस धर्म्म की आदि, ता बिनु मूढ धर्म्मु सवु वादि।
अरु तू कहहि मूढ निरमंस, आइ चली हमारै बंस ।।३८६।।

ताकौ उत्तरु पभनौ भाषि, चलै कोटु जौ सातौ साषि ।
कोइ बैदु मिलै लै मूरी, परि सो कोढु करै सव दूरी ।।३८७।।

कहि कहि मूढ आपु गुण साधी, दूर्जे भलौ किस हिये व्याधी।
तंव चूल कीणि सुणहि वाता, जिम ए फिरे भवंतर साता ।।३८८।।

सहे महा दुष नरक समाना, तिम तू सहि हे मूढ अयाना।
तव चित चेति वात भड भनी, कहि कहि सुगुरु कथा इण तनी ।।३८९।।

जय वर भनै अमोघ रस वाणि, सुनि वर वीर कथा थिरकाणि।
जसहरु एक अचेयण घात, भवगति फिरचौ भवंतर सात ।।३९०।।

श्लोक

श्रीमयेह उज्जैनिनामनगरे सुरोजसोघो नृपः।
पत्नी चन्द्रमती सुतो जसधरः, नारी चरित्रे मृता।
संपत्तो सिहि स्वान जावह फणी जुग्मोपि अंभंचरः।
छेली छागु स्ववीर्यं छेल महिषो एवं पुनः कुक्कुटः ।।३९१।।

इनके कहे भंवतर वीरा, तंव चूल पंजर तो तीरा।
अब नर जनमु तनौ अवतारु, दोऊ लहहि काटि दुहू भारु ।।३९२।।

तलवर चेति आपु व्रतु लयौ, जनु रवि किरण पेषि तुम गयौ।
निसुनी कथा मुनीसुर भनी, कुक्कुट भव सुमरी आपनी ।।३९३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जान्यौ सयलु पाछिलौ कियो, तब पछिताइ विसूरचौ हियौ।
पायौ दुलहु मह्रा गुण वोहु, जीव भषण कौ कियौ निरोधु ॥३९४॥

आई काल-लवधि सुभ घरी, भव भय वेलि कटी दुष भरी।
तंव चूल पंजर वन माहु, कीनौ सव दुसुरुहु रीसाहू ॥३९५॥

जस वैराउ रयणि वण गयौ, राणि हि सहितु सुरतु सुषु लयौ।
कोक भाव रमि खणि सुजाणि, पंषि सवद सर मारे ताणि ॥३९६॥

तंव चूल आरति तजि मरे, कुसुमावली गर्भ औतरे।
पायो धम्मुं सुगुरु उपदेस, पोतै परी सु किल सुभ लेस ॥३९७॥

गुरु भव सायर तारण हारु, भव तरुवर कप्परण कुठारु।
कीजहु भव्व सुगुरु कौ कह्यौ, जासु पसाई उत्तिम कुल लयौ ॥३९८॥

सिसु सारंग नयणि ससि वयणि, पिय सौमानि सुरत सुषु रयणि।
कुसुमावली सहितु घरणाहु, गयौ णयरि मन भयो उछाहु ॥३९९॥

पयडु असा पति तण सहि दारु, दिन दिन गर्भु जु णावै आणु।
जिनवर तनो धर्म परभाउ, पुन्न दोहलो पुरै राउ ॥४००॥

कुंजर चालि सुहाई मंद, पंडरु वयनु सरद जनु चंद।
घुलहि णयण जनु जागी राति, मोरति अंगु वयण अरसाति ॥४०१॥

कररुह भाणै षरी जह्राई, कोमल जंघ जुयलु थहराइ।
चंदन चंदु कुसुम रस वासु, सीयल सेज र वैज्यौ तासु ॥४०२॥

विरीषंडि डारै अघषाइ, सुनै कहानी सखिनु वुलाइ।
अनुकमेण पूजे दस मास, भयौ जु पलु पूरी मन आस ॥४०३॥

अभयरुचि का जन्म—

मंगलु भयौ राय कौ गेह, सुह वेली सीची सुघ मैह।
हीण दीण पूरै दै दानु, सुयण लोग कौ कीनौ मानु ॥४०४॥

इकु राजा सुत जनम्यौ आनु, ताको सुषु को कहण समानु।
कीनौ अभौ कुटमु रुचि भरचौ, ताते नामु अभैरुचि धरचौ ॥४०५॥

सुतर अभैमति कंचन देहा, अति सरूप जनु ससि की रेहा।
मारिदत्त सुनि कथा पहाणि, दुसह खरी कर्म गति जानि ॥४०६॥

वलि जौ जानि सवनुत दई, बहू हुती सो माता भई।
नंदनु हुतो जसोमति राउ, सो फिरी भयौ हमारो ताउ ॥४०७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सबु संसारु विडवनु जाणि, राजा चेति धर्म्म पहिचाणि ।
वालक वढे पिता कै गेह, निर्मल अंग सकोमल देह ॥४०८॥

लषण वतीस कणक सम अंगु, जनहु अंग सहू भयौ अनंगू ।
खेलत वाल कुं देष्यौ तात, मुद्रा पेषि भयौ सुपु गात ॥४०९॥

फुणि सुन्दरि देषी सुकुमाल, सय दल सदल णयण सुविसाल ।
णावकांकेलि वेलि सम अंगु, चितवत जनु भयभीत कुरंगु ॥४१०॥

दूहु पेषि पभणै नरणाहु, देमि राजु अरु करमि विवाकु ।
मारिदत्त सुनि ग्रह धरि भाउ, पारधि चल्यौ हमारौ ताउ ॥४११॥

स्वान पचहै लीने साथ, कणक डोरु गहि अपनै हाथ ।
पेपहु चरितु दई को आनि, ढाहिणि दिसि तवरु तरहाणु ॥४१२॥

मुनि दर्शन—

बिरकत भाव मुक्ति मन इठु, दीनै ध्यानु मुनी सुदीठु ।
पभणै राउ कोप आतुरचौ, नगिनु दीठु किम मेरी परचौ ॥४१३॥

निर्धनु मलिनु अमंगलु एहु, दीयवर्णिदु सद्रवर देहु ।
सनमुख णगिन रह्यौ दै ध्यानु, या सम मो असगुणु नहि आनु ॥४१४॥

याकौ मुषु देषत सवु जाइ, अण चीतीउ किम देष्यौ आइ ।
अरु मै वात पत्याई आण, मैट वुरेस्यौ होइ अचाण ॥४१५॥

सव कूकर मेले मुणि तीर, ध्याए घण जिम लए समीर ।
मुनिवर नीरे मंडल जाइ, समहुइ रहे सीसु धरि लाइ ॥४१६॥

गोवर्द्धन सेठ—

तव मन को पुन सक्यो सहारी, धायौ राउ काढि तरवारि ।
तहि अवसर गोवरधनु सेठि, जामन अटल पंच परमेठि ॥४१७॥

वनिवरु अंतरु कीनौ आणि, जस मै तनौ परम हितु जानि ।
पभनै तू जि अविन कौ राउ, मुनिवर उवरि करहि किम घाउ ॥४१८॥

पणवहि चरण वेगि तजि गाहू, मुनिवरु तेज पुंज गनाहू ।
वनिवर वयणु निसुनि महिपालु, भनै मित्र किम जंपहि आलू ॥४१९॥

मुनि कौ आहिण आजु उठारु, यासिर करमि पलय की मानू ।
तू मो सहू पाल गया कहही, मानहू मेरो मरमु ए लहहि ॥४२०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निंद्यो मुणि दिय वरह पुराण, इनके बचन न सुनियहि काण ।
मेरे कूकुर राषे कोलि, अवय करज्यौ कणकु सो लील ।।४२१।।

असो वचनु राइ जव भन्यौ, हा हा पभणि वनिक सिरु धुन्यो ।
नरवै मूढ राज मद भरे, भूली वात कहहि वावरे ।।४२२।।

मुनि के गुणों का वर्णन—

मुनिवर सम को अवरु पहाण, याको गुणनि सुणिहि दै कानि ।
मलिन देह अंतर मल हीनु, तिय ण संगु सिव भामिनि लीनु ।।४२३।।

निर्धनुहै परि धनहि न अंतु, तीन रयण गही रह्यौ महंतु ।
रोस हीनु परिहन्यौ अनंगु, जो रवि परै तम रहैं न अंगु ।।४२४।।

षीण सरीर अतुल वल जाणि, को तप तेज कहै परवाणि ।
वयनु पेषि सुष उपजै गात, अस गुण करै नरक जनु जात ।।४२५।।

यह कलिंग नरवै सुपहानु, या समान राउ न होतउ आनु ।
तसकर कारण छाडिउ राजु, तजि आरंभु कियौ तप काजु ।।४२६।।

अरु जे ते सावज वणवास, लगते रहहि सदा मुनि पास ।
ता ऊपर किम घालहि घाउ, किम वे काज वढावहि पाउ ।।४२७।।

सुर नर खयर फनीसुर जिते, इणकी सेव करहि सव तितौ ।
माया मोहु ण व्यापै सोकु, नान नयण सूझै तिर लोकु ।।४२८।।

जिन विनु काज वढावहि पापु, पणवहि चरण छाडि मन दापु ।
वनिवर तनी राव सुनि वात, चेत्यौ षरौ सकुचि करि गात ।।४२९।।

राजा द्वारा मुनि भक्ति—

मन विचार करि उपसम भाउ, मुनिवर चरण परचौ महिराउ ।
रागु रोसु मरु जिन वसि कियौ, धर्म्मं बृद्धि भनि आसिषु दियौ ।।४३०।।

दूजो धर्म्मु पापु षै जाउ, यह मेरौ आसिक को भाउ ।
मुनिवर बचनु राउ सुनि काण, तव नरवै लाग्यौ पछितान ।।४३१।।

इण षिनु एकु न कीनी रोस, करु उचाइ मो दई असीस ।
या सम महियलि साधु ण आनु, इणि परु जान्यौ आपु समानु ।।४३२।।

मेरौ जेम पराछितु जाइ, सीसु काटि लै पर समि पाइ ।
मुनिवरु भन्यौ निसुनि महिपाल, किम मन चिंतै मरनु अकाल ।।४३३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काटहि वीर केम सिरु आपु, आयु घात कटि जाइ ण पापु।
जिम परघातु आपु तिम जाणि, वचनु अडोलु हमारौ मानि ।।४३४।।

जव यहु वचनु मुनीश्वर कह्यौ, नरवे चेति चमकि चित रह्यौ।
सुनि कल्याण मित्र गुण षाणि, मन महू वात लई किम जाणि ।।४३५।।

वणिवरु भणै राय णिसुणेह, कितिक वात जो जानी एह।
भई होइगी वरतति अहै, मुनिवरु तिहू लोक की कहै ।।४३६।।

माता पिता पितर तो तनै, जो बूझै सो मुनि वरु भनै।
राजा तनौ गर्व्व गलि गयौ, बूझै वयनु आतुरौ भयौ ।।४३७।।

राजा द्वारा पूर्व भव जानने की इच्छा—

राउ जसोधु पिता ससिमति, कहि मुनिवर तिनकी भवगती।
जसहरु अमिय महादे राणि, भए केम तिम संसौ भानि ।।४३८।।

मुनि द्वारा कथन—

सुनि मुनि वयण नारि मन चूरु, भासै सुयण सरोरुह सूरु।
व्यौरौ कह्यौ भई जिम वात, जैसैं फिरे भवंतर सात ।।४३९।।

चन्द्रमती अरु तेरौ ताउ, कियौ अचेयण कुक्कुंट घाउ।
हीढै तासु पाप के लए, अभैकुमारु अभैमति भए ।।४४०।।

सिरस कुसुम सम कोमल देह, ते दोऊ पैलहि तुव गेह।
भष्यौ अमिषु सेयौ परदारु, अरु विसु दै मारचौ भरतारु ।।४४१।।

कोढिनि भई महा दुषमरी, पचम नरक जाइ अवतरी।
सो तू अमिय महादे जाणि, तेरी माय पाप की षाणि ।।४४२।।

तो सौ भवण भवति गति कही, जिम जिनि करी तेम तिणि लही।
यह संसारु जीव करि भरचौ, कर्म कुलाल कमठ वस परचौ ।।४४३।।

भानै गढै गढै फुनि भानि, नर वै जलद पटल जगु जाणि।
पुरिस सीह सुनि जस मै राइ, बिनु जिन धर्महि सुषु ण लहाइ ।।४४४।।

भव व्यौरौ निसुन्यौ वरवीर, हा हा भनि थर हस्यौ सरीर।
चेतु लागि मुनिवर पग परचौ, मन विलषाइ हियौ गह वरचौ ।।४४५।।

असू टूटहि कंपइ देहु, जनु भर भादौ वरसै मेहु।
जौ जहू पापुण घालै षाइ, तव लगि तपु दै तिहु वणराइ ।।४४६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तव पग परहि पुरंदर देव, अरु चक्के स पयाहि सेव ।
कहि कल्यान मित्र गुण गेह, सूरि-सुदत्त वेगि तपु देहू ।।४४७।।

तहि अवसरि प्रभु तनौ षवासु, कूक्यौ जाइ जह रणवासु ।
किम सिंगारु करहु वरणारि, यौवन गयौ भयौ तप धारि ।।४४८।।

किम कसि कंचुकि पहिरहु अंग, बहुरिण नाहु मिलै रति रंग ।
किम तण पहिरहु दक्षिण चीर, किम मंडहु आभरण सरीर ।।४४६।।

कुंकुम रेह करहु किम वानि, केम कसनि कटि बंधहु तानि ।
अरु किम चलहु समोरति देह, फिरिण नाहु आवइ सगेह ।।४५०।।

अंजहू नयण केम सुहिणाल, वास सुगंध कुसुम की माल ।
अरु किम नेवर चलहु बजाइ, करि कटाषु किम मिल बहू भाइ ।।४५१।।

किम रचि वैनी वंधुहु फूल, सेज रचहू किम कोमल तूल ।
किम कर बीन बजावहु नारि, अरु किम विहसहु वयनु पसारि ।।४५२।।

अरु किम चंदन चरचऊ अंगु, कंत कियौ सजम सिरि संगु ।
स कहुत जाइ वरो रहु णाऊ, सोतलु करहु विरह तन दाऊ ।।४५३।।

जौ कछु ण्याऊ करै करतारु, तौ अव कीव मिलै भरतारु ।
चरण रतनौ वयनु सुनि काण, सब रानी लागी अकुलाण ।।४५४।।

अंतेवर बहू कीनौ सोरु, जनु निसिव तकणु पेष्यौ चोरु ।
मधुकर मिले पवण सुष वास, विरजति तिनहि चली पिय पास ।।४५५।।

जिहि वन स्वण पास, सुपियरु, तपु मागत देष्यौ भरतार ।
बहुत भाति समुझायो नाहु, परि तप ऊपर तजै ण गाहु ।।४५६।।

जौ अतिअसहै वहै वयारि, सकै होनु किम परवतु टारि ।
तोरचौ मोहु कर्म को हेतु, हम फुणि सुण्यौ पिता तपु लेतु ।।४५७।।

रथ चढि वीरु वहिणि वन गए, किंकर बहुत साथ करि लए ।
दरसनु पेषि मुनिसर तनौ, तब हम भौ सुमरचौ आपणौ ।।४५८।।

कुसुमावली हमारी माइ, ताकी छोरि परे मुरझाइ ।
सीचि पवण जल चेयण लही, अपनै मुहु अगनी भव कही ।।४५६।।

वस्तुबन्ध

हउ जि जसहरु चंद मै अम्हे पुणु गेह रहे ।
वितहि मरिबिदोविसिहि साण ·पत्तइ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लछाउवए विलुहु जाहो फणि अइ किन्ह गत्तइ ।
जलयर छेली छागु अजु महि सुसदु फुर गत्त ।
लंव चूल तनु छंडि तहि, हम ण रहोइ त्रिपत्त ॥४६०॥

दो विहि कुक्कुंटु हयौ अचेतु, हिंडिउ सात्त भवंतर लेतु ।
पुत्रु माइ दुष देषत फिरै, ते हम वीरु वहिणि अवतरे ॥४६१॥

अव तपु दोऊ करहि अलेउ, मनचरि एकु जिनेस्वर देउ ।
जणिवरु भनै सकोमल भास, णिसुनि कुमार वयनु मो पास ॥४६२॥

लेइ महातप तेरौ ताउ, तू कुमार कीनौ महिराउ ।
वालक वयनु पिता कौ पालि, तौ निवहे कुल केरी चालि ॥४६३॥

पुत्र ण करहि पिता की आण, तौ ण काजु सीझै परवाण ।
लक्षनु रामु भयौ परचंड, पिता वचनु सेयौ बन षंडु ॥४६४॥

ताते राजु करहु दिन चारि, फुनि तपु लीजहू काजु विचारि ।
राजु सकति करिमो कहू दयौ, जस वे वनिक दुंहु तपु लयौ ॥४६५॥

कुसुमावली अरजिका भई, बहुत नारि सहू दिष्या लई ।
मै दिन चारि राजु घर करयौ. फुनि दै भाइ हि सो परिहरयौ ॥४६६॥

गए सुदत्त सूरि मुनि पास, जो तप तेज सरु वनवास ।
णमसिकारु करि मागी दीषि, तब सुदत्त गुरु दीणी सीष ॥४६७॥

तुम दोऊ बालक सुकुमाल, कोमल जिसे पऊ के नाल ।
पंचम महाव्रत दूसह षरे, ते तुम पास जाहि किम धरे ॥४६८॥

जोग त्रिकाल देहि किम बीर, केम परीसह सहहि सरीर ।
पाष मास किम सहहिउ पास, लहि कुमार किम सहहि पियास ॥४६९॥

जब लगि दोऊ समरथ होऊ, अनुव्रत धरहु कुमर दलि कोहु ।
स गुर बचन सुनि कुमरु कुमारि, लीनौ तपु आभरण उतारि ॥४७०॥

कोऊ लाहू जीत्यौ मौ मानु, सुष दुष तिणहु मु एक समान ।
थोषहि आगमु वारह अंग, निसि दिनु रहहि गुरु कै संग ॥४७१॥

जिनवर वंदत तीरथ थान, संजम राषत पंच पराण ।
करत विहार कम्मु सुनि राइ, नयरि तुमारी पहुचे आइ ॥४७२॥

गुरु उपदेस चले निरगंथ, भोजन निमित नगर कै पंथ ।
तुव किंकर लैंते वरी आण, गहिलाए देवी कै थाण ॥४७३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हम तू वैठो देष्यो राइ, जनु ससि अंवरु उदौ कराइ ।
तुम अतिगहु करि बूझी बात, मै सव कही भयो सुष गात ।।४७४।।

पेषी सुनि तई गुरु पासि, मारिदत्त तिम पयडी भासि ।
को काकौ सवु जाणहि धंधु, मानसु मूढ ए चेतई अंधु ।।४७५।।

कबहुं जियहि ए लाग्यो चेतु, चौ गति फिरयौ भवंतर लेतु ।
मारिदत्त राजा सुपहाणु, निसुन्यौ जसहर तनौ पुराणु ।।४७६।।

मारिदत्त का पापों से भयभीत होना—

चिमक्यौ राव पाप डर लयौ, विसु सौ उतरि स वनु कौ गयौ ।
पाइ परयौ जोगी अरु राइ, देवी वहुत विमन पक्षिताइ ।।४७७।।

मारिदत्तु न खेवर वीरु, लयौ उसास नयण भरि नीर ।
निंदि अपनौपो भासै बात, राषि राषि जय वर जगतात ।।४७८।।

नरक परत राषहि परचंड, भवगति सायर तरण तरंड ।
दै तपु मोहि रिषी सुर बाल, वार वार विनयौ महिपाल ।।४७९।।

दोहरा

तहि मुनि सूरि सुदत्त गुरु, जान्यौ अवधि प्रमाण ।
नर वै अभय कुमार लहु, संवोहिउ तहि थान ।।४८०।।

सुदत्त मुनि का देवी के मन्दिर में आगमन—

निसुनहु कथा अपूरब आण, मुनि आयौ देवी को थान ।
मुद्रा पेषि अचंभ्यौ राउ, आसनु छांडि करयौ पणाबाउ ।।४८१।।

पाइनु अभैरुचि परयौ, णमसि कालु जोगी सुर करयौ ।
देवी तनौ मवु गलि गयौ, अपनौ थानु सुहाउठयौ ।।४८२।।

मुंड रुंड सब कीनौ दूरि, कीनौ गेहु कनकौ पूरि ।
अंगनु चंदन राष्यौ लोपि, चोया कुं कुह पूरी सीपि ।।४८३।।

बहुत कुसुम तरु वंदन वार, भवर वास गुंजरहि अपार ।
फेरि रूपु तन अति सुन्दरि, रोहिणि जनकु सुध्यं ते परि ।।४८४।।

जीव जुगल सब दे नै मेलि, मंगलु घोसिउ माडे केलि ।
मारिदत्तु पभणैं गुण रासि, मो सहू देव भवंत भासि ।।४८५।।

पभनहू स्वामि भव आपनी, गोवरधन अरु योगी तनी ।
राउ जसोधु चन्द्रमति राणि, देवी की भव कहहू बषाणि ।।४८६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्व भवों के बारे में प्रश्न—

कुसुमावलि अरु जस मैं राउ, मेरी अरु जिम जननी ताउ ।
अरु जिम महिष तुरंग मुहयौ, अमिय महादै कुवज कुरयौ ।।४८७।।

सरमघको काकौ अवतरयो, भासि सुदत्त चोज रस भरयो ।
मारिदत्त सुनि भासै सूरि, संसौ हरमि चित्त कौ दूरि ।।४८८।।

सुदत्त मुनि द्वारा वर्णन—

गंधर्वु देसु अरु पुरु गंधर्वु, पेषत हरै अमर को गर्वु ।
तहि वैधर्वु राउ परचंडु, एक छत्र बूझै महिषंड ।।४८९।।

विभ्रसिरी भांमिनि गुण रेह, रामचंद्र घरि सीता जेह ।
गंधर्व सेनु पुत्रु तिन जन्यौ, अति सुरुपु जनु सुरपति बन्यो ।।४९०।।

गंघर्वा पुत्री मृग नयनि अति मुख जोति चंदु जनु रयणि ।
मंत्री रामु नामु प्रमु तनौ, राज मंत्रु जो जानै घनौ ।।४९१।।

अवला तासु कणक सम देह, वालक हरिण नयण ससि लेह ।
नंदन वेवि पयंड सरीर, नामु जितारि भोउ वर वीर ।।४९२।।

गंधर्वा सुव राजा तनी, सो जितारि व्याही तन बनी ।
सो देवर रमि चूरी पाप, दुसह जाणि मयन की ताप ।।४९३।।

गंधर्वु राजा पारधि गयौ, तहि वैराग भाव मन भयौ ।
सुव वैधर्बहि दीनौ राजु, आपुनु कियौ परम ताप काजु ।।४९४।।

अतकाल करि सुव पर मोह, सो मरिण रवै भयौ जसोहू ।
तहि जित सत्र पेषि रतनारि, करि वैरागु महा पुपारि ।।४९५।।

जिनवर धर्म्मं पालि गुन षाणि, राउ जसोधर उपन्यौ आनि ।
गंधर्व वहिणि तनी सुनि वात, तपु करि सही परीषह गात ।।४९६।।

करि सन्नासु काटि भव पापु, मारिदत्तु सो जाणहि आपु ।
गंधर्वा जिनि देवरु रयौ, समझी अन्त काल तपु लयौ ।।४९७।।

सो मारि अमिय महादे भई, रमि कूबरौ नरक सो गई ।
भीवरमी भायर की तिरी, कुल कलंकु कीनौ मति फिरी ।।४९८।।

सीलु भुंजि अपजसु संग्रह्यौ, पापी जन्मु कुविज को लह्यौ ।
मंत्री रामु रवन ससि लेह, तपु करि संजम सो सी देह ।।४९९।।

पयरु षयरि दोऊ अवतरे, बर्णी कहा महासुष भरे ।
जिनवरु पुजि धम्मु पहिचाणि, सो जमै कुसुमावलि जाणि ।।५००।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो ही सवति चंद्रमति तनी, मरिवि तुरंगु जाय उपनी ।
सो सखिरै महिषनो हयौ, सो मिथला पुरि बाछौ भयौ ।।५०१।।

अंत काल आषर सुनि काण, तिनि आरते तजि तिजे पराण ।
रुपि निखनि तुमारी राइ, ताकै उदर अवतरचौ आइ ।।५०२।।

राज धुरांधर घरिहे सोइ, पुण्ण पुरिषु तेरै घर होइ ।
तेरौ पिता कर्म्म कौ लयौ, चंडमारि देवी सो भयौ ।।५०३।।

सील निहारण तुमारी माइ, सो मरि जोगी उपन्यौ आइ ।
जसवंधुरु अवनी कौ राउ, राइ जसोध तनौ जो ताउ ।।५०४।।

सो सुहझाणा चयौ तजि मोहू, जिनवर धर्म्म तनौ लहि बोहू ।
देसु कलिंग राउ भगदंतु, कुंद लता भामिनि कौ कंतु ।।५०५।।

धरण कण कंचण दीसै भन्यौ, जसवंधुरु तनरुहु अवतन्यौ ।
नामु सुदत्तु राउ गुण गेहू, सो मुनिवर हौ आयौ एहू ।।५०६।।

राय जसोध तनौ सुपहाणु, मंत्री राज गेह परधाणु ।
आयु अंत सुमिरि परमेठि, सा जानै गोवरधन सेठि ।।५०७।।

मारिदत्त जौ बूझौ मोहि, सव समुझई पयासो तोहि ।
अवधि णयण जान्यौ परमानु, मै भास्यौ भव भवण कहाणु ।।५०८।।

तुव पुर पंच वार फिरि गयौ, तौ सौ राइण दरसनु भयौ ।
काल लवधि जब आवै राइ, तब ही सुभ गति जीउ लहाइ ।।५०९।।

मारिदत्त द्वारा दीक्षा—

मारिदत्त तपु लयो बिचारि, पंच मूठि सिर केस उपारि ।
जोगी सु गुर तनै पग परचौ, सब पाषंड भाउ परिहरचौ ।।५१०।।
भनै दियंबर मो तपु देहु, दया गेह मत विरमु करेहू ।
चवे सुगुरु मुनि भैरौनंद, कौलागम रयणायर चंद ।।५११।।

सुदत्त का भैरवानन्द को उपदेश—

दिन बाईस तुमारी आयु, वेगि धर्म्मं कौ करहि उपाउ ।
तव जोगी मन लाग्यौ चेतु, चित यौ आपु जीव कौ हैतु ।।५१२।।
परिहरि षानु पानु सबु भोगु, लै सन्यासु दियौ दिढ जोगु ।
बारह अनुपेया मन भाइ, सुग्रं दुतीय सुर उपन्यौ जाइ ।।५१३।।
ठोडी भई देवि कर जोरि, सा मि नरक मो जात वहोरि ।
मो वीराधि वीर तपु देह, भव सायर बूढत गहि लेह ।।५१४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुसुमवान मानिनि मन चूरु, भासै सुयण सरोरुह सूरु।
तो कहू तपुण जोगु सुर णारि, समिकत रयणु लेह दिढु धारि ॥५१५॥

स्वयं देवी द्वारा अहिंसा धर्म पालन करना—

जीव घात कौ छाडहि भाव, जे पूजहि तिन वरजि रहाउ।
तजहि आपनी पहिली चालि, जिनवर तनौ धम्मु प्रतिपालि ॥५१६॥
जीव घातु तव देवी छाडि, आपुनु फिरी नगर महू टाडि।
जो मेरै मंडफ वलि देइ, ताके घर किनु देवी लेइ ॥५१७॥
नि सुनहू सवै नगर नर णारि, मो पूजत घर देमि उजारि।
जों कहि है देवी वलि लेह, कुसरणि करिहौ ताकै गेह ॥५१८॥
मेरै नाम बजावै तूरु, ताकै पेट उठै दिन सूरु।
समिकत रयनु देवि ले रही, परिहरि कुगति सुगति सुरि गई ॥५१९॥
लयौ महाव्रतु अभय कुमार, भए वहुत नर समिकत धार।
पढम सुग्गं भगिनी अरु बीरु, भए अमर सो सुद्ध सरीर ॥५२०॥
मारिदत्तु जस मै अरु सेठि, ध्याइ ध्याइनु मन धरि परमेठि।
करि तपु दुद्धरु उपनौ देव, सुकिल लेस सुर हर गय लेव ॥५२१॥
सूरि सुदत्तु नाम सुपहाणु, चढि संमेदि सिहिरि दै ध्यानु।
निद्दलि कम्मं छीनि भवगति, सप्तम सुग्गं भयो सुर पति ॥५२२॥
अनुकमेण पावहि सिव ठानु, सुष समूह को कहण समानु।
जसहर चरितु वणि सवु कह्यौ, दया धम्मु फुणि सुन नर मह्यौ ॥५२३॥
मंगलु करौ जिनेसरु बीरु, निसुनत निम्मंल होइ सरीरु।
निसुनहु नामु गामु सुभ थानु, जिहि निवसत मै ठयौ पुराणु ॥५२४॥

ग्रंथ प्रशस्ति—

गंग जमुन विच अंतर वेलि, सुष समूह सुर मानहि केलि।
नयरि कैलई जनु सुर पुरी, निवसै धनी छतीसो कुरी ॥५२५॥
अभयचंदु तह राउ निसंकु, जनुकु सुषोडस कला मयंकु।
परजा दुषी न दीसै कोइ, घर घर वीध वधाऊ होइ ॥५२६॥
श्रावग बहूत बसहि जहि गाम, जनु आसि कौ दीनौ सियराम।
पोमावे पुर वर सुष सील, सुर समान घर मानहि कील ॥५२७॥
सा कन्हर सुतु भारग साहू, जिनि धनुष रंचि लियो जसलाहू।
जस रानौ पटनु सुभ ठौरु, गौछ महापुरु दूजो और ॥५२८॥
अनगरु अंतपुरु अरु सोहारु, च्यारचो गाव वसावन हारु।
जासु नामु पडुवा मुरि तान, राज काज जान्यौ सुरिताण ॥५२९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तासु नारि देवलदे नाम, जिम ससि हर रौहिनि रति काम ।
सोलु महा तहि लीनो पोषि, नंदन तीनि अवतरे कोषि ।।५३०।।
मेघु मेघुपर सूजस रासि, जनु कुसु सूरु ससि सुकु अकासि ।
जेठौ थेघु साहू सुपहाणु, जासु नाम मैं ठयौ पुराणु ।।५३१।।
पुन्न हेतु जानै उपगारु, जिनवर जगिन करावण हारु ।
वहुत गोठि लै चाल्यौ साथ, करी जात सिरी पारस णाथ ।।५३२।।
षरचि वहुतु धनु राव न थान, घर आयौ दियौ भोयण दाण ।
ताकौ पुत्र रत्नु अवतर्‍यौ, रयनायरु गुण दीसैं भर्‍यौ ।।५३३।।
भाव भगति करि दीजैं दानु, कीजैं भवन गुणी कौ मानु ।
जौ कुटंवु वरणौ विस्तरी, वाढै कथा अवर दूसरी ।।५३४।।
राम सुतनु कवि गारवदासु, सरसुति भई प्रसन्नी जासु ।
वसत फफोतू पुर सुभ ठौर, श्रावग वहुत गुणी जहि और ।।५३५।।

रचना काल—

वसुविह पूजिनि नेस्वर एहानु, लै अभारु दिन सुनहि पुरानु ।
संवतु पंद्रहसै इकअसी, मादौ सुकिल श्रवण द्वादसी ।।५३६।।
सुर गुरुवारु करणु तिथि भली, पूरी कथा भई निरमली ।
जसहर कथा कही सव भासि, सिष लै भाव परम गुरपासि ।।५३७।।
वादिराज भासी गुर मूरि, तासु छाह पभनी भरि पूरि ।
सयलु संघु नंदौ सुष पूरु, जव लगि गंग जलधि ससि सुरु ।।५३८।।
मेघ माल वरसै असरार, वोध वधाए मंगलवार ।
निसुनिवि व सम तला वहू षोरि, हीनु अधिक सो लीजहु जोरि ।।५३९।।
पढै गुणै लिषि देई लिषाइ, अरू मूरिष सौ कहौ सिषाइ ।
ता गुण वणि वहुतु कवि कहै, पुत्रु जनमु सुष संपति लहै ।।५४०।।

इति जसोधर चौपई समाप्तः ।। संवत् १९३० मांगसर सुदि ११ वार दीतवार ।।

□□□

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५

कविवर ठक्कुरसी

भक्ति कालीन कवियों में कविवर ठक्कुरसी का नाम उल्लेखनीय है। उनकी पञ्चेन्द्रिय वेलि एवं कृपण छन्द बहु चर्चित कृतियां रही हैं। इनका परिचय प्राय: सभी विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में देने का प्रयास किया है। लेकिन फिर भी जो स्थान इन्हें हिन्दी साहित्य के इतिहास में मिलना चाहिए था वह अभी तक नहीं मिल सका है। इसके कई कारण हो सकते हैं। सर्वप्रथम पं० नाथूराम जी प्रेमी ने अपने "जैन हिन्दी साहित्य के इतिहास" में इनकी एक कृति कृपण चरित्र का परिचय दिया था। इसके पश्चात् डा० कामता प्रसाद जैन ने "हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास" नामक पुस्तक में कवि की कृपण चरित्र के अतिरिक्त पञ्चेन्द्रिय वेलि का भी परिचय उपलब्ध कराया था।

सन् १९४७ से ही राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूचियों का कार्य प्रारम्भ होने से गुटकों से अन्य कवियों के साथ-साथ ठक्कुरसी की रचनाओं की भी उपलब्धि होने लगी और प्रथम भाग से लेकर पञ्चम भाग तक इनकी कृतियों का नामोल्लेख होता रहा इससे विद्वानों को कवि की रचनाओं का नामोल्लेख ही नहीं किन्तु परिचय भी प्राप्त होता रहा। पं० परमानन्द जी शास्त्री देहली का पहिले अनेकान्त में और फिर "तीर्थंकर महावीर स्मृति ग्रन्थ" में कवि पर एक विस्तृत लेख प्रकाशित हुआ है जिसमें उसकी ७ रचनाओं का विस्तृत परिचय भी दिया गया है। इससे कवि की ओर विद्वानों का ध्यान विशेष रूप से जाने लगा। इसी तरह और भी जैन विद्वान कवि के सम्बन्ध में लिखते रहे हैं। इतिहास में स्थान देने वालों में डा० प्रेमसागर जैन का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने 'हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि' में कवि के सम्बन्ध में सामान्य रूप से मूल्यांकन प्रस्तुत किया है।

जैन विद्वानों के अतिरिक्त जैनेतर विद्वानों में डा० शिवप्रसाद सिंह का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने "सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य" में कवि की तीन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रचनाओं का परिचय देते हुए कवि की इन कृतियों को राजस्थानी एवं व्रज भाषा से प्रभावित कृतियां बतलायी।

लेकिन इतना होने पर भी कवि को जो स्थान एवं सम्मान मिलना चाहिए था वह उसे प्राप्त नहीं हो सका। इसका प्रमुख कारण भी वही है जो अन्य कवियों के सम्बन्ध में कहा जाता है।

ठक्कुरसी राजस्थान के ढूंढाहड क्षेत्र के कवि थे। इन्होंने स्वयं ने अपनी कृति "मेघमाला कहा" में ढूंढाहड शब्द का उल्लेख किया है और चम्पावती (चाटसू) को उस प्रदेश का नगर लिखा है।[1] कवि चम्पावती के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम घेल्ह था। ये स्वयं भी कवि थे जिसका उल्लेख कवि ने अपनी कितनी ही रचनाओं में किया है। घेल्ह कवि की अभी तक की रचनाएँ "बुद्धि प्रकाश एवं विशाल कीर्ति गीत" उपलब्ध हो सकी हैं। दोनों ही रचनाएँ लघु रचनाएँ हैं। ठक्कुरसी को कवित्व वंश परम्परा से प्राप्त था। ये जाति से खण्डेलवाल दि० जैन थे। इनका गौत्र पहाडिया था। स्वयं कवि ने अपने आपको पहाडिया वंश शिरोमणि लिखा है।[2] कवि की माता भी बड़ी धर्मात्मा थी। इसलिए पूरे घर के संस्कार धार्मिक बिचारधारा वाले थे।

ठक्कुरसी संभवतः व्यापार करते थे तथा राज्य सेवा में वे नहीं थे। यद्यपि कवि ने चम्पावती के शासक 'रामचन्द्र' के नाम का उल्लेख किया हैं लेकिन उससे ऐसा प्रतीत नहीं होता कि वे राज्य में किसी ऊँचे पद पर काम करते हों। कवि का जन्म कब हुआ, उसकी बाल्यावस्था एवं युवावस्था कैसे बीती, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता हैं और न कवि ने स्वयं ने ही अपने जीवन के बारे में कुछ लिखा है। कवि का वैवाहिक जीवन कैसे रहा तथा कितनी सन्तानों का उन्हें सुख मिला ये सब प्रश्न भी अभी तक अनुत्तर ही हैं।

लेकिन इतना अवश्य है कि इनके जमाने में चम्पावती पूर्णतः धन्य-धान्य पूर्ण थी। महाराजा रामचन्द्र का शासन था। तक्षकगढ (टोडारायसिंह) के शासक

---

१. दिण्णेक ढूंढाहड देस मज्झि, णयरी चंपावइ अरिऊ सत्थि।
तहि अत्थि पास जिणवर णिकेउ, जो भव कण्णिहि तारण हसेउ॥
मेघमाला कहा

२. पपड पहाडिह वंस सिरोमणि, घेल्हा गुरु तसु तियवर घरमिणि।
ताह तणइ कवि ठाकुरि सुन्दरि, यह कह किय संभव जिण मन्दरि॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही चम्पावती के शासक थे। महाराज रामचन्द्र के शासन काल में लिखी हुई पचासों पाण्डुलिपियां राजस्थान के विभिन्न जैन ग्रन्थागारों में संग्रहीत है। ठक्कुरसी सम्पन्न थे। पंडित माल्हा अजमेरा कवि के समय में विशेष प्रसिद्धि प्राप्त श्रेष्ठी थे। कवि में और माल्हा अथवा मल्लिदास में विशेष मैत्री थी और कितनी ही रचनाओं को लिखने में मल्लिदास का विशेष आग्रह रहा था। लेकिन इसी चम्पावती में कुछ ऐसे श्रावग भी थे जो अत्यधिक कृपण थे और किञ्चित् भी पैसा धर्म कार्य में खर्च नहीं करते थे। कवि को इसीलिए 'कृपण छन्द' लिखना पड़ा जिसमें एक कृपण की एवं उसके कृपण मित्र की कहानी दी हुई है।

तत्कालीन समाज—कवि के समय के समाज को हम सम्पत्ति-शाली एवं ऐश्वर्य वाला समाज कह सकते हैं। कविवर ठक्कुरसी ने 'पार्श्वनाथ शकुन सत्तावींसी' में ढूंढाहड प्रदेश एवं विशेषतः चम्पावती नगरी का जो वर्णन लिखा है उसके अनुसार चम्पावती व्यापार का केन्द्र थी तथा उसमें कोई भी व्यक्ति दुःखी नहीं दिखाई देता था। जैन समाज तो सम्पन्न समाज था। वहां समय-समय पर महोत्सव होते रहते थे। उस नगर में रहने वाले सभी भाग्यशाली होते थे ऐसी लोगों की धारणा थी।[1] कृपण छन्द में भी एक स्थान पर वर्णन आया है कि जब श्रावग गण यात्रा से लौटते थे तो वापिस आने की खुशी में बड़े लम्वे-लम्वे भोज होते थे। लोगों का खान-पान रहन-सहन अच्छा था। पान खाने की लोगों में रुचि थी। लेकिन सम्पन्न समाज होने पर भी लोग व्यसनों में फसे रहते थे। यही कारण है कि कवि को सप्त व्यसन पर दो कृतियां लिखनी पड़ी थी।

साधु गण—चम्पावती उस समय भट्टारकों का केन्द्र था और वहीं उनकी गादी था। प्रभाचन्द्र उस समय वहां भट्टारक थे। कवि ने उन्हें मुनि लिखा है और जब वे प्रवचन करते थे तो ऐसा लगता था कि मानों स्वयं गौतम गणधर ही प्रवचन कर रहे हों।[2] इन्हीं के शिष्य थे मुनि धर्मचन्द्र जो बाद में मंडलाचार्य कहलाने लगे थे। कवि ठक्कुरसी ने धर्मचन्द मुनि के उपदेश से 'व्यसन प्रबन्ध' की लघु कृति की रचना की थी।[3]

---

१. जहा न को जणु वसइ दुखिउ. जैन महोछा महमघणा।
जहि दिनि दिनि दीसन्ति, तहा वसहि जे घण्णु णर इउं जण विवस कहंति।

२. तसु मज्झि पहाससि वर मुणीसु, सह संठिउ णं गोयमु मुणीसु।
मेघमाला कहा

३. मुणि धर्मचन्द उपदेसु लह्यौ, कवि ठाकुरि विस्न प्रबंध कह्यौ।
व्यसन प्रबन्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खण्डेलवाल समाज—कवि के समय में चम्पावती में खण्डेलवाल दि० जैन समाज का अच्छा थोक था। अजमेरा, बाकलीवाल, पहाडिया, साह आदि गोत्रों के श्रावक परिवार प्रमुख रूप में थे। सभी श्रावक गण सम्पन्न थे। भगवान पार्श्वनाथ की मूर्त्ति विशेष श्रद्धा एवं भक्ति का केन्द्र थी। मूर्ति अतिशय युक्त थी। बादशाह इब्राहीम लोदी के आक्रमण का भी उसी की भक्ति एवं स्तवन ने रक्षा की थी। स्वयं कवि भी भगवान पार्श्वनाथ के पूरे भक्त थे इसलिए जब कभी अवसर मिला कवि पार्श्वनाथ के गीत गाने लगते थे।

काव्य रचना

कवि की अभी तक कोई बड़ी कृति देखने में नहीं आयी। मेघमाल कहा में अवश्य २१५ कडवक छन्द तथा २११ अन्य छन्द हैं। कवि की ७ रचनाओं का परिचय पं० परमानन्द जी ने दिया था लेकिन शास्त्र भण्डारों की ओर खोज करने पर अब तक कवि की १५ रचनाएँ प्राप्त हो चुकी हैं। जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—

१. पार्श्वनाथ शकुन सत्तवीसी — रचना संवत् १५७८
२. कृपण छन्द — ,, ,, १५८०
३. मेघमाला कहा — ,, ,,
४. पञ्चेन्द्रिय वेलि — ,, ,, १५८५
५. सीमंधर स्तवन
६. नेमिराजमति वेलि
७. चिन्तामणि जयमाल
८. जैन चउवीसी
९. शील गीत
१०. पार्श्वमाथ स्तवन
११. सप्त व्यसन षट पद
१२. व्यसन प्रबन्ध
१३. पार्श्वनाथ स्तवन
१४. ऋषभनाथ गीत
१५. कवित्त

उक्त १५ रचनाओं में प्रथम ४ रचनाओं में रचना संवत् का उल्लेख किया गया है शेष सब रचना काल से शून्य है। उक्त रचनाओं के आधार पर कवि का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साहित्यिक जीवन संवत् १५७५ से प्रारम्भ होकर संवत् १५९० तक चलता है। इन १५ वर्षों में कवि साहित्य निर्माण में लगे रहे और अपने पाठकों को नयी-नयी कृतियों से रसास्वादन कराते रहे। कवि के पूरे जीवन के सम्बन्ध में निश्चित तो कुछ नहीं कहा जा सकता है लेकिन ७० वर्ष की आयु भी यदि मान ली जावे तो कवि का समय संवत् १५२० से १५९० तक का माना जा सकता है।

पञ्चेन्द्रिय वेलि में इन्होंने अपने आपको जति शब्द से सम्बोधित किया है इसका अर्थ यह है कि इन्होंने अपने अन्तिम वर्षों में साधु जीवन अपना लिया था। तथा भट्टारकों के संघ में ही अपना जीवन व्यतीत करने लगे थे।

उक्त १५ रचनाओं में "मेघमाला कहा" के अतिरिक्त सभी लघु रचनायें हैं इसलिए मेरी तो ऐसी धारणा है कि कवि की अभी और भी बड़ी रचनायें मिलनी चाहिए क्योंकि बड़े कवि को छोटी-छोटी रचनाओं से ही सन्तोष नहीं होता उसे तो अपनी काव्य प्रतिभा बड़ी रचना निबद्ध करने में ही दिखाने का अवसर मिलता है। 'मेघमाला कहा' एक मात्र अपभ्रंश रचना है शेष सब रचनायें राजस्थानी भाषा की रचनायें कही जा सकती हैं। जिन पर व्रज भाषा का भी प्रभाव दिखाई देता है।

उक्त रचनाओं का सामान्य परिचय निम्न प्रकार है—

१. सीमंधर स्तवन

इसमें विदेह क्षेत्र में शाश्वत विराजमान सीमंधर स्वामी का ३ छप्पय छन्दों में वर्णन किया गया है। रचना के अन्त में 'लिखितं ठाकुरसी' इस प्रकार उल्लेख किया हुआ है। भाषा एवं भावों की दृष्टि से स्तवन अच्छी कृति हैं। इसकी एक प्रति शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर गोधान जयपुर के ८१ संख्या वाले गुटके में ४८–४९ पृष्ठ पर अंकित है.

२. नेमिराजमति वेलि

जैन कवियों ने वेलि संज्ञक रचनायें लिखने में खूब रुचि ली है। हमारे स्वयं कवि ने एक साथ दो वेलियां लिखी हैं जिनमें राजमति वेलि प्रथम वेलि है। इसका दूसरा नाम नेमीश्वर वेलि भी है। इसमें नेमिनाथ और राजुल के विवाह प्रसंग से लेकर वैराग्य धारण करने एवं अन्त में निर्वाण प्राप्त करने तक की संक्षिप्त कथा दी हुई है।

बसन्त ऋतु आती है और सब यादव वन विहार के लिए चले जाते हैं। इस अवसर पर नेमिनाथ के अपूर्व पौरुष का सब को पता चल जाता है और उसके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पीछे विवाह को लेकर अन्य घटनाएँ घटती हैं। नेमिकुमार जल क्रीड़ा करके सरोवर से निकलते हैं और गीले कपड़े निचोड़ने के लिए रुक्मिणी से प्रार्थना करते हैं। लेकिन रुक्मिणी तो उनके बड़े भाई नारायण श्रीकृष्ण की पत्नी थी इसलिए वह कैसे कपड़े निचोड़ती। उसने इतना कह दिया कि जो सारंग धनुष चढा देगा, पाञ्चजन्य शंख पूर देगा तथा नाग शैय्या पर चढ़ जावेगा, उसी के रुक्मिणी कपड़े धो सकती है। रुक्मिणी का इतना कहना था कि नेमिकुमार चल दिये अपना पौरुष दिखलाने आयुध शाला में। वहां जाकर पल भर में उन्होंने तीनों ही कार्य कर डाले। शंख पूरते ही यादवों में खलबली मच गई और स्वयं नारायण वहां आ पहुँचे। नेमिनाथ का बल एवं पौरुष देखकर सभी आश्चर्य चकित हो गये। अन्त में नेमिनाथ को वैराग्य दिलाने की युक्ति निकाली गयी। विवाह का प्रस्ताव रखा गया। बारात चढी। तोरण द्वार के पास ही अनेक पशुओं को दिखलाया गया। नेमिनाथ के पूछने पर जब उन्हें मालूम चला कि ये सब बरातियों के लिए लाये गये हैं तो उन्हें संसार से विरक्ति हो गयी और तत्काल रथ से उतर कर कंकण तोड़ कर गिरनार पर जा चढे और मुनि दीक्षा धारण कर ली। राजुल के विलाप का क्या कहना। उसने नेमिनाथ को समझाया, प्रार्थना की, रोना रोया, आंसू बरसाये लेकिन सब व्यर्थ गया। अन्त में राजुल ने भी जैनेश्वरी दीक्षा ले ली।

प्रस्तुत कृति पद्धडिया छन्द के आधार पर लिखी गयी है। प्रारम्भ में २ दोहे हैं और फिर कडवक छन्द हैं। इस प्रकार पूरी वेलि में १० दोहे तथा ५ पद्धडिया छन्द हैं। सभी वर्णन रोचक एवं प्रभावोत्पादक हैं। भाषा ब्रज है जिस पर राजस्थानी का प्रभाव है। जब राजुल के समक्ष दूसरे राजकुमार के साथ विवाह करने का प्रस्ताव उपस्थित किया गया तो राजुल ने दृढ़तापूर्वक निम्न शब्दों में विरोध किया—

जंपइ रजमतीय अरणेरा, जिण विणु वर बंधव मेरा ॥११॥
कै वरउ नेमिवरु भारी, सखि कै तपु लेउ कुमारी।
चढि गैवरि को खरि वैसे, तजि सरगि नरगि को पैसै ॥१३॥
तजि तीणि भवन कौ राई, किम अवरुनु वरो वस माई ॥

नेमिकुमार की अपूर्व सुन्दरता, कमनीयता एवं रूप पर सभी मुग्ध थे। जब वे बसन्त क्रीड़ा के लिए जाने लगे तो उस समय की सुन्दरता का कवि के शब्दों में वर्णन देखिये—

कवि कहइ सुनिय घणु घणु, जसु परणइ एह मदणु।
इणि परितिय अणेक्क पयारा, बहु करिहिति काम विकारा।
जिणु तव इण दिठि दे वोलैं, नाउं मेह पवन मै डोलैं ॥५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कवि ने रचना के अन्त में अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है—

कवि घेल्ह सतनु ठाकुरसी, किये नेमि सु जति मति सरसी।
नर नारि जको नित गावै, जो चितै सो फलु पावै ॥२०॥

नेमिराजमति वेलि की पाण्डुलिपियां राजस्थान के कितने ही भण्डारों में उपलब्ध होती हैं। जिनमें जयपुर, अजमेर के ग्रन्थागार भी हैं।

३. पञ्चेन्द्रिय वेलि

पञ्चेन्द्रिय वेलि कवि की बहुत ही चर्चित कृति है। इसमें पांच इन्द्रियों की वासना एवं उनमें होने वाली विकृतियों पर अच्छा प्रकाश डाला है। और अन्त में इन्द्रियों पर विजय पाने की कामना की गयी है। जिसने इन इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की वह अमर हो गया, निर्वाण पथ का पथिक बन गया लेकिन जो जीव इन्हीं इन्द्रियों की पूर्ति में लगा रहा उसका जीवन ही निकम्मा एवं निन्दनीय बन गया। इन्द्रियां पांच होती हैं—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु एवं श्रोत्र। और इन पांच इन्द्रियों से पांच काम अर्थात् अभिलाषाएँ उत्पन्न होती हैं और वे हैं, स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द। इन्द्रियों के इन पांच काम गुणों के वशीभूत होकर मन सांसारिक भोगों में उलझ जाता है और अपने सच्चे स्वरूप को भूला बैठता है। इसलिए सच्चा वीर वही है जिसने इन काम गुणों पर विजय प्राप्त की हो। कबीर ने भी सूरमा की यही परिभाषा की है—

कबीर सोइ सूरमा, मन सों मांडे जूझ।
पांचों इन्द्री पकडि कै, दूर करे सब दूझ॥

कबीर ने फिर कहा कि जो मन रूपी मृग को नहीं मार सका वह जीवन में अभ्युदय एवं श्रेयस का भागी कदापि नहीं हो सकता

काया कसो कमान ज्यों, पांच तत्व कर बान।
मारो तो मन मिट गया, नहीं तो मिथ्या जान॥

पञ्चेन्द्रिय वेलि कवि की संवतोल्लेख वाली अन्तिम कृति है अर्थात् इसके पश्चात् उसकी कोई अन्य कृति नहीं मिलती जिसमें उसने रचना संवत दिया हो। इसलिए प्रस्तुत कृति उसके परिपक्व जीवन की अनुभूति का निष्कर्ष रूप है। कवि द्वारा यह संवत् १५८५ कातिक शुक्ला १३ को समाप्त की गयी थी।[1]

---

१. संवत पन्द्रहसैर पिच्यासे तेरसि सुदी कातिग मासे।
जिहि मनु इंद्री वसि कीया, तिहि हर तरपत जग जीया॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ठक्कुरसी ने वेलि के अन्त में अपने और अपने पिता के नाम का भी उल्लेख किया है तथा अपने आपको 'गुणधाम' विशेषण से सम्बोधित किया है। जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि कवि ठक्कुरसी की कीर्ति उस समय आकाश को छू रही थी।[1]

विषय प्रतिपादन

कवि ने एक-एक इन्द्रिय का स्वरूप उदाहरण देकर समझाया है। सबसे पहले वह स्पर्शन इन्द्रिय के लिए कहता है कि वन में स्वतन्त्र रहते हुए वृक्षों के पत्ते एवं फल खाते हुए स्पर्शन इन्द्रिय के वश में होकर ही हाथी जैसा जीव मनुष्य के वश में हो जाता है और फिर अंकुशों की मार खाता रहता है। कामातुर होकर हाथी कागज की हथिनी के पीछे सब कुछ भूल जाता है।

वन तरुवर फल खातु, फिरि पय पीवतौ सुछंद।
परसण इंद्री प्रेरियो, जहु दुख सहै गयन्द ।
बहु दुख सहौ गयंदो, तसु होइ गई मति मंदो।
कागज के कुंजर काजे, पडि खाडन सक्यौ न भाजे।

कीचड़ में फंसने के पश्चात् मदोन्मत हाथी की जो दशा होती है उस पर कवि मानों आंसू बहाते हुए कहता है—

तहि सहीय घणी तिस भूखो, कवि कौन कहत स दूखो।
रखवाला वलगउ जाण्यौ, वेसासि राय घरि आण्यो।
वंध्यौ पगि संकुलि घाले, तिउ कियउन सक्कइ चाले।
परसण प्रेरे दुख पायो, निति अंकुस घावां घायौ ॥

कवि ने स्पर्शन इन्द्रिय के वशीभूत होने के कारण जिन-जिन महापुरुषों ने अपने जीवन को नष्ट कर दिया है उनके भी कुछ उदाहरण देकर इस इन्द्री की भयंकरता को समझाया है। मैथुन के वशीभूत होने पर ही कीचक को जीवन से हाथ धोना पड़ा। रावण की सारी प्रतिष्ठा एवं रावणत्व धूल धूसरित हो गया। इसलिए जिस प्राणी ने स्पर्शन इन्द्रीय पर विजय प्राप्त की है उसी ने जीवन का असली फल चखा है।

परसण रस कीचक पूरयौ, जहि भीम सिला तलि चूरयौ।
परसण रस रावण नामैं, मारियउ लंकेसुर रामैं।

---

१. कवि घेल्ह सुतनु गुणधामु, जगि प्रगट ठकुरसी नामु।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परसण रस संकट राच्यो, तिय आगै नट ज्यो नाच्यो।
इहि परसण रस जे थूता, वे नर सुर घणा विगूता। १।।

दूसरी इन्द्रिय रसना है। मानव सुस्वादु बन जाता है और अपना हिताहित भुला बैठता है। अपनी मृत्यु का कारण वह स्वयं बन जाता है। जल में स्वच्छन्द विचरने वाली मछली भी रसनेन्द्रिय के कारण ही जाल में फंस कर अपने प्राण गंवा बैठती है—

केलि करंतो जनम जलि, गाल्यो लोभ दिखालि।
मीन मुनिष संसारि सरि, काढचौ धीवर कालि।
सो काढयो धीवरि काले, तिणि गाल्यो लोभ दिखाले।
मछु नीर गहीर पइट्ठो, दिठि जाइ नहीं जहि दीठो।

कवि ने मानव रूपी मछली के रूपक द्वारा रसनेन्द्रिय के दुष्प्रभाव की विशद व्याख्या की है। उसके शब्दों में जन्म को जल, मनुष्य को मछली, संसार को सरिता और काल को धीवर के रूप में देखने में कितनी यथार्थता है। इसके पश्चात् कवि ने रसनेन्द्रिय के प्रभाव की जो सत्य तस्वीर प्रस्तुत की है वह कितनी सुन्दर है—

इह रसणा रस कउ घाल्यो, थलि आइ मुवै दुख साल्यो।
इह रसना रस कै तांई, नर मुसै बाप गुरु भाई।
घर फोडै पाडै बाटां, निति करै कपट घण घाटां।
मुख झूंठ सांच सहिहि बोलै, घरि छोड दिसावर डोलै।

कवि के कथन में अनुभूति है और जीवन की जागती तस्वीर। रात दिन सुनते, देखते, पढ़ते है "इह रसना रस के तांई, नर मुसै बाप गुरु भाई।" इस रसना इन्द्रिय के चक्कर में पड़कर इस मानव को झूंठ कपट करना पड़ता है। अपने लहलहाते घर को उजाड़ना पड़ता है। झूंठ का सहारा लेना पडता है तथा घरबार को छोड़ देश देशान्तर भटकना पड़ता है। यही नहीं छोटा-बड़ा, ऊंच-नीच, सब की मर्यादाओं को वह समाप्त कर देता है। यह सब रसना इन्द्रिय का चक्कर है। कवि के शब्दों में कितनी सच्ची अनुभूति है। अन्त में कवि ने यही अभिलाषा प्रकट की है कि यदि मानव जीवन को सफल बनाना है तो फिर रसना इन्द्रिय पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है—

रसना रस विणै अकारो, वसि होइ न औगण गारो।
जिहि इहुर विषै वसि कीयो, तिहि मुनिष जमन फल लीयो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दी के अन्य कवियों ने रसना इन्द्रिय का कार्य केवल हरि भजन माना है। सूरदास ने 'सोई रसना सो हरि गुण गावै' लिख कर रसना इन्द्रिय के प्रमुख कर्त्तव्य की ओर संकेत किया है। कबीर ने अपनी पीडा यों व्यक्त की है---जी भडिया छाला परया राम पुकारि पुकारि।

तीसरी इन्द्रिय है घ्राण। इस घ्राण इन्द्रिय के वश में होकर भी प्राणी कभी-कभी अपने प्राण गवां बैठता है। घ्राण इन्द्रिय की शक्ति बड़ी प्रबल है। चिउटी को शक्कर का ज्ञान हो जाता है तथा भौंरे कमल को खोज निकालते हैं हम स्वयं भी अच्छी गन्ध मिलने पर प्रसन्न चित्त होकर आनन्द का अनुभव करने लगते हैं तथा दूषित गंध मिलने पर नाक पर रुमाल लगा लेते हैं, नाक भौं सिकोड़ने लगते हैं तथा वहां से भागने का प्रयास करते हैं। कवि ने भ्रमर का बहुत सुन्दर उदाहरण दिया है। जिस तरह गंध लोलुपी भ्रमर कमल पराग का रस पान करता रहता है और वह कलि में से निकलना भी भूल जाता है। बन्द कमल में भी वह रंगीन स्वप्न लेने लगता है—"रात भर खूब रस पीऊंगा, और प्रातःकाल होते ही स्वच्छ सरोवर में कमल की कलियां विकसित होंगी मैं उसमें से निकल जाऊंगा।" एक ओर वह भ्रमर सुनहरे स्वप्न ले रहा है तो दूसरी ओर एक हाथी जल पीने सरोवर में आता है और जल पीकर उस कमल को उखाड़ लेता है और पूरे कमल को ही खा जाता है। बेचारा भौंरा अपने प्राणों से हाथ धो बैठता है।

कमल पइठो भ्रमर दिनि, घ्राण गंधि रस रूढ।
रैंणि पडी सो संकुच्यो, नीसरि सक्या न मूंढ।।

अति घ्राण गंधि रस रूढो, सो नीसर सक्यो न मूढो।
मनि चिंतै रयणि सवायो, रस लेस्यौं अजि अघायो।
जब उगैलो रवि विमलो, सरवर विकसै लो कमलो।
नीसरि स्यौं तब इह छोडै, रस लेस्यौं आइ बहुडे।
चितवतै ही गज आयो, दिनकर उगवा न पायो।
जलि पैसि सरवर पीयो, नीसरत कमल खुडि लीयो।
गहि सुंडि पाव तलि चंप्यो, अलि मारचो थर हर कंप्यो।
इहु गंध विषै छै भारी, मनि देखहु क्यौ न विचारि।
इह गंध विषै वसि हुवो, अलि अहलु अखूटी मुवो।
अलि मरण करण दिठि दीजे, तउ गंध लोभ नहि कीजे।।३।।

अन्त में कवि ने मानव को भ्रमर की मृत्यु से शिक्षा लेने को कहा है कि जो प्राणी इस संसार की गन्ध लेने में ही अपने आपको उसमें समर्पित कर देता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसकी भी भ्रमर के समान दशा होती है। आंखों का काम देखना है। इन नेत्रों द्वारा रूप सौंदर्य को देखा जाता हैं और यह मानव अपनी आंखों से रूप सौंदर्य को देखने का इतना आदि हो जाता है कि वह उसी देखने में अपना आपा खो बैठता है। यह मानव रूप पर कितना मरता है, आंखों की चोरी करता हैं और दूसरों की स्त्री की ओर झांकता रहता है। कवि ने अहिल्या और तिलोत्तमा का उदाहरण देकर अपने कथन की पुष्टि की है। यही नहीं "लोयण लंपट झूंठा, वाज्या नहिं होइ अपूठा" कह कर चक्षु इन्द्रिय पर करारी चोट की है। यही नहीं आगे कहा है कि मना करने पर भी वह नहीं मानता है। लेकिन पाँचों इन्द्रियों का स्वामी तो मन हैं जब तक मन वश में नहीं होता तब तक वेचारी ये इन्द्रियां भी क्या करें।[1] इसलिए इसी के आगे कवि ने कहा है कि—

लोयणो दोस को नाहीं, मन मेरे देखन जांही।

श्रोत्रेन्द्रिय का विषय है शब्द, उसकी मधुरता, कोमलता और प्रियता पर प्राण निछावर करना जीव का स्वभाव है। हरिण वधिक का गीत सुनकर प्राण घातक तीर से व्यथित हो प्राण को छोड़ देता है। सर्प जैसा विषैला जन्तु संगीत की मीठी ध्वनि सुनकर बिल से निकल कर मनुष्य के अधीन हो जाता है। इसलिए कवि ने मानव को सचेत किया है कि वह हिरण की तरह मधुर नाद के वशवर्ती होकर अपने प्राणों का परित्याग न करे।

इस तरह ठक्कुरसी ने पञ्चेन्द्रिय वेलि में पांचों इन्द्रियों के विषयासक्त पांच प्रतीकों द्वारा मानव को सचेत रहने को कहा है। जो मानव इन पांचों इन्द्रियों के वशीभूत हो जाता है वह जल्दी ही अपनी जीवन लीला समाप्त कर बैठता है।

अलि गज मीन पतंग मृग एके कहि दुख दीघ।
जाइति भौ भौ दुख सहै, जिहि वसि पंच न किद्ध।

ठक्कुरसी कवि को अपनी कृति पर स्वाभिमान है इसलिए वह लिखता है—

करि वेलि सरस गुण गाया, चित चतुर मनुष समझाया।
मन मूरिख संक उपाई, तिहि तणइं चित्ति न सुहाई॥

इस वेलि का दूसरा नाम गुण वेलि भी है।[2]

---

१. नेहु अचग्गलु तेल तसु बाती वचन सुरंग।
रूप जोति परतिय दिवै, पडहिति पुरुष पतंग॥

२. देखिए राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची भाग–२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४. चिन्तामरिण जयमाल

प्रस्तुत जयमाल ११ पद्यों की लघु कृति है जिसमें पार्श्वनाथ का स्तवन एवं उनकी भक्ति के प्रभाव से घटित घटनाओं का उल्लेख किया गया है। जिनेन्द्र स्वामी की भक्ति से मानव अथाह समुद्र को तैर कर पार कर सकता है, सूली फूलों की माला बन सकती है और न जाने क्या क्या विपत्तियों से वह बच सकता है। जयमाल की भाषा अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी है। कवि ने अन्त में अपना नामोल्लेख निम्न प्रकार किया है—

इह वर जयमाल गुणह विसाला, थेल्ह सतनु ठाकुर कहए।
जो णरु सिणि सिरक्कइ दिणि दिणि अक्खइ सो सुहमण वंछिउ लहए।

प्रस्तुत जयमाल की प्रति जयपुर के गोधों के मन्दिर के शास्त्र भण्डार के ८१ वें गुटके में पृष्ठ २० से २२ तक संग्रहीत है।

५. कृपरण छन्द

कविवर ठक्कुरसी का कृपण छन्द लौकिक जीवन के आधार पर निबद्ध कृति है। छीहल कवि ने पंच सहेली गीत लिखकर जहाँ एक ओर पति वियोग एवं पति मिलन में नवयुवतियों की मनोदशा का चित्रण किया था वहाँ कवि ठक्कुरसी ने कृपण छन्द लिखकर उस व्यक्ति का चित्रण किया है जो उसके संचय में ही विश्वास करता है और उसका उपयोग ज़ीवन के अन्तिम क्षण तक नहीं करता।

कृपण छन्द का नाम कहीं कृपण चरित्र भी मिलता है। यह कवि की संवत् १५८० के पोष मास में निबद्ध रचना है। रचना एकदम सरस, रुचिकर एवं प्रसाद गुण से भरपूर है। इसमें ३५ पद्य हैं। जो षट्पद छन्द में निबद्ध है। इस कृति की एक पाण्डुलिपि जयतुर और एक भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर में संग्रहीत है। अजमेर वाली पाण्डुलिपि में तो कृति का ही नाम कृपण षट्पद दिया हुआ है। कृति की संक्षिप्त कथा निम्न प्रकार है—

एक प्रसिद्ध कृपण व्यक्ति उसी नगर में अर्थात् चम्पावती में ही रहता था और वहीं कविवर ठक्कुरसी भी रहते थे। वह जितना अधिक कृपण था उसकी धर्मपत्नी उतनी ही अधिक उदार एवं विदुषी थी।

क्रिपणु एक परसिद्ध नयरि निवसंति निलक्षणु।
कही करम संजोग तासु धरि नारि विचक्खण।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सारे नगर के निवासी इस जोड़ी को देखकर आश्चर्य में भर जाते थे क्योंकि स्त्री जितनी दानी, धर्मात्मा एवं विनयी थी उसका पति उतना ही कंजूस था। न स्वयं खर्च करता था और न अपनी पत्नी को खर्च करने देता था। इसी को लेकर दोनों में कलह होता रहता था। वह कृपण न गोठ करता, न मन्दिर जाता, यदि कोई उससे उधार मांगने आता तो वह गाली से बात करता, यही नहीं अपनी बहन, भुवा एवं भाणजियों को भी अपने घर पर नहीं बुलाता था। यदि कोई घर में बिना बुलाये ही आ जाता तो मुंह छिपा कर बैठ जाता था।

घर में आंगण पर ही सो जाता। खटिया तो उसके घर पर थी ही नहीं तथा जो थी उसे भी बेच दी। घर पर छान बांध ली। जब आंधी चलती तो उसकी बड़ी दुर्दशा होती। वह सबसे पहिले उठता और दस कोस तक नंगे पांव ही घूम आता। न स्वयं खाता और न अपने परिवार वालों को खाने देता। दिन भर झूंठ बोलता रहता और झूंठ लिखता, पढ़ता और झूंठी कमाई करता। अपनी इस आदत के कारण वह नगर में प्रसिद्ध था। नगर का राजा भी उसकी आदतों को जानता था।

वह पान कभी नहीं खाता और न ही किसी को खिलाता था। न कभी सरस भोजन करता। न कभी नवीन कपड़े पहन कर शरीर को सँवारता था। वह कभी सिर में तेल भी नहीं डालता और न मल-मल कर नहाता था। खेल तमाशे में तो कभी जाता ही नहीं था।

कदे न खाइ तंबोलु, सरसु भोजन नहीं भक्खे।
कदे न कपड़ा नवा पहिरि, काया सुख रक्खे।
कदे न सिर में तेल घालि, मल मल कर न्हावै।
कदे न चन्दन चरचै, अंग अबीरु लगावै।
पेषणो कदे देखे नहीं, श्रवणु न सुहाई गीत-रसु ।।६।।

उसकी पत्नी जब नगर की दूसरी स्त्रियों को अच्छा खाते-पीते, अच्छे वस्त्र पहिनते तथा पूजा-पाठ करते देखती तो वह अपने पति से भी वैसा ही करने को कहती। इस पर दोनों में कलह हो जाती। इस पर वह अपने भाग्य को कोसती और पूर्व जन्म में किये हुए पापों को याद करती जिसके कारण उसे ऐसा कृपण पति मिला। वह याद करती कि क्या उसने कुदेव की पूजा की, अथवा गुरु एवं साधुओं की निन्दा की, क्या झूंठ बोली या रात्रि में भोजन किया अथवा दया धर्म का पालन नहीं किया जो ऐसे कृपण पति से पाला पड़ा। जो न स्वयं खरचे और न उसे ही खरचने दे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्यौ देखै देहुरै त्याह् की वर नारी ।
तलि पहरचा पटकूला सव्व सोवन सिंगारी ।
एकि करावै पूज एकि उभी गुण गावै ।
एक देहि तिय दाण एक शुभ भावन भावै ।
तिहि देखि भणें हीयो हणें कवणु पापु दीयो दई ।
जहि पाप किए हौ पापीणी क्रपणु कंत घरि घरण हुई ।।६।।

एक दिन कृपण की पत्नी ने सुना कि गिरनार की यात्रा करने संघ जा रहा है तो उसने रात्रि में हाथ जोड़कर हँसते हुए पति से यात्रा संघ का उल्लेख किया और कहा कि लोग उसी गिरनार की यात्रा करने जा रहे हैं जहाँ नेमिनाथ ने राजुल को छोड़ दिया था और तपस्या की थी। वहाँ पर्वत चढ़ेंगे, पूजा-पाठ करेंगे तथा पशु एवं नरक गति के बंध से मुक्त होंगे। इसलिए हम दोनों को भी चलना चाहिए। इतना सुनते ही कृपण के ललाट पर सलवटें पड़ गयी और वह बोला कि क्या तू बावली हो गई है जो धन खरचने की तेरी बुद्धि हुई है। मैंने अपना धन न चोरी से कमाया है और न मुझे पड़ा हुआ मिला है। दिन रात भूखा प्यासा मर कर उसे प्राप्त किया है। इसलिए भविष्य में उसे खरचने की कभी बात मत करना।

नारि वचन सुणि कृपणि, सीसि सलवटि घण यल्ली ।
कि तू हुई धण बावली, कि धण थारी मति चल्ली ।
मै धणु लद्ध न पडयो, मै र धणु लियो न चोरी ।
मै धणु राजु कमाइ, आपु आणियो ना जोरी ।
दिन राति नींद विरु भूख सहि, मैर उपायो दुख घणौ ।
खरचि ना तणौ वाहुडि, वचनु धण तू आगै मत भणौ ।।१४।।

कृपण की पत्नी भी बड़ी विदुषी थी इसलिए उसने कहा कि नाथ, लक्ष्मी तो बिजली के समान चंचल है। जिसके पास अटूट धन एवं नवनिधि थी वह भी साथ नहीं गयी। जिन्होंने केवल उसका संचय ही किया वे तो हार गये और जिन्होंने उसको खर्च किया उनका जीवन सफल हो गया। इसलिए यह यात्रा का अवसर नहीं चूकना चाहिए और कठोर मन करके यात्रा करनी चाहिए। क्योंकि न जाने किन शुभ परिणामों से अनन्त धन मिल जावे। इसके बाद पति पत्नी में खूब वाद-विवाद छिड़ जाता है। पत्नी कहती है कि सूम का कोई नाम ही नहीं लेता जब कि राजा कर्ण, भोज एवं विक्रमादित्य के सभी नाम लेते हैं। वह फिर कहने लगी कि वह नर धन्य है जिसने अपने धन का सदुपयोग किया है। पाप की होड़ न करके पुण्य कार्यों की तो अवश्य होड़ करनी चाहिए। पुण्य कार्य में धन लगाना अच्छी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बात है। जिसने केवल धन का संचय ही किया और उसे स्व पर उपकार में नहीं लगाया वह तो अचेतन के समान है तथा सर्प के डसे हुए के समान है।

पत्नी की बात सुनकर कृपण गुस्से में भर गया और उठ कर बाहर चला गया। बाहर जाने पर उसे उसका एक कृपण ही साथी मिल गया। साथी ने जब उसकी उदासी का कारण पूछा और कहने लगा कि क्या तुम्हारा धन राजा ने छीन लिया या घर में कोई चोर आ गया अथवा घर में कोई पाहुना आ गया या पत्नी ने सरस भोजन बनाया है। किस कारण से तुम्हारा मुख म्लान दिखता है।

तबहि कृपणु करि रोस, रुसि घर वाहिरि चलीयो।
ताम एकु सामहो मंतु पूरवलो मिलियो।
कृपणु कहै रे कृपण आजि तू दूमण दिठो।
किं तु रावलि गह्यो केम घरि चोर पइट्ठो।
आईयउ कि को घरि पाहुणो कीयो नर भोजन सरसि।
किरिण काजि मीत रे आजिउ तु, मुख विनाण दीठो।

कृपण ने कहा कि मित्र मुझे घर में पत्नी सताती है। यात्रा जाने के लिए धन खरचने के लिए कहती है जो मुझे अच्छी नहीं लगती। इसी कारण वह दुर्बल हो गया है और रात दिन भूख भी नहीं लगती। मेरा तो मरण आ गया। तुम्हारे सामने सब कुछ भेद की बात रख दी।

उस दूसरे कृपण मित्र ने कहा कि हे कृपण तू मन में दुख न कर। पापिनी को पीहर भेज दे जिससे तुझे कुछ सुख मिले।

कृपणु कहै रे मंत मुझ घरि नारी सतावै।
जाति चालि धन खरीचु कहै जो मोहि न भावै।
तिह कारणि दुव्वलै रयण दिण भषण ण लगाइ।
मंतु मरण धाइयो गुह्य अख्यो तू आगै।
ता कृपणु कहै रै कृपण सुणी मीत मरण न माहि दुखु।
पीहरि पठाइ दे पापिणी ज्यौं को दिणु तूं होइ सुख ॥२०॥

इसके पश्चात् उस कृपण ने एक आदमी को बुलाया तथा एक झूठा पत्र लिख दिया कि तेरे जेठे भाई के पुत्र हुआ हे अतः उसे बुलाया है। पत्नी पति के प्रपंच को जानते हुए भी पीहर चली गयी।

कुछ महीनों पश्चात् यात्रा संघ वापिस लौट आया। इस खुशी में जगह-जगह ज्यौनारें दी गयी, महोत्सव किये गये। जगह-जगह पूजा पाठ होने लगे। विविध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दान दिये गये। बाजे बजे तथा लोगों ने खूब पैसा कमाया। कृपण ने यह सब सुना तो उसे बहुत दुःख हुआ।

कुछ समय पश्चात् वह बीमार पड़ गया। उसका अन्त समय समझ कर उसके परिवार वालों ने उसे दान पुण्य करने के लिए बहुत समझाया लेकिन उसके कुछ भी समझ में नहीं आया। उसने कहा कि चाहे वह मरे या जीये ज्योनार कभी नहीं देगा। उसका धन कौन ले सकता है। उसने बड़े यत्न से उसे कमाया है। अब वह मृत्यु के सन्मुख है इसलिए हे लक्ष्मी तू उसके साथ चल। लक्ष्मी ने इसका उत्तर निम्न प्रकार दिया—

लच्छि कहै रे कृपण झूठ हो कदै म बोलो।
जु को चलण दुइ देइ गलत मारगी तसु चालों।
प्रथम चलण मुझ एहु देव देहुरे ठविज्जे।
दूजे जात पतिट्ठ दाणु चउसंघहि दिज्जै।
ये चलण दुवै तै भंजिया ताहि विहूणी क्यों चलौ।
भूख मारि जाय तू हौं रही बहुडि न सगि वारे चलौ ॥२८॥

लक्ष्मी ने कहा कि उसकी दो बातें हैं। एक तो वह देव मन्दिरों में रहती है। दूसरे यात्रा, प्रतिष्ठा, दान और चतुर्विध संघ के पोषणादि कार्य हैं इनमें तूने एक भी नहीं किया। अतः वह कृपण के साथ नहीं जा सकती।

कुछ समय पश्चात् कृपण मर गया और मर कर नरक में गया। वहां उसे अनेक प्रकार के दु.ख सहन करने पड़े। इसलिए कवि ने निम्न निष्कर्ष के साथ कृपण छन्द की समाप्ति की है—

इसौ जाणि सहु कोइ, मरइण पूरिष धनु संच्यो।
दान पुण्य उपगार दित धनु कि वै न खचौ।
दान पुजै वह रासो असो पौष पाचै जगि जाणै।
जिसउ कपणु इकु दानु तिसउ गुणु कसु बखाण्यौ।
कवि कहै ठकुरसी घेल्ह तणु, मै परमत्थु विचार्यो।
चरगियो त्यांह उपज्यौ जनमु ज्या पाच्यो तिह हारियो ॥३५॥

प्रस्तुत पाण्डुलिपि में ३५ छन्द हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६. पार्श्वनाथ शकुन सत्तावीसी

कवि की सर्वतोल्लेख यह प्रथम कृति है जिसकी रचना संवत १५७८ माघ शुक्ला २ के शुभ दिन चम्पावती में हुई थी।[1] उस समय देहली पर बादशाह इब्राहीम लोदी का शासन था तथा चम्पावती महाराजा रामचन्द्र के अधीन थी। सत्तावीसी एक स्तवनात्मक कृति है जिसमें चाकसू (चम्पावती) के पार्श्वनाथ के मन्दिर में विराजमान पार्श्वनाथ की ही स्तुति की गयी है। इसमें २७ पद्य हैं। रचना साधारण होते हुए भी सुन्दर एवं प्रवाह युक्त है और सोलहवीं शती के अन्तिम चरण में हिन्दी भाषा के विकास को बतलाने वाली है। सत्तावीसी स्तवन परक कृति होने पर भी इतिहास के पुट को लिये हुए है। प्रस्तुत कृति में इब्राहीम लोदी के रणथम्भोर आक्रमण का उल्लेख है तथा यह कहा गया है कि बादशाह ने अपने प्रबल सैन्य के साथ रणथम्भोर किले पर जब आक्रमण कर दिया तो उसकी सेना आस पास के क्षेत्र में भी उपद्रव मचाने लगी और वह चम्पावती तक आ पहुंची। लोग गांवों को छोड़कर भागने लगे।[2]

चम्पावती के निवासी भी भय से कांपने लगे तथा मना करने भी चारों ओर भागने लगे। लेकिन कुछ लोग नगर में ही रह गये और भगवान पार्श्वनाथ की स्तुति करने लगे। ऐसे नागरिकों में पं० मल्लिदास, कविवर ठक्कुरसी आदि प्रमुख थे।[3] सभी नागरिक पार्श्वनाथ की स्तुति, पूजा-पाठ करने लगे तथा विपत्ति से बचाने के लिए प्रार्थना करने लगे। भगवान पार्श्वनाथ की कृपा से शीघ्र ही भयंकर विपत्ति टल गयी। लोगों को अभय मिला। नगर में शान्ति हो गयी। चारों ओर पार्श्वनाथ

---

१. घेल्ह नंदणु ठकुरसी नामु, जिण पाय पंकय भसलु।
तेण पास थुय किय सचो जवि, पंदरासय अट्ठतरइ।
माह मासि सिय पखू पुर जवि, पढहि गुणहि जे नारि नर।

२. जवहि लिद्धउ राणि संग्रामि, रणथंभुवि दुग्ग गढु।
जब इब्राहिमु साहि कोधिउ, वलु वौली मो कलिउ।
वोलु कौलु सवु तेण लोपिउ, जिव लग उज्झलि हाइसिउ।
मेछ मूढु भय वज्जि, विगु चंपावती देस सहि गया वहइ बिसि भज्जि।

३. तेण तुहु सिउं कहहि जगनाथ, निसुणि सिद्धि सुंदरि रयण।
इहि निमित्त कउ किसउ कारणु, भूत भविषित जाण तुहु।
तुहु समथु जगि तरण तारणु, उच्चावंता उचवहु।
जाइ भव देखइ गांइ, जइनि देखहि पास प्रभु होइ रहहु थिरुट्ठाइं ॥२३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की जय बोली जाने लगी। जो लोग नगर छोड़कर चले गये थे वे अधिक दुःखी हुए और जो नगर में ही रहे वे शान्तिपूर्वक रहे।

एम जंपिय करिवि थुय पूज, मल्लिदास पंडिय पमुह।
सइं हथा सामी उचायउ, तुच्छ मूरतिउ चनि तिलु।
हूवो जाणि सुरगिरि सवायउं, इणि विधि परतिउ वारतिहु।
पूरि विहुरी भराति जयवंतउ जगि पास तुहुं, जेव करी सुख संगति ।।२४।।
तासु पर ते जिकें णर भव्वनी भग्गा दिढु रह्या।
हूवा सुखी ते घरा वांसैं, जे भगा भंति करि।
दुख पाया अरु रड्या सांसैं, अवरइ परत्या वह इसा।

प्रभु पूरिवा समथु, अजउन जिसु पतिसाइ मनु, मो नरु निगुणु निरथु ।।२५।।

पार्श्वनाथ 'सकुन सत्तावीसी' पं० मल्लिदास के आग्रह से रची गयी थी।[1] मल्लिदास ने ठक्कुरसी से पार्श्वनाथ के मन्दिर में ही इस प्रकार के स्तवन लिखने की प्रार्थना की थी। कवि ने अपनी सर्वप्रथम अल्पज्ञता प्रकट की क्योंकि कहां भगवान पार्श्वनाथ के अनन्त गुण और कहां कवि का अल्पज्ञान। फिर भी कवि अपने मित्र के आग्रह को नहीं टाल सके और उन्होंने सत्तावीसी की रचना कर डाली। और अन्त में भी मल्लिदास से सत्तावीसी पढ़ने के लिए आग्रह किया है।

प्रस्तुत सत्तावीसी की पाण्डुलिपि दि० जैन मन्दिर पं० लूणकरण जी पांड्या के शास्त्र भण्डार के एक गुटके में संग्रहीत है। लेकिन गुटके में एक पत्र कम होने से ५ से १४ वें पद्य तक नहीं है। सत्तावीसी की एक प्रति अजमेर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार में भी संग्रहीत है।

७. जैन चउवीसी

जैन चउवीसी का उल्लेख पं० परमानन्द जी शास्त्री ने अपने लेख में किया है। यह स्तुति परक कृति है जिसमें २४ तीर्थंकरों का स्तवन है। राजस्थान के शास्त्र भण्डारों में जैन चउवीसी की कोई पाण्डुलिपि नहीं मिलती।

---

१. एक दिवसह पास जिण गेह मल्लिदास पंडिय कहइ।
ठकुरसीह सुणि कवि गुणग्गल गाहा गीय कवित कह।
तइ कियमयं निसुणी समग्गल।
इव श्रीपास जिणंद गुण करहि न किंतु हु भव्व।
जहि कीया थे पाविए मन वंछित सुख सव्व ।।२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८. मेघमाला कहा

मेघमाला कहा की एक मात्र पाण्डुलिपि भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर के एक गुटके में संग्रहीत है। इसकी उपलब्धि का श्रेय पं० परमानन्द जी शास्त्री देहली को है।

मेघमाला व्रत करने का उस समय चम्पावती में बहुत प्रचार था। ठक्कुरसी ने अपने मित्र मल्लिदास हाथुव साह नामक श्रेष्ठि के आग्रह एवं भ० प्रभाचन्द्र के उपदेश से इस कहा की अपभ्रंश में रचना की थी। उस समय चम्पावती नगरी खण्डेलवाल दि० जैन समाज का केन्द्र थी तथा अजमेरा, पहाडिया, बाकलीवाल आदि गोत्रों के श्रावकों का प्रमुख रूप से निवास था। सभी श्रावकों में जैनाचार के प्रति आस्था थी। कवि ने उस समय के कितने ही श्रावकों के नाम गिनाये हैं जिनमें जीणा, तोल्हा, पारस, नेमिदास, नाथूसि, मुल्लण आदि के नाम उल्लेखनीय है। कवि तोषा पंडित का और नाम गिनाया है।

मेघमाला व्रत भाद्रपद मास की प्रथम प्रतिपक्षा से प्रारम्भ होता है। इस दिन उपवास एवं दिन भर पूजन करनी चाहिए। यह व्रत पांच वर्ष तक किया जाता है। इसके पश्चात् व्रत का उद्यापन करना चाहिए। यदि उद्यापन न कर सके तो इतने ही वर्ष व्रत का और पालन करना चाहिए।

मेघमाला कहा की समाप्ति सावन शुक्ला ६ मंगलवार संवत १५८० के शुभ दिन हुई थी। पूरी कहा में ११५ कडवक तथा २११ पद्य हैं। रचना अपभ्रंश भाषा में निबद्ध है।

मेघमाला कहा का आदि एवं अन्त भाग निम्न प्रकार है—

आदि भाग—

णय चरिम जिणिंदु वि दय कंदु वि सुव सिद्धत्थ वि सिद्धयरो।
कह कहमि रसाला वयघणमाला णर णिसुणहु करिकण्णथिरो।।
दिण्णेक ढुंढाहड देस मज्झि, णयरी चंपावइ अत्थि सत्थि।
तहि अत्थि पास जिणवरणिकेउ, जो भव कण्णिहि तारणहसेउ।
तसु मज्झि पहासमि वर मुणीसु, सह संठिउ णं गोयमु मुणीसु।
तहु पुरउ णिविट्टिय लोय भव्व, णिसुणंत धम्मु मणि गलिय-गव्व।
तहं मल्लिदास वणि तणु रुहेण. सेवइ सुवुत्तु विणयं सहेण।
भो घेल्हणंद! सुणि ठकुरसीह, कइ कुलह मज्झि तुहु लहणु लीह।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तहु मेहमालवय कह पयासि, इण कियइ केण फलु लद्ध ु आसि ।
इइ कह किय चिरु किण सहसकित्त, तुहु करि पद्धडिया बंध मित्त ।
ता विहसि वि जंपइ घेल्हणंदु, जो धम्म कहा कहंणि अमंदु ।
भो मित्त ! पइमि बुज्झिउ हियत्थु, कह कहमि केम बुज्झउ ण अत्थु ।
वायरणु न मइं गुणियउं गुणालु, कोवद्दम दीठउ रसु रसालु ।
जो हरइ जड तण तणउ दोसु, सो सवणि सुणियउ तिय सकोसु ।
कह कहंणि बुहयण हसहि मज्झु, किहकरि रंजावमि चित्त तुज्झ ।।

अन्तिम भाग—

सुअमंयडी चिरू लेवि सुत्तयं, करी कहा एह महा पवित्तयं ।
उणग्गलं जंपय मत्त जंपिया, खमेउ तं देवी भारही मया ।।
ता माल्हा कुल-कमलु दिवायरु, अजमेराह वंसि मय सायरु ।
विणयं सज्जण जणमण रंजणु, दाणि दुहियणह उल-भं जणु ।।
रूवें मयरद्ध य सम सरिसु वि, परयण पुरह मज्झि मइ पुरि सु वि ।
जिण गुण णिग्गंथह पयमत्त ु वि, तोसण पंडिय कवियण चित्त ु वि ।
वुच्छिय वयण सयल परिपालणु, बंधव तिय सहयर सुयलालणु ।
एलीतिय भण रुहइल सोहणु, मल्लिदास यातहु मणु मोहणु ।
तिणि सेवइ सुन्दरि यह कह सुणि, सरिसु वउलीमउ सु दिढु मणि ।
पुणु तोल्हा तणेण परमत्थें, कह सुणि वउली योसिर हत्थें ?
पुणुवि पहाडियाह वरवंसवि, लद्धीसयल णयरि सुपसंसवि ।
जीणा नंदणेण जिणभत्तें, ताल्हू वउली यो विहसंतें ।
पुणु पारस तणेंण दुहुवीरें, गहिउ सुवउ जइ तइजस धीरें ।
पुणु वाकुलीयवाल सुविसालुवि, वालू वउली यो घणमालुवि ।
पुणु कह मुणिवि ठकुरसी णंदणि, णेमिदास भावण भाईय मणि ।
पुणु णाथूसी वग्गरि मुल्लणि, लीयउ वउ जीउ रिय भय डुल्लणि ।
पुणु कह सुणिवि मणोहर गारिहि, अवरहि भव्वयण यर णर-णारहि ।
मेघमालावउ चंगउ महियउ, इंछिउ फलु लहि सहि कवि करियउ ।
चंपावतीव णयरि णिवसंते, रामचन्दपहु रज्जु करंते ।
हाथुवसाहु महत्ति महत्तें, पहाचन्द गुरु उवएसंते ।
पणदह सइजि असीवे अगगल सावण मामि जट सिय मंगल ।
पयउ पहाडिए वंससिरोमणि, घेल्हा गरु तसु तिय वर घर मिणि ।
तह तणइ कवि ठाकुरि सुंदरि, यह कहि किय संभव जिन मंदिरि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता—जो पढइ पढावइ णियमणि भावइ लेहाइ विसइं करि लिहिये।
तसु वय की यह फलु होइ विणिम्मलु राम सुगणि गोयमु कहिये।
वस्तुवंध–जेण सुंदरि विणवइ वयणेण कराविय एह कह।
मेहमालवय विहि रवण्णिम पुणु पुथि यह लिहावि करि।
पयउ कज्जि पंडियह दिण्णिय मल्लाणंदु सु महियलह सेवउ सेवउ गुणह गहीरु।
नंदउ तव लगु जउलइ, वहइ गंगनदि नीरु ॥११५॥

९. शील गीत

यह एक छोटा-सा गीत है जिसमें ब्रह्मचर्य की महिमा बतलायी गयी है। प्रारम्भ में कुछ उदाहरण दिये गये हैं जिनमें विश्वामित्र एवं पाराशर ऋषियों के नाम विशेष रूप से गिनाये गये हैं जो ब्रह्मचर्य के परिपालन में खरे नहीं उतर सके। अन्त में इन्द्रियों पर विजय पाने पर जोर दिया गया है। गीत का दूसरा एवं अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है—

सिंघु वसइ बन मज्झि मंस आहारि वली अति।
वार एक वरस मै करइ सिंघणी सरि सुरति।
पेषि परे वो पापु जासु मन मुइइ न आसुर।
खाइ खंड पाषाण कामु सेवइ निसि वासर।
भोयणि वसेवु नहु ठकुरसी इहु विकार सब मन तणो।
सील रहहि ते स्यंघ नर नहि यति पारापति गिणो ॥२॥

१०. पार्श्वनाथ स्तवन

प्रस्तुत स्तवन पं० मल्लिदास के आग्रह पर निबद्ध किया गया था। इसमें चंपावती (चाकसू) के पार्श्वनाथ प्रभु की स्तुति की गयी है। पूरा स्तवन १५ पद्यों में पूर्ण होता है। स्तवन प्रभावक ऐवं सुरुचिपूर्ण है। इसका अन्तिम छन्द निम्न प्रकार है—

पास तणै सुपसाइ, पाइ पणमंति आइ अरि।
पास तणै सुपसाइ थाइ, चक्कवइ रिद्धि घरि।
पास तणै सुपसाइ सग्ग सिव सुख लहिजै।
पास तासु पणमंति अंगि आलस कुन किजै।
ठकुरसी कहै मलिदास सुणि हमि इहु पायो भेवु इव।
जगि जं जं संदरु संपजै, तं तं पास पसाउ सव ॥१२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११. सप्त व्यसन षट्पद

कविवर ठक्कुरसी की जिन ६ कृतियों की प्रथम बार उपलब्धि हुई है उनमें "सप्त व्यसन षट्पद" प्रमुख कृति है। जिस प्रकार कवि ने पञ्चेन्द्रिय वेलि में पांच इन्द्रियों की प्रबलता, तथा उनके दमन पर जोर दिया गया है उसी प्रकार सप्त व्यसनों में पड़कर यह मानव किस प्रकार अपना अहित स्वयं ही कर बैठता है। व्यसन सात प्रकार के हैं—जुवां खेलना, माँस खाना, मदिरा पीना, वेश्यागमन करना, शिकार खेलना, चोरी करना और परस्त्री सेवन करना। ये सातों ही व्यसन हेय हैं, त्याज्य हैं तथा मानव जीवन का विनाश करने वाले हैं।

पार्श्व वन्दना के साथ षट्पद को प्रारम्भ किया है। कवि ने कहा है कि पार्श्व प्रभु के गुणों का तो स्वयं इन्द्र भी वर्णन करने में जब समर्थ नहीं हैं तो वह अल्प बुद्धि उनके गुणों का कैसे वर्णन कर सकता है। कवि ने बड़ी ओजपूर्ण भाषा में अपनी लघुता प्रकट की है—

पुहमि पट्टि मसि मेरु होहि भायरण खर सागर।
अघस अनोपम लेखि साख सुरतर गुरण आगर।
आपु इंदु करि लिहै, कहै फणिराउ सहसमुख।
लिहइ देवि सरसत्ति लिहत पुणु रहइ नही चुप।
लेखणि मसि मही न उव्वरइ, थक्कइ सरसइ इंद पूणि।
आयो नवोडु कहि ठकुरसी तवइ जिणेसर पास गुणि ॥१॥

जुआ खेलना प्रथम व्यसन है। जुआ खेलने में किञ्चित् भी लाभ नहीं है। संसार जानता है कि पांचों पाण्डवों एवं नल राजा को जुआ खेलने के क्या फल भुगतने पड़े थे। उन्हें राज्य सम्पदा छोड़ने के साथ-साथ युद्ध का भी सामना करना पड़ा था। द्यूत क्रीड़ा करने से अनेक दुःख सहन करने पड़ते हैं। इसलिए जो मनुष्य द्युत क्रीड़ा के अवगुण जानते हुए भी इसे खेलता है वह तो बिना सींग के पशु है।

जूव जुवारुयो घणी लाभु गुण किवइं न दीसइ।
मतिहीणा मानइ षेलि मति चित्ति जगीसइ।
जगु जाणइ दुखु सह्यो पंच पंडव नरवइ नलि।
राज रिधि परहरी रण्णु सेविउ जूवा फलि।
इह विसन संगि कहि ठकुरसी, कवणु न कवणु विगुत्तु वसु।
इव जाणि जके जूवा रमै ते नर गिणिवि ण सींगु पसु ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूसरा व्यसन है मांस खाना। जीभ के स्वाद के लिए जीवों की हत्या करना एवं करवाना दोनों ही महा पाप के कारण हैं। मांस में अनन्तानन्त जीवों की प्रतिक्षण उत्पत्ति होती रहती है इसलिए मास खाना सर्वथा वर्जनीय है।

मद्य पान तीसरा व्यसन है। मद्य पान से मनुष्य के गुण स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं। शराब के नशे में वह अपनी मां को भी स्त्री समझ लेता है। मद्य पान से वह दुःखों को भी सुख मान बैठता है। यादवों की द्वारिका मद्य पान से ही जल गयी थी। यह व्यसन कलह का मूल है तथा छत्र और धन दोनों को ही हानि पहुँचाने वाला है एवं बुद्धि का विनाशक है। वर्तमान में मद्य पान के विरुद्ध जिस वातावरण की कल्पना की जा रही है, जैन धर्म प्रारम्भ से ही मद्य पान का विरोधी रहा है।

मज्ज पिये गुण गलहि जीव जोगै ज्वाख्यौ भणि।
मज्जु पिये सम सरिस माइ महिला मण्णहि मणि।
मज्जु पिये वहु दुखु सुखु सुणहा मैथुन इव।
मज्ज पिये जा जादव नरिंद सकुंटब विगय खिव।
धण घम्म हाणि नर यह गमणु कलह मूल अवजस उतपति।
हारंति जनमु हेलइ मुगध मज्ज पियें जे विकलमति ।।३।।

वेश्या गमन चतुर्थ व्यसन है जो प्रत्येक मानव के लिए वर्जनीय है। यह व्यसन धन, संपत्ति, प्रतिष्ठा एवं स्वास्थ्य सबको नष्ट करने वाला है। सेठ चारुदत्त की बर्बादी वेश्यागमन के कारण ही हुई थी। कालिदास जैसे महाकवि को वेश्या-गमन के कारण मृत्यु का शिकार होना पड़ा था। इसलिए वेश्यागमन पूर्णतः वर्जनीय है।

इसी तरह शिकार खेलना, चोरी करना एवं पर-स्त्री गमन करना वर्जनीय है तथा इन तीनों को व्यसनों में गिनाया है। ये तीनों ही व्यसन मनुष्य के विनाश के कारण हैं। शिकार खेलना महा पाप है। जिस कार्य में दूसरे की ज़ान जाती हो वह कितना बड़ा पाप है इसे सभी जानते हैं। किसी के मनोविनोद के लिए अथवा जीभ की लालसा को शान्त करने के लिए दूसरे जीव का घात करना कितना निन्दनीय है? इन तीनों ही व्यसनों से कुल की कीर्ति नष्ट हो जाती है और केवल अपयश ही हाथ लगता है। रावण जैसे महाबली को सीता को चुराकर ले जाने के कारण कितना अपयश हाथ लगा जिसकी कोई समानता नहीं है। इसलिए ये तीनों व्यसन ही निन्दनीय है वर्जनीय हैं एव अनेकों कष्टों का कारण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust eGangotri

कवि ने अन्तिम पद्य में सभी सातों व्यसनों को त्याग करने का उपदेश देते हुए उनके अवगुणों को उदाहरण देकर बतलाया है।

जूव विसनि वन वासि भमिय पंडव नरवइ नलु।
मंसि गयो वगराउ सुरा खोयो जादम कुलु।
वेसा वणियर चारिदत्तु पारधि सवं उनिउ।
चोरी गउ सिउभूति विपु परती लंकाहिउ।
इक्के विसनि कहि ठकुरसी, नरइ नीचु नरु दुह सहइ।
जह अंगि अधिक अच्छहि विसन, ताह तणी गति को कहइ ॥८॥

रचना की एकमात्र पाण्डुलिपि शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दि पांडे लूणकरण जी, जयपुर के गुटके में संग्रहीत है।

१२. व्यसन प्रबन्ध

कवि की यह दूसरी कृति है जिसमें सात व्यसनों की चर्चा की गयी है। उनके अवगुन बताये गये हैं और उन्हें छोड़ने का आग्रह किया गया है। प्रस्तुत प्रबन्ध मुनि धर्मचन्द्र के उपदेश से लिखी गयी थी। मुनि धर्मचन्द्र भट्टारक प्रभाचन्द्र के शिष्य थे और बाद में मंडलाचार्य बन गये थे। इन्होंने राजस्थान में प्रतिष्ठा महोत्सवों के आयोजन में विशेष रुचि ली थी।

मुणि धर्मचन्द उपदेसु लह्यो, कवि ठकुरि विस्न प्रबंध कह्यौ।
पर हरई जको ए जाणि गुणं, सो लहइ सरव सुख वंछित घणं ॥८॥
सुणि सीख सयाणी मूढ मनं, तजि विस्न बुरा देहि दुख घणं ॥

प्रबन्ध में केवल आठ पद्य हैं तथा उनमें संक्षिप्त रूप से एक-एक व्यसन के अवगुणों का वर्णन किया गया है।

सप्त व्यसनों के सम्बन्ध में दो-दो कृतियां निबद्ध करने का अर्थ यह भी निकाला जा सकता है कि कवि के युग में समाज में अथवा नगर में सात व्यसनों में से कुछ व्यसनो का अधिक प्रचार हो। और उनको दूर करने के लिए कवि की पुनः प्रबन्ध लिखने की आवश्यकता पड़ी हो।

मद्य पान के सम्बन्ध में कवि ने लिखा है कि मद्य पीने से आठ प्रकार के अनर्थ होते हैं। शराब पीने के पश्चात् वह माता एवं पत्नी का भेद भूल जाता है। मद्य पान से पता नहीं कौन-सा सुख मिलता हैं। मद्य पान से ही सारा यादव वंश समाप्त हुआ था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहि पीये आठ अनर्थ करै, जननी महिला न विचारु फुरै।
तहि मज्ज पिये भणु कवणु सुखो, जहि जादम वसहु दिण्णु दुखो ।।३।।

१३. पार्श्वनाथ जयमाला

यह जयमाला भी स्तवन के रूप में है। चम्पावती में पार्श्वनाथ स्वामी का मन्दिर था और उसमें जो पार्श्वनाथ की प्रतिमा है उसी के स्तवन में प्रस्तुत जयमाला लिखी गयी है। जयमाला में ग्यारह पद्य हैं। अन्तिम पद्य में कवि ने अपना और अपने पिता का नामोल्लेख किया है। जयमाला का अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है—

इह वर जइमाला, पास जिण गुण विसाला।
पढहि जिणर णारी, तिण्णि संझा विचारी।
कहइ करि अनंदो, ठकुरसी घेल्ह नन्दो।
लहहिति सुख सारं, वंछियं बहु पयारं ।।

१४. ऋषभदेव स्तवन

यह भी लघु स्तवन है जिसमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की स्तुति की गयी है। स्तवन में केवल दो अन्तरे हैं। दूसरा अन्तरा निम्न प्रकार है—

इश्वाक वंस श्री रिसह जिणु, नाभि तणु भम भव हरणु।
सव अहल अवरु कहि ठकुरसी, तुहु समथ तारण तरणु ।।

१५. कवित्त

कविवर ठक्कुरसी ने सभी प्रकार के काव्य लिखे हैं और वे सभी विषयों से ओतप्रोत हैं। प्रस्तुत कवित्त भी विविध विषय परक हैं और सम्भवतः कवि के अन्तिम जीवन की रचना है। कवित्त का अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है—

जइरु वहिरइ सुण्यो नहु गीतु, जइ न दीठु ससि अंधलइ।
जइ न तरुणि रसु संढि जाण्यो, जइ न भवरु चंपइ रम्यो।
जइ न धणकु कर हीणि ताण्यों, जइ किणि नि गुणिनि लखणो।
कव्वि न कीयो मण्णु, कहि ठाकुर तउ गुणी गुण नांउ जासी सुणु ।।६।।

इस प्रकार अभी तक ठक्कुरसी की १५ कृतियों की खोज की जा सकी है लेकिन नागौर, अजमेर, एवं अन्य स्थानों के गुटकों की विस्तृत छानबीन एवं खोज होने पर कवि की और भी रचनाओं की उपलब्धि की सम्भावना है। ठक्कुरसी प्रकृति प्रदत्त प्रतिभा सम्पन्न कवि थे इसलिए सम्भव है कोई महाकाव्य भी हाथ लग जावे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कविवर ठक्कुरसी १६ वीं शताब्दि के ढूंढाड प्रदेश के प्रमुख कवि थे। उनकी रचनाओं के अध्ययन से ज्ञात होगा कि कवि ने या तो भक्ति परक रचनायें लिखी हैं या फिर समाज में से बुराइयों को मिटाने के लिए काव्य लिखे हैं। कवि का कृपण छन्द उन लोगों पर करारी चोट है जो केवल सम्पत्ति का संचय करना ही जानते हैं। उसका उपयोग करना अथवा त्याग करना नहीं जानते। कृपण छन्द जैसी रचना सारे हिन्दी साहित्य में बहुत कम मिलती हैं। इसी तरह पञ्चेन्द्रिय वेलि एवं 'सप्त व्यसन षट्पद' भी शिक्षाप्रद रचनायें हैं जिनको पढ़ने के पश्चात् कोई भी पाठक आत्म चिन्तन करने की ओर बढ़ता है। ठक्कुरसी का समय मुसलिम शासकों की धर्मान्धता का समय था लेकिन कवि ने समाज का अपनी रचनाओं के माध्यम से जिस प्रकार पथ प्रदर्शन किया वह सर्वथा प्रशंसनीय है।

ठक्कुरसी की रचनायें भाव, भाषा एवं शैली तीनों ही दृष्टियों से उत्तम रचनायें हैं उन्हें हिन्दी साहित्य के इतिहास में उचित स्थान मिलना चाहिये।

□□□

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सीमंधर स्तवन

श्री सीमंधर जिन पय बंदौ, भवि नेत्र चकोरभिनंदौ।
पुंडरीकणी पूर्व विदेहो, अतिशयवंत तहां प्रभु रे हो।
रे है ज परमातशय जुत प्रभु, समवसृति महिमंडणो।
तिहुलोक विजयी मोह रिपु, वलु काम दल सह भंजणो।
परमेठि परमारथ प्रकाशक, पाप नाश दिगंवरो।
भव जलधि पोतक पास मोचक, नमहु जिन सीमंधरो ॥१॥

तह युग्मंधर जिनराजै, साकेता मंडण छाजै।
तिहुलोक जनाधिप बंद्यौ, मोहारि विजय अभिनंद्यो।
अभिनंदियौ जगदेक स्वामी, मोक्ष गामी नीर जो।
पंचसै धनुष प्रमाण देहो, मान माय विहंडणो।
तत्वादि वेदी क्रोध भेदी, भव्य पूज्य परंपरो।
दिन नाथ कोटि प्रमाधि शोभी, जयउ जिन युग्मंधरो ॥२॥

पछिम दिशि बाहु मुनीशो, विजयार्ध पुरी शिरि सीसो।
निमितामर नर फणि लोको, विनि वारि तज न भय शोको।
जन शोक बारण सौख्य कारण, जनम मरण जरा हरो।
परमारथ रत्नत्रय विराजित, सुध चेयण गुणधरो।
चर अचर लोक अतीत नागत, वर्त्तमान सु गोचरों।
उत्पादन ध्रौव्य यैक ग्याता, जयहु बाहु जिनेस्वरो ॥३॥

॥ लीखंत ठाकुरसी ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नेमिराजमति वेलि

सरसय सामिणि पय जुयल, नमौ जोडि कर दोइ ।
नेमिकुमार राजमती जती कहूंउ, सुणहु सब कोइ ।।१।।

आइ मास बसंत रुति, जन मन भयो अनंदु ।
सव्वइ वन कीला चल्या, मिलि द्वारिका नरिंद ।
मिलि द्वारिका नरिंदो, वसुधो बलिभदु गोविंदो ।
समदविजै दसैं दसारा, सिवदेस्यौ नेमिकुवारा ।
सतिभामा रुपिणि राही, जंववंती सरिसउ माही ।
ले सोलह सहस अगिवाणी, चारयौ चाली पटराणी ।

चाल्या दल वल रूप निधानो, पडदवण जुभानु सुभानो ।
परधान परोहित मंत्री, मिलि चल्या सयल भड खित्री ।
हय गय रय जाण जंयाणा, मिलि चाल्या जादम राणा ।
मुखि कहै किता इक जोडे, मिलि चलिया छप्पण कोडे ।
हल रज पसरी चौपासा, नहु सूझै सूर अगासा ।
गवि सुण छोडि सहु देसो, वन मिसि मति मारै केसो ।
सिरि छत्र चमर दुइ पासा, सोहइ सिरि पडी पभाषा ।
बाजा बाजै बहु भंते, बंदियण विडद पभणंते ।
मनि प्रानंदु अधिकु वहंता, हरि विंदु वनिहि संपत्ता ।।२।।

दोहडा

गीत नाद रस पेषणा, परिम्मल सुख संजोग ।
तरु छाया वल्लीभवण, फिरि फिरि भुंज्या भोग ।।३।।

जहि जहि केलि करंतु, वनिहीडौ नेमिकुवारु ।
तहि तिय वाही क्यामगहि, लागी फिरैति लार ।।४।।

लागी फिरहिति लारा, भरि जोवन रूप अपारा ।
कातीय जिणु दीठो चाहैं, तलि वषु खिस्योरि न साहैं ।
कवि रूप रवणरसि घाली, चखि एक आजि उठ चाली ।
कवि कहै कुंवर मा जाहे, तुझु रूपु लिखो थिरु थाहे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किकि दिठि देखण को भाऊ, सिसु तजि जे चलियु बिलाऊ।
कवि कहइ सुतिय धणु धणु, जसु परणइं एह मदणु।
इणि परितिय अणेक्क पयारा, बहु करिहिति काम विकारा।
जिणु तव इन दिठि दे बोलैं, नाइं मेरू पवन मैं डोलैं।
अव रेयणु नर नारे, रंगि रमाहिति वनह मझारे।
वनि रमत हुवो अमु काया, जलि न्हाणि सरोवर आया।
जल माहि केलि कीइं जैसी, कवि सकइ कवणु कहि तैसी।

दोहडा

जल विनोद करि नीसरचा, मन हरषी नरनारि।
पहिरि वस्त्र आरभरण अंगि, आवहि नगर मझारि ॥५॥

सिवदे रूपिणिस्यौ कहौं कहा रही मुहु मोडि।
नेमि कुवर कपहरणी, दैने बहु निचोडि ॥६॥

देनै बहु निचोडे, तिन उत्तरु दियौ वहोडे।
जो सारगु घणकु बढावै, लै संषु पंचाइणु बावै।
चडि नाग सेज जो सोवै, रूपिणि तसु वस्त्र निचोवै।
सुणि सतिभामा कर जोडे, ले दोनौ वस्तु निचोडे।
तव सिवदे तणइं कुमारे, मनि निमष चड्यो अहंकारे।
वरजंता सहि रखवाला, प्रमु पैठौं आइधु साला।
मनि गिणइं न क्यों रंगि रुतौ, चढि नाग सेज सिरि सूतौ।
चरणांगुलि घणकु चडायौ, नासिका संखु धरि वायौ।
सुणि सवदु संखु जण कंप्यौ, इहु कहा हुवउ इम जंप्यौ।
सुणि संख सबद हरि डोल्यौ, बलिभद्र इम बोल्यौ।
अहो भाई विण ठौकाजो, जदि तदि यह लेसी राजो।
को मोटौ मंत्र उपाये, तपु ले घरि तजि वन जाये।
तव कुडइ मनि ललियंगी, आयौ उग्रसेणि घिय मंगी ॥

दोहडा

सुरनर जादव मिलि चल्या व्हाण नेमिकुमारि।
पसु दीया गुवाडा भऱ्या, बंध्या ससुर दुवारि ॥७॥

हरण रोझ सूबर सुसा पुक्कारहि सुहु चाहि।
नेम कुमर रथु राषि करि, बूझ्यौ सारथ वाहि ॥८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रे सारथि ए आजे, पसु वंधि धर्या किणि काजे ।
तिणि जंप्यौ कृष्न अनाथी पसु जाति जके मनिभाया ।
पोषीबा भगति बराती, पसु वधि वासहु परभाती ।
तव नेमिकुमरु रथु छोडो, पसु मुकलाया वध तोडो ।
भयभीत जीव ले भागा, त्रिभुवनु गुरु चीतण लागा ।
इहु जीव विषइ कउ घाल्यौ, हउं जिहि जहि जोणी घाल्यौ ।
तिहि तिहि तिय पासि वधायौ.........................
इव सो तपु तपउं विचारे, ज्यों फिर न पडौ संसारे ।
इम चीति रू ं चल्यौ कुमारो, आयो राखण परिवारो ।
अहो कवर कवणि तूं वांछ्यौ, तपु लेवा जोग उमाह्यौ ।
तपु तपिउ न वालै जांई, करि व्याहु करहि समझाइ ।
जब प्रोढउ होहि कुमारि, तव लीजह तपु भवतारि ।
हसि नेमि कुवरु तव बोलैं, मुझ जनम मरणु मन डोलै ।
जइ अइ पहुचइ कालो, तव गिणइ ण वूढौ वालो ।
जहि जहि जोणी हौ जायौ, तिहि तउ कुटंवु उपायौ ।
इहु मोहु कवण परिकीजै, तिणि काजि माइ तपु लीजै ।
माइ बापु दुवै समझावै, परियण जण सयल समावै ।
विलवंतु साथु सवु छोडे, गो नेहु निमष मै तोडे ।
आभरण ते वस्त्र उतारे, चढि लीयो तपु गिरनारे ॥

दोहडा

सुणिय बात राजमति कवरि परिहरियो सिंगारु ।
पिउ पिउ करती तिह चली, जहिं वनि नेम कुवारु ॥९॥

माइ बाप बंधव सखी, समझावहि कहि भाउ ।
अवरु वरहि वरु भावतो, गयो नेमि तौ जाउ ॥१०॥

गयउनु दै पिउ जाणी, उन कहहि सुवरु किरि आणी ।
जंपइ रजमतीय अणेरा, जिण विणु वर बंधव मेरा ॥११॥

कइ वरउ नेमिवरु भारी, सखि कै तपु लैउ कुमारी ।
चढि गैवरि को खरि वैसे, तजि सरगि नरगि को पैसे ॥१२॥

तजि तीणि भवन को राई, किम अवरुनु वरो वरु माई ।
समझाइ राखि सवु साथो, तिहां चलीय जिहा पिउ नाथो ॥१३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिय भाव अनेक दिखाया, तिणि तवइ न चित्तु डुलाया ।
भूली राजमती मनि विवै, नाउं घुणु लागै वज्ज थंभै ।।१४।।

विलखी पडि हियै विवासै, तपु तपिउ तिहां पिउं पासै ।
तपु तपिउ करी क्रिषि काया, रजमतीय अमर फल पाया ।।१५।।

राखियो वाधि मन चोरो, तप तपिउ नेमि अति घोरो ।
तजि मोहु मानु मदु रासा, अति सहिया विषम परीसा ।।१६।।

तिहसंठ कर्म्म वलु धायो, अरु केवल णाणु उपायो ।
मलधीत गई सब दूरे, हुउ समोसरणु रिधि पूरे ।।१७।।

फिरि देसु सयलु समझाया, नर तिरिय धरम पथ लाया ।
बूंझता हरिबल तोसो, आख्यौ द्वारिका हि विणासो ।।१८।।

जहि जहि मनिऊ मंति अनेरी, बूंझता हरि तिहि केरी ।
अवसाणि आइ गिरणारे, गये मुकतिहु दो भवपारे ।।१९।।

जर जननु मरणु करि दूरे, हुउ सिद्ध गुणहं परि पूरे ।
कवि घेल्ह सुतन ठाकुरसी, किये नेमि सुजति मति सरसी ।
नर नारि जको नित गावै, जौ चिंतै सो फलु पावै ।।२०।।

।। इति श्री नेमि राजमति वेलि जति ठाकुरसी कृतं समाप्त ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पञ्चेन्द्रिय वेलि

स्पर्शन इन्द्रिय

दोहा—

वन तरुवर फल खातु फिरि, पय पीवतौ सुछंद ।
परसण इन्द्री प्रेरियो, बहु दुख सहै गयंद ।।

छंद—

वहु दुख सहौ गयंदो, तसु होइ गई मति मंदो ।
कागज कै कुंजर काजे, पडि खाडन सक्यौ न भाजे ।
तहि सहिय घणी तिस भूखो, कवि कौन कहत स दुखो ।
रखवाला वलगउ जाण्यौ, वेसासिराय घरि आण्यौ ।
बंध्यौ पगि संकलि घाले, तिउ कियउन सक्कइ चाले ।
परसण प्रेरै दुख पायौ, निति अंकुस घावां घायौ ।
परसण रस कीचकु पूर्‌यौ, गहि भीम सिला तल चूर्‌यो ।
परसण रस रावण नामै, मारियउ लंकेसुर रामै ।
परसण रस संकर राच्यौ, तिय आगै नट ज्यौ नाच्यौ ।
इहि परसण रस जे थूता, ते सुर नर घणा विगूता ।।१।।

रसना इन्द्रिय

दोहा—

केलि करंतौ जनम जलि, गाल्यौ लोभ दिखालि ।
मीन मुनिष संसारि सरि, काढ्यो धीवर[1] कालि ।।

छंद—

सो काढ्यौ धीवरि काले, तिणि गाल्यौ लोभ दिखाले ।
मछु नीर गहीर पइठौ, दिठि जाइ नही जहि दीठौ ।
इह रसणा रस कउ घाल्यौ, थलि आइ मुवै दुख साल्यौ ।
इह रसना रस कै तांई, नर मुसै बाप गुरु भाई ।

---

१ भींवरि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घर फोडै पाडै बाटां, निति करै कपट घण घाटां।
मुखि झूठ सांच नहि बोलै, घर छोडि दिसावर डोलै।
कुल ऊंच नीच नहि लेखै, मूरख जहि तहि मिलि भेखै।
इह रसना रस कै लीए, नर कुण कुण कर्म न कीए।
रसना रस विषै अकारी, वसि होइ न औगण गारी।
जिहि इहुर त्रिषै वसि कीयो, तिहि मुनिष जनम फल लीयो ॥२॥

घ्राण इन्द्रिय

दोहा —

कमल पइठो भ्रमर दिनि, घ्राण गंधि रस रूढ।
रैणि पडी सो संकुच्यो, नीसरि सक्या न मूढ ॥

छंद—

अति घ्राण गंधि रस रूढो, सो नीसरि सक्यो न मूढो।
मनि चिंतै रयणि सवायो, रस लेस्यौं अजि अघायो।
जव उगैलो रवि विमलो, सरवर विकसै लो कमलो।
नीसरिस्यौं तव इह छोडे, रस लेस्यौं आइ बहुडे।
चिंतवतै ही गज आयो, दिनकर उगवा न पायो।
जलि पैसि सरवर पीयो, नीसरत कमल खुडि लीयो।
गहि सुंडि पाव तलि चंप्यो, अलि मार्‌यो थर हर कंप्यो।
इहु गंध विषै छै भारी, मनि देखहु क्यो न विचारी।
इह गंध विषै वसि हुवो, अलि अहलु अखूटी मूवो।
अलि मरण करण दिठि दीजे, तउ गंध लोभ नहि कीजे ॥३॥

चक्षु इन्द्रिय

दोहा—

नेहु अचग्गलु तेल तसु बाही वचन सुरंग।
रूप जोति परतिय दिवै, पडहिति पुरुष पतंग ॥

छंद—

पडहिति पुरुष पतंगो, दुख दीवै दइ इति अंगो।
पडि डोइ तहां जीव पाखै, दिटि षंचिन मूरख राखै।
दिठि देखि करै नर चोरी, दिठि देखित कै पर गोरी।
दिठि देखि करै नर पायो, दिठि दीहां बंधइ संतापो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिठि देखि अहल्या इंदो, तनु विकल गई मति मंदो।
दिठि देखि तिलोत्तम भूल्यौ, तप तपिउ विधाता डोल्यो।
ए लोयण लंवट झूठा, वरज्या नहि होइ अपूठा।
ज्यौ वरजै ज्यौ रस वाया, रंगु देखैं आपणु भाया।
लोयणह दोस को नाहि, मन प्रेरैं देखण जाही।
जे नयण दुवै वसि राखैं, सो हरति परति सुख चाखै ॥४॥

कर्णेन्द्रिय

दोहा—

वेग पवन मन सारिखौ, सदा रहे भय भीतु।
वधीक वाण मास्यौ हिरण, कानि सुणंतौ गीतु ॥

छंद—

सो गीत सुणंतौ कानै, मृग खडौ रह्यौ हैराने।
घणु खेंचि वधीक सरि हणियौ, रसि वीधौ घाउ न गिणियौ।
इह नाद सुणंतौ सांपो, विल छोडि नीसर्‌यौ आपो।
पापी घडियालि खिलायौ, फिर फिर दिनि दुख्य दिखायौ।
कींदुरि नाद नर लागैं, जोगी हुइ भिष्या मांगैं।
वाहुडहि न ते समझाया, फिर जांहि घणा घरि आया।
इहु नादु तणौ रस असो, जगि महा विषम विसु जैसो।
इह नादि जिके मरि भिलिया, ते नर त्रियवेगि[1] न मिलिया।
इह नाद तणै रंगि रातौ, मृग गिण्यौ नही जीउ जातौ।
मृग भाव उपाव विचारो, तौ सुणणउ नादु निवारे ॥५॥

दोहा—

अलि गजु मीनु पतंग, मृग एके कहि दुख दीघ।
जाइति भौ भौ दुख सहै, जिहि वसि पंच न किद्ध ॥

छंद—

जिह वसि पंच न किरिया, खल इन्द्री अवगुण भरिया।
तिहि जप तप संजम खोयो, सतु सुकृत सलिल समोयो।

---

१. तिय वंगिन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्र हरतु परतु सत हारे, जिहि इंद्री पंच पसारे।
जिहि इंद्री पंच पसारया, तिहि मुनिष जनम जगि हार्‌या।
नित पंच वसै इक्क ग्रंमे, खिर श्रोर और ही रंगे।
चक्षु चाहे रूप जु दीठो, रसना मख भखै सु मीठो।
निति न्हालै घ्राण सुगंधो, सपरसण कोमल बंधो।
निति श्रवण गीत रस हेरै, मन पापी पंचै प्रेरै।
मन प्रेर्‌यो करै कलेशो, इंद्रियान दीजै दोसो।
कवि घेल्ह सुतनु गुणधामु, जगि प्रगट ठकुरसी नामु।
करि वेलि सरस गुण गाया, चित चतुर मनुष समुझाया।
मन मूरिख संक उपाइ, तिहि तणइं चिति न सुहाई।
नहि जंपो घणो पसारो, इह एक वचन छै सारो।
संवत पंद्रहसैरे पिच्यासे, तेरसि सुदि कातिग मासे।
जिहि मनु ईंद्री वसि कीया, तिहिं हरत परत जग जीया ।।६।।

।। इति पञ्चेन्द्रिय वेलि समाप्त ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चिन्तामणि जयमाल

पणविवि जिण पासहु पूरण आसहु दूरभ्किय संसार मलु ।
चिन्तामणि जंतहु मणि सुमरन्तहु, सणहुजेम संजवइ फलु ।।१।।

महारत्त गुंजा समादुण्णिणेत्तं, सुणे सद्दुत्तं कासु संकण्ण चितं ।
हरो होइसो काणणे जंबुमत्तं, भरंतासु चिंतामणे जंतु चित्तं ।।२।।

दिढं मूसलाया रदंतं पयडं, मऊणिभरंतो किए उच्च सुंडं ।
न लग्गोइसो सिन्धुरो थूल गत्तं, भरंतासु चिंतामणे जंतु चित्तं ।।३।।

विसे बासि अदुण्णि गीषो असंतो, न भण्णेय मूली कियो मंत मंतो ।
ण लोभाइ चून्यो फणी अप्पमित्तं, भरंतासु चिंतामणे जंतु चित्तं ।।४।।

समीरे सहाए मिली घूम भालं, णदापेखि भंगं फुलिंग विसालं ।
णढुक्केइ या अग्गिणं णीर सित्तं, भरंतासु चिंतामणे जंतु चित्तं ।।५।।

ण तीसार चित्तं भमंरोद्दारीयं, नशलं वलं मण्डलं सण्णिबायं ।
ण दुट्ठं जरा दुट्ठ खेखास पित्तं, भरंतासु चिंतामणे जंतु चित्तं ।।६।।

कुदेवा गहा डायणी भूमिपालं, दिनाइ विसं कम्मणं बन्ध बालं ।
कुसवणं कुसप्नं न लग्ग तिणित्तं, भरंतासु चिंतामणे जंतु चित्तं ।।७।।

जरी संकले देह रक्खो विनाणे, णरासीसु विहुणतं दिट्ठ कुट्ठाणे ।
गिऊ दूरि तट्टो णियंताइ णेतं, भरंतासु चिंतामणे जंतु चित्तं ।।८।।

समुद्देर वट्टे अकाहे अगम्मे, पड्यो को वितच्छो किए पुव्व कम्मे ।
तहा होइसो जाइगो पाइ जितं, भरंतासु चिंतामणे जंतु चित्तं ।।९।।

बरो बीढथा बेइ सूली दुहाला, गले घल्लिऊ सप्पु होइ फुल्ल माला ।
णलग्गंति घायं रणे दिण्ण सत्तं, भरंतासु चिंतामणे जंतु चित्तं ।।१०।।

तिया रूप सीलम्मला पुत्त भत्ता, सणेही कुण्डबी गुणी हुंति मिन्ता ।
पुणो हुंति गेहे अमाणं सुक्तिं, भरंतासु चिंतामणे जंतु चित्तं ।।११।।

इय वर जयमाला गुणह विसाला थेल्ह सतनु ठाकुर कहए ।
जो णरु सिणि सिक्खइ दिणि रिणि अक्खइ सो सुहुमण वंछिउ लहए ।।१२।।

।। इति चिंतामणि जयमाल समाप्ता ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृपण छन्द

क्रिपणु एकु परसिद्धु नयर निसवंति विलक्षणु ।
कही करम संजोग तासु घरि नारि विचक्खणु ।
देखि देखि दुहुं की जोडि सबु जगु रहिउ तमासैइ ।
यहर पुरिष कै याह दई किम देइम भासै ।
वा रहिउ रीति चालै भली यान पुज्ज गुण सील सति ।
वा देन खाण खरच किवै, दुवै करहि दिनि कलहु अति ॥१॥

गुरस्यो गोठि न करै, देउ देहुरो न देखैं ।
मांगिन भूलि न देई, गालि सुणि रहै अलेखै ।
सगी भतीजी भुवा बहिण भाणिज्या न ज्यावइ ।
रहै रूसणो मांडि आपु न्यौतो जिव आवे ।
पाहुणो सगो आयो सुणो रहइ छिपिउ मुख म राखि करि ।
जिव जाइ तिवह परि नीसरै, वो धणु संच्यो क्रिपण नर ॥२॥

सुहु परयणु संथरै, सोवै तलि तिणा विछावै ।
सब घीषाटवि काहि मोलि घरि तवै न ल्यावइ ।
ऊपरि जूडा छनि वर दश तणि जु वाघी ।
टूटि टूटि तिणि पडइ वालि बाजै जब आंघी ।
सहि ढही भीति सेरी पडी देखि देखि देइ गालि नर ।
मारिजै वर मीती बडै, तबै न छावै कृपण घर ॥३॥

सगला पहिला उठी माथि ते देइक भाइ ।
पगि नागो सिरि भार गाव दश फिरै दिनाई ।
घरि भूखो परिवार वार तसु टग टग चाहै ।
जब आवै पापीयो नाजु तब आयु विशाहै ।
लेइ सदा सोधि ओगस्यो जहि मरघा हुइ त्रिपति ।
ईम रहइ राति कूचरू क्रिपणु सहु को जाणैं नरु नृपति ॥४॥

भूठ कथन नित खाइ लेखै लेखो नित भूठो ।
भठ सदा सहू करै भूठ नहु होइ अपूठो ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

झूठी बोलै साखि झूठे झगडे नित उपावै ।
जहि तहि बात विसासि धूति धनु घर महि ल्यावै ।
लोभ को लियो चेते न चिति जो कहिजे सोइ खवै ।
धन काजि झूठ बोलै कृपणु मनुष जनम लाधो गवै ।।५।।

कदेन खाइ तंबोलु सरसु भोजन नहीं भक्खै ।
कदेन कापड नवा पहिरि काया सुख रक्खै ।
कदेन सिर में तेल मल मूरख न्हावै ।
कदेन चन्दन चरचै अंग अबीरू लगावै ।
पेषणो कदे देखै नही श्रवणु न सुहाइ गीत रसु ।
घर घरणी कहै इम कंतस्यौ दई काइ दीन्हौ न पसु ।।६।।

सिरि बांधै चीथरी रहइ तलि किए न गौटो ।
अंग उघाडी दुवै झगौ पहरौ गलि छोटो ।
पडहि जूव सैंवार कदे कापडा न धोवै ।
हाथ पाग सैंर को मेलु मलि मूलिन न खोवै ।
पहरि वावा णीयर चण तणी नीसत नहि उट्ठै ।
रलायो सघरि सवरि तहि नणी गुण पडी कृपण घण दूबली ।।७।।

ज्यौ देखै पहरंत खंत खरचंत अवर नर ।
बैठा सभा मझारि जाणि हासंति कुसम सर ।
देखि देख तहु भोगु कृपण तिय कहै विचारी ।
ज्याह तणी एकंत पुणि पूरी तेजारीमइ ।
पुव्व पाप कृत आपणै कंतु कुमाण सभरि लक्षो ।
इकु कृपणु अरु करुपु कुवोलणो लाज मरो लक्खण रह्यो ।।८।।

ज्यो देखे देहुरै त्याह की वर नारी ।
तलि पहर्या पटकूला सव्व सोवन सिंगारी ।
एकि करावै पूज एकि ऊचां गुण गावै ।
एक देहि तिय दाणु एक शुभ भावन भावै ।
तिह देखि भणै हीयों हणै कवणु पायु दीयो दई ।
जहि पाप किणहो पापीणी कृपणुकंत धरि घण हुई ।।९।।

कै कुदेव पूया कैरू जिण चलण नवाद्या ।
कै मै पेष्या कुगुर साधु गुरु साधति निंद्यौ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कै मै बोलो झूठ अवर दिठु दया न पाली।
कै मै भोजनु कियौ यति व्रत संधाए।
स्वामी पुव्व आयु आयो उदै, कृपणु कंत पायो पड्यौ।
तो दिन पायु रिचण सुहै, अणही मिसि पावै लड्यौ ॥१०॥

इणीइ रीतिरहि कृपणि घुति धणु घणौ उपायो।
ले सुणि पासै वार गाडि पुर वाहरि आयौ।
क्यौ कलतरि आपिया ताह जे भेदे न अक्खै।
क्यौरि करै भडसाल ज्योर नख मुनिषुन लखै।
परिवार पूत बंधव जणह नीय कुनहु पतियइ कसु।
यों सूमि सदा धन एकठौ करि करि राख्यौ आप वसु ॥११॥

दुख मरती देहुरै तासु तिय जाइ सवारी।
एकहि दिणि तिणि सुन्यौ संगु चाल्यौ गिरनारी।
रयण समै करि जोडि कहिउ पिय सरिसु हसंती।
सुणहि स्वामि महु एक तणी वीणती।
नर नारि सवै कोऊ भरचा लीया परोहण घर जु धरि।
वंदिस्यौ जाइ श्री नेमि अरु दडि सेरोतंजसिरि ॥१२॥

तूती करि पिय मतौ चडहि दूवे गिरनारीय।
वंदहु नेमि जिणंदु जेणि तिय तजिय कुमारीय।
दीप घूप फल लेइ चरू अक्खत केशर।
कुड गयंदी ण्हाइ पाइ पूजा परमेसर।
अरु चडहं दुवें सेतंजसिरि जनम जनम कौ नाइ मलु।
उपजानजौ पसु नर नरकि लहि अमर पदु परम फलु ॥१३॥

नारि वचन सुणि कृपणि सीसि सलवटि घणपल्ली।
कि तू हुई घण बावली कि घण थारी मति चल्ली।
मै घणु लद्ध न पड्यौ मेर घणु लियौ न चोरी।
मै घणु राजु कमाइ आयु आणियो नर जोरी।
दिनि राति नींद तिस भूख सहि मैर उपायो दुखि घणौ।
खरचि वा तणो बाहुडि वचनु घण मू आगे मत भणौ ॥१४॥

कहै नारि सुणी कंत चपल विज्जु लज्यौ लच्छी गयो।
नहु नव निद्धि मूकि तसु गैलण लच्छी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवर किता नर कहउ ज्याह संचीइ त्याह हारयौ ।
इम जाणि कंत अव सइएँ जिन सूकहि करि कठिणु मनु ।
ज्यौ ब नमितु तणइ धरिइ इंछ्यो होइ अनंत घणु ।।१५।।

कहै कृपणु सुणि मूघ भेदु जणु लहइ न आधौ ।
धन विनु कोइ न सगौ पूत परियण तिय बंधव ।
धन विणु पंडितु मीधु षिधाषित मंडलि पीणौ ।
धण विणुवि तिय हरिचंद राइ वेचा पुरि राणैं ।
....।।१६।।

नारि कहै सुण कंत जकै दाता रहुवा घर ।
करण भोज विक्कम अजो जीवै.........................।
नर सूम सदा अपवित्तु सूसु सामुहौ असीणौ ।
सूमन ले कोउ नाउ तालसिरि दे सब कोणौ ।
दातारि कृपणि यह अन्तरौ लीजै ज्यौ क्यों लेहि फलु ।
नातरि धन गुण वजन जन भौन भरि अंजलि करि देहि जलु ।।१७।।

कहइ कृपणु करि रोसु काइं घण धीर ठावि खंचहि ।
मू अर जाता रहै हठु आपणी न छडै ।
करहि पराई होड जाह घरि लछि अलेखै ।
झूठि भेदु ना लहहि आप घर दिसै न देखै ।
नित उठि बात जपिहि सयाणी ज्यांह चलै मभु कंपणी ।
ते गलौ हाथ जिह खरचि जे लछि पाई आपणी ।।१८।।

कहै नारि सुणि कंत धनि सो जणती जायौ ।
जहि नर करि अपणै वित्तु विलुसियो उपायो ।
होड न कीज्यै पापु पुण्य की होड करन्ता ।
होइसु जसु संसारि परति संचलो भरन्ता ।
घरि हुई लछि पुणि पहिल कै घीहण खर्चे आपणो ।
ते नर अचेत चेल्या नहीं दसिया संपै सापिणी ।।१९।।

तबहि कृपणु करि रोस रुसि घर वाहिरि चलीयो ।
ताम एकु सामहो मंतु घरि चेलौ मिलियो ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्रपणु कहै रे क्रपणु आजि तू दूयण दिट्ठो ।
कि तुं रावलि गह्यो केम घर चोर पइट्ठो ।
आइयउ कि को घरि पाहुणौ कीयो नर भोजन सरसि ।
किणि काजि मीतरे आजि तुव मुख विलीणु दीठो विरसि ।।२०।।

कृपणु कहै रे मंत मुझ घरि नारि सतावै ।
जाति चालि धणु खरचि कहै सो मोहिण भावै ।
तिह कारणि दुब्बलौ रयण दिण भूखण लग्गइ ।
मंतु मरण आइयो ग्रह्य अख्यौ तू आगै ।
ता कृपण कहै रे कृपण सुणि मीत मरण न माहि दुखु ।
पीहरि पठाइ दे पापणी ज्यौ को दिणु तू होइ सुखु ।।२१।।

कृपण वचन सुणि कृपण हरिषु हीयो अति कीयो ।
पुरिष ले एकु सखि लेखु झुठौ लिखि दीयो ।
तिय आगै वाचौ छे तुझ जो जेठो भाइ ।
वुहि घरि जायो पूय तुं घरि घण कोकी आइ ।
तुटिसी प्रीति जै ना चलि सिसू नैवो सुण वापडी ।
जाणंती पिउ परपंच घण चली नवि जासापहि ।।२२।।

तितै संगु सामह्यो साथि लीयौ भड भारी ।
हय गय रह पालिका चडिवि चल्ली नरनारी ।
जंत जंत गिरनैर पह राजलु वर वंद्यो ।
साइ पजुण चडेवि पुव्व कृत पाप निकंद्यो ।
अरु दिट्ठ जीइ सेतंसिरु गनह रख्यौ कवण वणु ।
मनुष जनम कौ फल लीयौ फिरि फिरि वंद्या जिव भवण ।।२३।।

ठाइ ठाई ज्यौणार कीय व्यापार महोच्छा ।
ठाइ ठाइ संग पूज दिठ चित्त किया णवेच्छा ।
ठाइ ठाइ मंगिणाहं दाणु सुजसु उपायो ।
बाजत ढोल निशाण संग कूसलहं घरि आयो ।
इकु पुण्य उपायो पूरिस्यो ल्याया लोग असंख धनु ।
या वात सुणं ज्यो क्रिपणु त्यौ ते तसु पछिताइ मनु ।।२४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहैं कृपणु नित उठि जइरहौं चालौं हुतो ।
पडिगतो जिउणार श्रा दुख रचतो न टौली ।
इणि परिल्यां तो अछि रहिउ सगली मति थोली ।
उठि भणैं हीयौ हणैं सिरु पीटैं ले दुवै कर ।
अति घणसा कृपणु नेंऊसूनी सूल सफोदर सासु जद ।।२५।।

तव मरतो जाणि करि सयल परियण मिलि आयौ ।
बंध न पुत्त कलत्त मात कहि कहि समझावहि ।
ज्यौ आगैं हुई सुखी खरचि लैं सुकृत सबलौ ।
ते वल्हौ चरो बताव षाइजो जीवैं पालौ ।
कुल कहि रह्या सवै बोलतही कृपण कोपु लगाउ करण ।
घर सारि आइ अबरौ कहे भांति कंत ढूकउ मरणु ।।२६।।

कहैं कृपणु करि रोसु काइ मिलि मूनोवाहो ।
थोर न बूझैं सार थोरे धनु लीयो चाहे ।
जीवंतां अरु मुवहं कोण धणु मुझ ले सक्कइ ।
कै लैं चालो साथि कैर धणु धरती थकैं ।
ल्यौ काढि आइ अवरह जनमि तुहि न बताउ धरिउ धणु ।
सुणि वात उठि बंधव गया तितै पहुतै पटण दिणु ।।२७।।

तवह मरंतो कहैं लछि आणइ ठाणंती ।
भाई परियणु पूत मेरू राखौ तु पांत्ती ।
वादनू प्रति ससही देखि दुष्ट घणा उपाई ।
मांग तामं गिणी काजि तु गालि दिवाई ।
एहु चोर ठगांरी आगि थो मे राखी करि जतनु तुझु ।
णिगुण णिलज्जुनि लछि इक.... ...... ।।२८।।

लच्छि कहैं रे कृपण झूठ हौं कदे न बोलो ।
जु को चलण दुइ देइ गैल त्यागी तसु चालो ।
प्रथम चलण मुझ एहु देव-देहुरे ठविज्जे ।
दूजे जात पतिट्ठ दाणु चउसंघहि दिज्जै ।
ये चलण दुवैं तैं मंजिया ताहि विहुणी क्यों चलौ ।
भूखमारि जाय तू हो रही वहुडी न संगि थारे चलो ।।२९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यों ही करता कृपण..........................थाकी ।
बोल न बोल्यो गयो सैंग किकरण समझि ले सक्की ।
नाज...........................सयल घणु बरती छंड्यो ।
गयो नरगि........... कूघट कृपणु तहा पंच परि दुख सह्यो ।
गाव मैं जेता नारी पुरिष भला हे मुवो सगलाहं कह्यौ ।।३०।।

मूवो कृपणु कुमीच लोग सगलाह मनि भायो ।
रहयो राति घर माहि कोइ बालिवा न आयौ ।
सब राति हि जणह घीस पुर वाहिरि राल्यौ ।
पूरा हुवा णी काठ रहित तैंठैं ग्रघ बाल्यौ ।
घर नारि पूत बंधव खिल्या मनि हरिष्यारु जुवो जुवो ।
पहरिस्या खाइस्या खरचस्याह भलौ हुवो जै इह्व मुवो ।।३१।।

कृपणु गयो मरि नरगि तिहां दुख सह्यो अलेखै ।
रोवै करै कलाप कणै कहै इम अक्खै ।
गत जारौ मूं जोग गेगरु इव निरमै पाउं ।
जिती करो घरि लछि तिती पुणि मारगि लाऊं ।
हंसि जंपहि असुर कुमार तसु मुनिष जनमु बूझै कहां ।
तुं मनसि जनमि पडिसे नरगि दुखु दाहणु लामै जहां ।।३२।।

तैं धनु कूडि कपटि ~ ....परिपंच उपायो ।
न तै जो तप विट्ठ देव देहुरै लगायौ ।
न तै करी गुर भगति न ते परिवार संतोष्यो ।
न तै मुवा भाणिजी न तै पिरीजणु पेष्यो ।
न तै कियो उपगारु अडि जौ तू नै आडो फिरौ ।
वो गवो पाप फलु आपणौ मत विलाप कारण करै ।।३३।।

एक तलै तेल में एक अंगि सूली बामै ।
एक घाणी मै पेलि एक काटा सिरी स्वाणै ।
इक काटै कर चरण एक गहि पांव पछाडै ।
एक नदी मैं छोड़ बहुडि खाडै खणि गाडै ।
इकि छेद सरीर तिलु तिलु करिवि सु पा राज्यौ मिलि ।
जाइणि सागर बंध दुख भोगवै मरइण पूरि आयु विणु ।।३४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इमौ जाणि सहु कोइ मरइ ण पूरिष धनु संच्यौ ।
दान पुण्य उपगार दित धनु किवैन खंचो ।
दान पुनै यह रासो असो पोष पाचै जानि जाणि ।
जिसउ करणु इकु दानु तिसउ गुण कामु बखाण्यौ ।
कवि कहै ठकुरसी लभणु मै परमत्थु विचार्यौ ।
चरभियो त्यांह उपज्यौ जनमु जा याच्यो तिह हारियो ॥३५॥

॥ इति कृपण छन्द समाप्त ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शील गीत

पारासरु अस विस्वमत्त रिषि रहत दुवइ वनि।
कंद मूल वणि खंत हुंत अति खीण महा तनि।
ते तरुणी मुहू पेखि मयण वसि हुवा विकलमति।
पछ्इ जि सरस अहारु लिंति तहु तणी कवण गति।
परिवो जु एकु मनहि जि के मनु इंदी वसि रहइ तहु।
विंध्याचल गिरि सायर तरइ तउं मइ मनिउं सव्वु सहु ।।१।।

सिंधु वसइ वन मज्झि मंस आहारि वली अति।
वार एक वरस मैं करइ सिंघणी सरि सुरती।
पेखि परेवो पापु जासु मन मुडइ न आसुर।
खाइ खंड पाषाण कामु सेवइ निसि वासर।
भोयणु वसेखु नहु ठकुरसी इहु विकार सवु मन तणो।
सील रहहि ते स्पष्टं नर नहि पारामति गिणौं ।।२।।

।। इति शील गीत समाप्त ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पार्श्वनाथ स्तवन

नृप अससेणहु पुत्तो गुण जुत्तो असुर कमठ मउ मलणो ।
वम्मादेउरि रइणो, वयणो अविरुद्ध अयजस्य ॥१॥

फणि मंडियउ सीसो, ईसो तिल्लोक सोक दुख दुलणो ।
तन तेय जेण निर्जित, कोटी खर किरण मह दीप्ति ॥२॥

जसु सुरपति दासो, चित्त संसार वासो ।
सयल समै भासो, सत्त तच्चापयासो ।
किय मयण विणासो, दुट्ठ कमट्ठ नासो ।
जयउ सुपहुपासो पत्त सासै निवासो ॥३॥
गुणाण सव्वाण वरं निवासं, न ध्यावहि जे नर पाय पासं ।
कहंत ये पुज्जै ताह आसं, करंति जे मिछ पहुं विसासं ॥४॥

जि कि करहि मूढ विसासू ।
सुणै जाइ भोपाभास ।
खणावैंति खान जीवा करै हि विणासु ।
जिकि कु गुर कुतिथ वास ।
सेवै जाइ जेम दास ।
चंडी मुंडी खेतपाल ध्यावै हि हयास ।
जि कि पत्तर मनावै मास ।
ग्रह गति बूझै कास ।
अवरइ मिथ्यात पथ करहि सहास ।
ताकी कहा थे पूजैइ आस ।
न ध्यावै जे प्रभ पासं ।
चंपावती थानि सब गुणह निवास ॥५॥

सुखसिधामं प्रभ पास नामं ।
न लिंत जे वंछित सुख रामं ।
तिदुखवंता ससि सूर गामं ।
असुंदरं गेह नरं निकाम ॥६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिकि दीसँहि नर निकाम।
उपाइ न सकँ दाम।
पड्या पर घर माहैं मेरे तिय धाम।
घरि नारीय नेह विराम।
अधिक करुय साम।
नंदण निगुण भरिहुहि निरनाम।
जाकी कहीय न रहै माम।
फिरै पीली गाम गाम।
रोक जिसा रोग पून्या दीसैं देह शाम।
तिह कीयउ सही कुकामु।
सकिउ न लेइ नामु।
चम्पावती पास भय सब सुख थामु।
जगत्त अधार मणोपहारी।
जि ध्यावहिं पासु सुचारु चारी।
ति पावहि मानव सुख सारी।
मनंत लछी गुणवंत नारि॥८॥

जाकै दीसै गुणवंत नारि।
रूपवंत सीलधारी।
नंदण नृपुणनी काजिसउ मुरारी।
जाकै हय गय भड़वारि।
अन्न धन्न पूरी खारि।
कीरति सुजसु जाकै जाच्यो खण्ड चारि।
जाकै कहीयन आवै हारि।
पावै सुख भव पारि।
दैहन दुखी होइ जाकी रोग भारि।
तिणि ध्यायो सही संसारि।
मनह जाणै विचारि।
चंपावती पासु जगु जाकै अधारि॥९॥

पंसाउ पास प्रभ जे लहंति।
कुसैण कुग्रह तसु किं करंति।
हवंति जीवा खलु ने नेहवंत।
जलं थलं अग्नि सहाइ संत॥१०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाकै अग्नि सीलै सहाइ।
नीर निधि थलु थाइ।
धके आयो स्याल सम सिंघ हुव जाइ।
जाकै मानु देहि रूठा राइ।
अँगुण ति लेहि छाइ।
विषम सुविसु अंगि अभी हुइ घाइ।
जाकी जगतु भली कहाइ।
लागै हि न घाल्या धाइ।
कुग्रह कुसैंण वसु कछु न वसाइ।
ताकै भेदु पाया इव जाइ।
सुखी यति दीसै न्याइ।
चंपावती पास प्रभ तणै पसाइ ॥११॥

पास तणै सुपसाइ पाइ पणमंति आइ अरि।
पास तणै सुपसाइ थाइ चक्कवइ रिद्धि धरि।
पास तणै सुपसाइ सग्ग सिव सुखु लहि जै।
पास तासु पणमंति भंगि आलस कुन कीजै।
ठकुरसी कहैं मलिदास सुणि।
हंमि इहु पायो भेदु इव।
जगि जं जं सुंदरु संपजै।
तं तं पास पसाउ सव ॥१२॥

॥ इति पार्श्वनाथ स्तवन समाप्त ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्त व्यसन षट्पद

पुहमि पट्टि मसि मेरु, होहि भायरण सर सागर।
अघस अनोपम लेखि, साख सुरतर गुण आगर।
आपु इंदु करि लिहै, कहै फणि राउ सहस मुख।
लिहइ देवि सरसति लिहत पुणु रहइ नहीं चुष।
लेखणि मसि मही न उव्वरइ, थक्कइ सरिसइ इंद फुणि।
आयो नवोडु कहि ठकुरसी, तवइ जिणेसरि पास गुणि ।।१।।

जुआ खेलना—

जूव जुवाख्या घणी लाभु, गुणु किवइं न दीसइ।
मतिहीन मानई खेलि, मत चित्ति जगीसइ।
जगु जाणइ दुखु सह्यौ, पंच पंडव नरवइ जलि।
राज़रिषि परहरी, रण्णु सेविउ जुवा फलि।
इह विसन संगि कहि ठकुरसी, कवणु न कवणु विगुत्त वसु।
इन जाणि जके जूवा रमै, ते नर गिणिवि सींगु पसु ।।२।।

मांस खाना—

मुरिख मंस म भखहु, तासु कारणु किन गोवइ।
जहि स्वाद कारणै, काइ लधइ मउ खोवहु।
फल प्रासत रस लुद्ध कूडु कीयो न मुणिउ मणि।
मान्या उदर विदारि विप वा तापी उल्लणि।
अै गुण अनंत आमिष वसहि कवि ठाकुर केता कहै।
वगराउ अजउं जंगलि भखणि नरइ नीच घणु दुखु सहैं ।।३।।

मदिरा पान करना—

मज्जु पिये गुण गलहि जीव जोगै ज्वाख्यौ भणि।
मज्जु पिये सम सरिस माइ महिला मण्णहि भणि।
मज्जु पिये बहु दुख सुखु सुणहा मैथुन इव।
मज्ज पिये जादव नरिंद संकटु कवि गय खिव।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घण धम्म हाणि नरयह गमणु कलहु मूलु ग्रवजस उपति ।
हारंति जनम हेलइ मुगध, मज्जु पिये जे विकलमति ।।४।।

वेश्यागमन—

वेस्या वणियर चारुदत्त परमाणु परिखिउ ।
सुनया कोडि छत्तीस खद्ध तिन घडी न रखिउ ।
अवर कित्ता नर कह्उं ज्याह दिट्ठउ दुखु दारुणु ।
गाह हरिवि कवि कालिदास मारिउ निकीणु ।
तसु संग किये प्रतिषइ वहि कुल कीरति छारह मिलै ।
धनु जोवनु कीरति जाइ चलि ज्यौं कायर दीठा किलै ।।५।।

शिकार खेलना—

पारधि पंचमु विसनु नरइ पंचमि पहुचांवइ ।
जाणंतऊ नरु नीचु पेखि पसु मनह सिहावइ ।
तिण चरनिरा पराधइ सौ न नमनह विचारहि ।
तुरिय चडिवि वनिजाहि जीव जोवन मदि मारहि ।
खत्री अखत्रु करि संग्रहहि पारधि पापु विसाहि बहु ।
ते सहहि दुखु कहि ठकुरसी ज्यौं चक्कवइ सुवंमु पहु ।।६।।

चोरी करना—

चोरी करि सिवभूति बिघु संसारि विगुत्तउ ।
तिणि डण्ड तिनि सहिय पुणुवि मरि नरयह पतउ ।
अवर किता नर सहहि दुखु दारुणु चोरी संगि ।
इम जाणिवि परहरहु जिन रुलावहु अवगुणु अंगि ।
जपु तपु सनानु संजमु सुकतु कुल कीरति तीरथ धरमु ।
तउ सहल सवे कहि ठकुरसी जइ न फुरइ चोरी करमु ।।७।।

परस्त्री सेवन—

परतीय परत विणासु सरव दुख दावइ इह भवि ।
जाणंतउ जा बंधु लोउ परहरइ तवइ नवि ।
प्रगट सुणी संसारि कथा कीचक अरु दहमुख ।
सीय दोवइ कारणइ जेम मुंजिय दहु दुख ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इह भइ अकित्ति पूर्‌यो भवणु परति वासु पायो नरइ ।
सलहिये सुनरु कहि ठकुरसी जो परतीय रह रहइ ।।८।

सप्त व्यसन—

जुवा विसन वनवासि भमिय पंडव नरवइ नलु ।
मंसि गयो वगराउ सुराखो यो जादम कुलु ।
वेसा वणियर चारिदत्तु पारधि सवंभुनिउ ।
चोरी गउ सिउभूति विपु परती लंकाहिउ ।
इकेक विसंनि कहि ठकुरसी नरइ नीचु नरु दुहु सहइ ।
जहि अंगि अधिक अछहि विसन ताह तणी को कहइ ।।६।।

।। इति सप्त विसन छपद ठकुरसी कृत समाप्तं ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यसन प्रबन्ध

जुवा केरा फल प्रगट घरं, खिरा होहि भिखारी घनी नरं।
जिन खेलहु मूरिख हाणि घणी, किन सुणीय कथा पंडवह तणी।
सुणि सीख सयाणी मूढ मनं, तजि विस्न बुरा देहि दुख घणं ।।१।।

रसणा रसु स्वादु न राखि सकै, पलु प्रासै मूढु न परतु तकै।
वगरीव तणी परि नरय गते, सहि से दुखु तव चेतिसी चिते।
सुणि सीख सयाणी मूढ मनं, तजि विस्न बुरा देहि दुख घणं ।।२।।

जहि पीये आठ अनर्थ करै, जननी महिला न विचार फुरै।
तहि मज्जि पिये भणु कवणु सुखो, जहि जादव वंसह दिण्णु दुखो।
सुणि सीख सयाणी मूढ मनं, तजि विस्न बुरा देहि दुख घणं ।।३।।

विहि वेसा सिरजी नरय घरं, धण जोवन कीरति हाणि करं।
जहि संग कियो वणि चारुदत्तो, रालियउगरो हइ सेज सुतै।
सुणि सखि सयाणी मूढ मनं तजि, विस्न बुरा देहि दुख घणं ।।४।।

जोवनि मदि मूरिख जाहि वनं, पसु पारिधि मारहि मूढ मनं।
चकवइ सुवंभहु तणीय परे, दुर्गति दुख देखहि मूढ मरे ।। सुणि० ।।५।।

खर रोहण सूली वध धणं, तहि चोरी किये कवण गुणं।
प्रभ परयणु पुरजणु होइ रिपो, किन प्रगट सुण्यौ सिवमूति विपो ।। सुणि० ।।६।।

इह परतिय परत विणासु करै, इह रत सयल गुणि दूरि हरै।
परहरइ जको सुणि रावण कथा, सो लहइ सरव सुख विणु अनिथा ।।सुणि० ।।७।।

सुणि धर्मचन्द उपदेसु लह्यो, कवि ठाकुर विस्न प्रबंध कह्यो।
परहरइ जको ए जाणि गुणं, सो लहइ सरव सुख बंछित घणं।
सुणि सीख सयांणी मूढ मनं, तजि विस्न बुरा देहि दुख घणं ।।८।।

।। इति व्यसन प्रबन्ध समाप्तः ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पार्श्वनाथ जयमाला

दारुण नयणारुण नयविहरे, जिह गय घड भय भगइं।
तह जिण गुण मणि सुमरंतियहि, थिरूण थाहि उवसंगइ।
महा दिढु दंत उपाणि पयंडु, चहू दिसि चालीय सूंडा डंडु।
नलग्गइ हथिगरु तणु जासु, घरंतह चित्ति चिंतामणि पासु ॥१॥
डरावणु देहु सु सद्दु करालु, दुरा रुण णेत्त जिसहि बिझालु।
सुल्याल समौ हरि होइन कासु, घरंतह चित्ति चिंतामणि पासु ॥२॥
जसु ठियज्झाल समीर सहाय, चहुं दिसि लग्ग न भगउ जाय।
न ढुक्कइ नीडउ सो जिहु वासु, घरंतह चित्ति चिंतामणि पासु ॥३॥
करेण छियो जसु जाइन अंगु, भरिउ विसि लच्छरि किण्ह भुवंगु।
न लग्गइ चूरि उसो जिदु रासु, घरंतह चित्ति चिंतामणि पासु ॥४॥
तरंग सुंमुठिय नीरि अगाह, भरिउ जल जंति न लभइ थाह।
सुहोइ समुदु जिसउ थल वासु, घरंतह चित्ति चिंतामणि पासु ॥५॥
जिसण्णिय लेस मसिय सिरवाहि, भग्गंदर सूल जलोदर वाहि।
तिणासहि कोढ पमुहु खय खास. घरंतह चित्ति चिंतामणि पासु ॥६॥
कुसौण जिकु ग्रह कूर कुदेव, कुमित्त कुसज्जन कुप्रभ सेव।
करंति न ते भय दुख पमासु, घरंतह चित्ति चिंतामणि पासु ॥७॥
कही चिरू कम्मि किये अरि वधि, भरिउ तनु संकलि घल्लि निरंघि।
तहूंत गयो अरि करिवि निरासु. घरंतह चित्ति चिंतामणि पासु ॥८॥
महा ठग चोर जि डाएणि दुट्ठ, दिनाइय कम्मण मंत असुठ।
नलगहि लील गमे दिन पासु, घरंतह चित्ति चिंतामणि पासु ॥९॥
तिया सुव बंधव सज्जन इट्ठ, उपज्जीह चित्तु रमै जिह दिट्ठ।
मणं छिय सव्वइ पूरहि आसु, घरंतह चित्ति चित्तामणि पासु ॥१०॥

घत्ता

इय वर जइमाला पास जिण गुण विसाला।
पढ़हि जि णर णरी, तिण्णि संझा विचारि।
कहहि करि अनंदो, ठकुरसी घेल्ह नंदो।
लहहि ति सुखसारं, वंछियं बहु पयारं ॥११॥

॥ इति पार्श्वनाथ जयमाला समाप्तः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऋषभदेव स्तवन

पांडव पंच भमंत देश इक्कहि पुरि थकिय ।
तहि कुंभारि रोवतं पुत्त दुखि देखि न सकिय ।
तासु मरण वोसरइ जाइ आपणु हक्कारिउ ।
रखिउ जणु जगडंतु भीमि रणि राखिउ सुमरिउ ।
तिम कहइ ठकुरसी रिसह जिणु तुह निवसंतह चित्त धरि ।
जइ जाइन तिय न दोस दुख, तबरि कहउ इव कासु फिरि ।।१।।

तुहु जग गुर जोतषी तुही वड वैदु विचखिणु ।
तुहु गरवो गारुडी सयल विसुहरहि ततखिणु ।
तुहुं सिद्धक्षर मंतु तंतु तूही तिभवणपति ।
तुहुं संजीवन जड़ी तुही दातारु महत गति ।
इश्वाक वंस श्री रिसह जिणु, नाभि तणु भम भव हरणु ।
सब अहल अवरु कहि ठकुरसी, तुहु समरथ तारण तरणु ।।२।।

।। इति ऋषभदेव स्तवन समाप्त: ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कवित्त

किसउ णरवै भइं न भड रिद्धि नि ने ही सुहि किसौ ।
किसौ मंति जसु वुद्धि मंदी किसौ तुरंगमु वेग विणु ।
किसौ जति जसु वसिन इंदी किसौ वैदु जो ना लहो ।
देह व्याधि कर जोइ निगुणी कियण गुण विथरै किसौ कवीसरु सोइ ।।१।।

ज्यौ रू जणणी जणणु गुणवंत घियगरुई हीण वरु ।
पेखि पेखि मन मै विसूरइ ज्यौं सेव कुसेवा किया ।
होइ दुमणु आसा न पूरइ ज्यो पछितावो जण ।
अवसरि सुजसु न लिद्ध कहि ठाकुर त्यौ कवियण नर निगुण गुण किद्ध ।।२।।

नर निर खर निकुलनि लज्जा निनेहीनी चरइ ।
निगुण सगुण अंतरु न जाणै बोल चूक बहुली कहण ।
विनय वचनु बोलि विन जाणै कूचर कुसर कठोर प्रति ।
संचक सदासलोभ कहि ठाकुर तह गुण कहंहि ते कवि लहहि न सोभ ।।३।।

सगुण सुंदर सदा सद्धम साहमी सनहे कर ।
सुजसु संचि जे अजसु मूकैं विनइ विचखिण बड चिता ।
वंस सुध बोलै न चूकैं पाप परमुह पर तणउ ।
परइ करहि दुखु भन्नि तह जसु कहहि जि ठकुरसी तेरु कवीसर धन्नि ।।४।।

कहा वहिरउ करइ रसुगीउ कहा करै ससि अंधलो ।
कहा करै नरु संढु नारी कहा करै कर हीण नरु ।
गुण सजुत्त को वंडुकारी कहा करै चंपउ भवरू परिमल ।
परिमल अथि विसाल कहा करै त्यों निगुण नरु कवियण कव्वु रसालु ।।५।।

जइ रूवहि रइ सुण्यौ नहु गीतु, जइ न दिठ ससि अंधलइ ।
जइ न तरुणि रसु संढि जाण्यौ, जइ न भवरू चंपइ रम्यो ।
जइ न घणकु करहीणि ताण्यौ, जइ किणि निगुणि निलखणो ।
कव्वि न कीयो मण्णु कहि ठाकुर, तउ गुणी मण नाउ जासी सुणु ।।६।।

।। इति कवित्त समाप्तः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पार्श्वनाथ सकुन सत्तावीसी

असं धवलवि धवल गलिहारु धवलासरणु कमलु जसु ।
धवल हंस वाहरिण वइठि वीरणा पुस्तक कर लियह ।
करइ वि दुरजड जोग तूठी तहि परमेसरि पय कमल ।
परणविवि निम्मल चित्ति पयडु करिसु चंपावती पास नाह गुण कित्ति ।।१।।

एक दिवसह पास जिरण गेह मल्लिदास पंडिय कहय ।
ठकुरसीह सुरिण कवि गुणग्गल गाहा गीय कवित कह ।
तइ किय मय निसुरणी समग्गल इव श्री पास जिरणंद गुण ।
बर वम्मा देवी जरणरणी सुयरणा सोलह निसि ण जरणरणु अखै ।
तुह सुवहो सइ अतुल वलु दयाल या कलकंडु अमयो जाणि जगनाथु ।
करहि न कि तुहु भव्व जहि कीया थे पाविए मन वंछित सुख सव्व ।।२।।

ताम विहसिवि कहइ कवि एम गिसुरिण मित्त तसु गुरण कहत ।
सरसय इंदु घरिणदु थक्कइ कवि माणस अम्हा सरिसु ।
लहा कवरण परि कहिवि सक्कइ, परिण तुहु वयरणु न अवथउ ।
मू मनि पुव्व जगीस वुघिसार तसु, गुण कहिसु जस फणि मंडिउ सीसु ।।३।।

देस सयलह मज्झि सुपसिध ।
जसु पटतर अलंहृतविहि ।
ढुंढि ढुढाहडु नामु अखिउ ।
तह चंपावती वरु णयरु ।
जहा न को जरणु वसइ दुखिउ ।
जैन महोछा महम घरण ।
जहि दिनि दिनि दीसन्ति ।
तहा वसइ ते घण्णु णर ।
इउ जरण विवस कहंति ।।४।।

तासु णयरी म.....................।
....[1]

---

१. पाण्डुलिपि में छन्द ५ से १४ तक नहीं है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ते गुणचित जिय परमाद।
षटु वाहरि षटु भितरिहि।
तविउ मु तपु अइ दुसहु दुद्धरु।
मय अट्ठ परहरि कियो।
तेरह विह चारित्त उद्धरु।
वंम्ह चेरु णव विहि चरिउ।
दह विहु पालिउ धम्मु।
एम जिणेसर पास प्रभि।
खयो पुव्व किउ कम्मु ।।१५।।

अरु परीसह सहिय वावीस, अरिइट्ठ कक्कर कणै।
थुइ णिंदा सम भाइ भावण, गुण थाण गुणि चडिउ।
नवो कम्मु नहु दिण्णु आवण, चम अणेइ पयार तव।
तवि उतिथं करि जाम, असुर इक्कु णहि जंतु सिरि थक्कुवि माणें ताम ।।१६।।

थिरु विमाणिहि वैरु संभलिउ।
इल आइ विलगउ करण।
घोर बीरु उवसगु दुठउ।
जान चलिउ ता असुरु।
जलु असंखु दिन सत्त वुठउ।
चिरुउ वयारु विसंभरिवि।
सो रखिउ धरणिंद।
पउ इवसमिउ पाविइउ।
केवल णाणु जिणिंद ।।१७।।

तवहि आविय सयल सुर मिलिवि, ज़य जय पभणंत गिरि।
नियवि तह सुरु कमठु णवउ, समोसरण लछी सहिउ।
हुवो दोस तजि गुणि गरिट्ठिउ, चइतीस तिसय मंडियउ।
वसु पडिहारु संजोउ, अट्ठ कम्मह णिदिट्ठ तिनि ज्ञान नयणि तिलोउ ।।१८।।

तवहि दरसिउ मग्गु कुमगु, षट दव्व सत्तच्चसिउ।
तव पथय गुण भेउ अखिउ, संसार सागरि विषमि।
पडत भव्व जनु सयलु रखिउ इम बोहंतउ सयल जगु।
पुणु पत्तउ निव्वणि, हूवो सिद्ध वसु गुण सहिउ सारुप सुख निहाणी ।।१६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तासु जिणवर तणउ पडि विंबु।
ग्रहघात पाखाणमइ ।
ग्रांथइ थुकल कल कालि जिथुवि ।
तहा तहा ग्रतिसय सहितु ।
परत्या पूरण छहि समथवि ।
पाणि जु मुत्ति चंपावती ।
कृस्न वणि अयइट्ठु ।
तासु परत्यो हउं कहऊं ।
जो मइ णयणह दिट्ठु ॥२०॥

जवहि लिद्धउ राणि संग्रामि, रणथंभुवि दुग्ग गढु ।
जव इब्राहिम साहि कोपिउ, वलु बौली मोकलिउ ।
वोलु कौलु सवु तेण लोपिउ, जव लग उज्झलि हाइसिउ ।
मेछ मूढु भय वज्जि, विणु चंपाबती देस सहि गया दहइ दिसि भज्जि ॥२१॥

तिवहि कंपिउ सयल पुरु लोउ ।
कोइन कसु वरज्जिउ रहइ ।
भज्जि दहइ विसि जाण लगउ ।
मिलिवि करी तव बीनती ।
पासणाह सामी सु ग्रगउ ।
सवणा जोतिग केवली ।
चित्तु न मंडइ ग्रास ।
कालि पंचमो पास प्रभ ।
जगि तुव तणउ विसासु ॥२२॥

तेण तुहु सिउं कहहि जगनाथ ।
निसुणि सिद्धि सुंदरि रवण ।
इहि निमित्त कउ किसउं कारणु ।
भूत भविषित जाण तुहु ।
तुहु समथु जगि तरण तारणु ।
उच्चावंता उचवहु ।
जहि भव देखहि गाइं ।
जइरिन देखहि पास प्रभ ।
होइ रहहु थिरु ठाइ ॥२३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एम जंपवि करिवि थूय पूज, मल्लिदास पंडिय पमुह ।
सइंहथा सामी उचायउ, तुछ मूरति उची न तिलु ।
हूवो जाणि सुर गिरि सवायउ, इणि विधि परतिउ वारतिहु ।
पूरिवि हरी भरांति जयवंतउ, जगि पास तुहु जेण करी सुख सांति ।।२४।।

तासु पर तेजि के गर भव्वनी भग्गा दिढु रह्या ।
हुवा सुखी ते घरा वासै ।
जो भग्ग भंति करि ।
दुखि पाया अरु पड्या सांसै ।
अवरइ परत्या वहु इसा ।
प्रभु पूरिवा समथु ।
अजउन जिसु पतियाइ मनु ।
सो नर निगुण निरथु ।।२५।।

इव जि सेवहि कुगुरु कुदेव, कु तिथ जि गमु करहि ।
इवहि जि कं पाखंडु मंडहि, धगड धम्मु पावहि न ते ।
मुनिष जम्मु लद्धउ ति मंडहि, सेवहि जिन चपावती ।
परत्या पूरण पासु, हरत परत जिउं हुइ सफलु वंछित पूरइ आस ।।२६।।

घेल्ह णंदणु ठकुरसी नाम ।
जिण पाय पंकय भसलु तेण ।
पास थुय किय सचो जवि ।
पंदरासय अट्ठतरइ ।
माह मासि सिय परव दुइजवि ।
पढहि गुणहि जे नारि नर ।
तहि मन पूरइ आस ।
इय जाणे विणु नित्त तुहु ।
पढि पंडित मल्लिदास ।।२७।।

।। इति श्री पार्श्वनाथ सकुन सत्तावीसी समाप्ता ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाकवि ब्रह्म रायमल्ल
एवं
भ० त्रिभुवनकीर्त्ति पर मंगल आशीर्वाद

परम पूज्य एलाचार्य १०८ श्री विद्यानन्द जी महाराज :

समस्त हिन्दी जैन साहित्य को २० भागों में प्रकाशित करने की श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर की योजना बहुत ही समयानुकूल है। इस योजना से बहुत से अज्ञात एवं अप्रकाशित जैन कवि प्रकाश में आ सकेंगे। सम्पादन एवं मूल्यांकन की दृष्टि से अकादमी के प्रथम पुष्प "महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्त्ति" का बहुत सुन्दर प्रकाशन हुआ है। हमारा इस अकादमी को आशीर्वाद है। समाज द्वारा अकादमी को पूर्ण सहयोग साहित्य प्रेमियों को देना चाहिए, ऐसी हमारी सद्भावना है।

× × ×

आचार्य कल्प परम पूज्य १०८ श्री श्रुत सागर जी महाराज :

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी द्वारा अप्रकाशित साहित्य को प्रकाशित करने की योजना महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है। हिन्दी भाषा की अज्ञात एवं अप्रकाशित रचनाओं को प्रकाश में लाने का जो कार्य प्रारम्भ किया है उसमें अकादमी एवं पदाधिकारी गणों को सफलता प्राप्त हो यही मंगल आशीर्वाद है।

□ □ □

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुक्रमणिका

ग्राम एवं नगर

अजमेर ४३, २४३, २६१
अवन्ती १८५
अंतपुर १८१, २३५
उत्तरप्रदेश ७
उज्जयिनी १८५, २२५
कामां १८
गुजरात ७
गोपाचल १७४
गौछ १८१, २३५
चम्पावती, चाटसू ११, १२, २३७, २३८, २३९, २५३, २५५, २६२
चित्तौड़ नगर ६
जयपुर ११, १८, ३५, ४३, २४३
जमरानो १८१, २३५
जंबूद्वीप १६७
ढूंढाहड २३८, २३९, २५५, २६२, २६२
घूंधकनगर ३
नग कैलई १८०, १९६, २३५
नैग्वा ८
पंजाव प्रदेश ७, ११, १८,
पाटण ३
फफोंदुपुर (फफोंदु) १९३, २३६
बूंदी १८, ३२, ३५
बीकानेर १०
महाराष्ट्र ७
महला १५२
रणथंभवि २५३, २९४
राजस्थान ३, ७, १० ११, १२, १८
रायगेहु १९७
सौहारु १८१, २३५
स्कंध नगर ५
हिसार ११, १२, १८, ८६
हस्तिनापुर १२

कवि, विद्वान् एवं श्रावकगण

अजब वेग भट्ट १
अभयचन्द १८१, २३५
इब्राहीम साहु २५३, २९४
ईश्वर सूरि १, ८
उदयभानु १
उद्योतन सूरि १८२
कबीर १, ३८
काधिल (साह) ११
कासलीवाल (डा०) १२
कुन्दकुन्दाचार्य ११
केशव (महाराज) १
कृपाराम १
कृष्णनारायण प्रसाद १२९
गारवदास जैन १, २, १७९. १९६, २३६
गोपीनाथ १
गोस्वीमी विट्ठलदास १
चतुरुमल १, २, १५८, १५९, १६१, १७५, १७६, १७७
मुनि चन्द्रलाभ १
चारुचन्द्र १०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छीहल १. १२१, १२२, १२३, १२४, १२८, १२६. १३१, १३२, १३३, १३४, १४०, १४१ १४२, १४३, १४४, १४५, १४६, १४७, १४८, १४६, १५०, १५१, १५२, १५४, १५५. १५६, १५७
जनकु १८१
ब्रह्म जिनदास २, १८३
जिनहर्ष १३०
भ० ज्ञानभूषण १, २, १८४
ठक्कुरसी १, २, २३७, २३८, २४७, २४८, २५३, २५५, २६१, २६२, २६७, २७१, २७२, २८०, २८१, २८४, २८७, २८८, २८६, २६०, २६२
डूंगरसी १३०
थेघु साह १८१, १६६, २३६
पं० तोसए २५६
दयासागर १३०
पांडे देवदासु ७०, ६०
देवलदे १८१
मुनि धर्मचन्द २८२
मुनि धर्मदास १, ४, ५
वाचक धर्मसमुद्र ६
धेल्ह कवि २३८, २७१, २७२, २६५
नरवाहन १
नाथूराम प्रेमी २३७
निपट निरंजन १
नाथू १५२
नाथूसि २५५, २५६
पदम ४, ५
भ० पद्मनन्दि २६
पं० परमानन्द शास्त्री २३७
पार्श्वचन्द्र सूरि १, ६
पूनो १
भ० प्रभाचन्द्रदेव ११, १२, ३१, २५५
डा० प्रेमसागर जैन २३७
बनारसीदास १३०
वालचन्द्र १, ६
बूचा, बूचराज १, २, १०, ११, १२, १३, १८, २३, २४, २५, ३०, ३१, ३६, ३८, ३६, ४०, ४२, ४३, ७०, ८६, ६०, १०१, १०५, १०७, १०८, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८
भक्तिलाभ १०
भारग साहु २३६
भुवनकीर्त्ति ११, ३१, १०७
भुल्लन २५५, २५६
मतिशेखर १३०
मंझन १
मलिक मोहम्मद जायसी १
पं० मल्लिदास २५५, २५६, २८६, २६२, २६५
मानसिंह १७४
ब्र० माणक १३०
मिश्रबन्धु विनोद १, ८, १२१, १७६
मेघु १८१
मेलिग १ ३
ब्रह्म यशोधर १, २, ८
महाकवि रइधू १६०
भ० रत्नकीर्त्ति ११, ३१
उपाध्याय रत्नसमुद्र ६
राजशील उपाध्याय ६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाराज रामचन्द्र ११, २३६, २५६
रामदास ४, ५
रामचन्द्र शुक्ल १२१, १३०
रामकुमार वर्मा १२१, १२२, १२४
लालदास १
वल्ह १३, २२, २५, ६६, ८६, ९०, १०८, ११२, १२०
वल्हव १३
वल्हपति २५
डा० वासुदेवशरण अग्रवाल १५८
भ० विजयकीर्त्ति ७
वाचक विनयसमुद्र १०
विमलमूर्त्ति १, ३
वाचक विवेकसिंह ९
शान्ति सूरि ८
भ० शुभचन्द्र १, २, ७
डा० शिवप्रसादसिंह १२२, १२३, १२४, १२५, १३२, २३७
स्योसिंह १५२
भ० सकलकीर्त्ति ३१, १८२
सरो १२
सहजसुन्दर १, २, ९
सिवसुख १
सुन्दर सूरि ३
भ० सोमकीर्त्ति ८, १८२, १८३
हर्ष ९
हितकृष्ण गोस्वामी १
डा० हीरालाल महेश्वरी १२२
हेमरत्न सूरि ३
हेमराज १३०
होरिल साहु ५

कृतियां

अम्बड चोपई १०
अष्टाह्निका गीत ७
आदीश्वर फाग १८४
आत्मप्रतिबोध जयमाल १२३
आत्म रागरास ९
आराम शोभा चौपई १०
उत्तमकुमार चरित्र १०
इलातीपुत्र सज्झाय ९
उदर गीत १२४, १३४
ऋषभदेव स्तवन २६१, २९०
ऋषि दत्तारास ९
ऋषभनाथ गीत २४०
कुलध्वज कुमार ९
कवित्त २४०, २६१, २९२
कुवलयमाला १८२
कृपण छन्द २३७, २३९, २४०, २४८, २७३, २८०
गुण रत्नाकर छन्द ९
गुणाकर चौपई ९
चित्तामणि जयमाल २४०, २४८, २७२
चेतनपुद्गल धमाल १३, २४, २५, २८, ३१, ३६, ४१, ४२, ७०, ९०
जिणदत्त चरित्र २
जैन चउवीसी २४०, २५४
टंडाणा गीत १३, ३० ४१
तत्वसार दूहा ७
दान छन्द ७
धर्मोपदेश श्रावकाचार ४, ५
नेमि गीत ८, १३, ३१
नेमिनाथ छन्द ७, ८
नेमिपुराण १५९
नेमिनाथ वसन्तु १३, २९, ३२, ३९, ४१
नेमिराजमति वेलि २४०, २४१, २६४, २६७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नेमिश्वर वेलि २४१

नेमिश्वर का उरगानो १५६, १६०, १६१, १६४, १६५, १६६

नेमिश्वर का बारहमासा ८७

पञ्चसहेली गीत १२१, १२३, १२४, १२८, १२६, १३५

पदम चरित्र १०

पद्मावती रास १०

पंथी गीत १२३

पुण्यसार रास ३

प्रद्युम्न चरित्र २

पञ्चेन्द्रिय वेलि २३७, २४०, २४१, २६८, २७१

पंथी गीत १२३, १५३

पार्श्वनाथ गीत १०२

पार्श्वनाथ जयमाला २६१

पार्श्वनाथ स्तवन २४०, २८३

पार्श्वनाथसकुन सत्तावीसी २४०, २५३, २९२, २९५

प्रशस्ति संग्रह १२

बलिभद्र चौपई ८

बावनी १२३, १२४, १३२, १३३, १४१

बारहमासा नेमिश्वर का १, ३, २३, ३२, ३६ ४२, ८७

बुद्धिप्रकाश २३८

भुवनकीर्त्ति गीत १३, ३०, १०६

मयणजुज्झ ११, १२, १३, १४, १७, १८, १६, २२, ३१, ३६, ४२, ४३, ४५

मल्लिनाथ गीत ८

महावीर छन्द ७

मेघमाला कहा २३८, २४०, २४१, २५५

मृगावती चौपई १०

यशोधर चरित्र १८०, १८२, १८३, १६५

राजस्थान का जैन साहित्य ६

राजवार्त्तिक १२

राम सीता चरित्र ६

लघु वेलि १२३, १५५

ललितांग चरित्र ८

विक्रम चरित्र चौपई ६

विजयकीर्ति छन्द ७

विशालकीर्ति गीत २३८, २३६

वीर शासन के प्रभावक आचार्य ८

वैराग्य गीत १२४, १३४, १५६

व्यसन प्रवन्ध २३६, २४०, २८८

शील गीत २४०, २८१

सज्झाय ६

संतोष जयतिलकु ११, १२, १३, १८, ३६, ४१, ४२, ४३, ७०

सम्यक्त्व कौमुदी ११

सप्तव्यसन षटपद २४०, २८५

सुदर्शनरास ३, ६

सुमित्रकुमार रास ६

सीमंधर स्तवन २४०, २४१, २६३

हरिवंश पुराण १५६

जाति एवं गोत्र

अजमेरा २१६, २४०

खण्डेलवाल

पहाडिया २३८, २४०

बाकलीवाल २४०

साह २४०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
२२४९
नरिया, (का. हि. वि. वि.) वाराणसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेखक एवं संपादक : डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल

जन्म—८ अगस्त, १६२०, ग्राम सैंथल (राज०)

शिक्षा—एम. ए , पी-एच. डी; शास्त्री

साहित्य सेवा—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची पांच भागों में (दो हजार पृष्ठों में), प्रशस्ति संग्रह, प्रद्युम्न चरित, जिनदत्त चरित, हिन्दी पद संग्रह, बनारसी विलास, चम्पाशतक. वीर शासन के प्रभावक आचार्य (उत्तरार्द्ध), शाकम्भरी के विकास में जैनों का योगदान, Jain Grantha Bhandars in Rajasthan, महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भ० त्रिभुवनकीर्त्ति, कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि।

पुरस्कृत कृतियां—राजस्थान के जैन सन्त (विद्वद् परिषद् द्वारा) महाकवि दौलतराम कासलीवाल (शास्त्री परिषद् द्वारा), वीर निर्वाण भारती मेरठ द्वारा अक्टूबर ७४ में सम्मानित एवं इतिहास रत्न की उपाधि से समलंकृत, अन्तर्राष्ट्रीय जैन शोध विद्यापीठ अलीगंज द्वारा विद्यावारिधि उपाधि से सम्मानित, अप्रेल ७६ में निवाई (राज०) समाज द्वारा सम्मानित।

सम्पादक—वीरवाणी, जयपुर, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अब तक करीब २०० से अधिक लेख प्रकाशित।

साहित्यिक एवं सामाजिक संस्थाएँ—निदेशक जैन साहित्य शोध संस्थान जयपुर एवं श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी जयपुर, अध्यक्ष राजस्थान साहित्य परिषद्, महिला जाग्रति संघ एवं ज्ञान विद्यालय जयपुर, संयुक्त मंत्री दि० जैन आ० संस्कृत महाविद्यालय जयपुर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

उद्देश्य

• प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सम्पूर्ण हिन्दी जैन साहित्य के प्रतिनिधि कवियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के मूल्यांकन के साथ उनकी विशिष्ट कृतियों को २० भागों में प्रकाशित करना।

•• जैन साहित्य का प्रकाशन, नव साहित्य का निर्माण एवं प्रकाशन, प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्य पर शोध करने वाले विद्यार्थियों को दिशा निर्देशन।

साहु अशोककुमार जैन
संरक्षक

•

कन्हैयालाल जैन, मद्रास
अध्यक्ष

•

डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल
निदेशक एवं प्रधान सम्पादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi